

6

विशद पुरुष

राजनीतिज्ञ नानाजी



विशद
पुरुष



राजनीतिज्ञ
नानाजी

विशद पुरुष
राजनीतिज्ञ
नानाजी

विशद पुरुष राजनीतिज्ञ नानाजी



दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • प्रभात प्रकाशन
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2017
मूल्य • चार सौ रुपए
मुद्रक • ग्राफिक वर्ल्ड, नई दिल्ली

VIRAT PURUSH : RAJNEETIGYA NANAJI ₹ 400.00

Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road,
New Delhi-110002 • e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with Deendayal Research Institute,
7-E, Swami Ramtirth Nagar, Rani Jhansi Road, New Delhi-55
e-mail: dridelhi1@gmail.com

Vol. 6 ISBN 978-93-5186-081-5

Set of 6 Vols. ISBN 978-93-5186-082-2 • Price: ₹ 2000.00

आमुख

जनसंघ की स्थापना के साथ ही उसमें पदार्पण करनेवाले नानाजी देशमुख शायद स्वभाव से ही राजनीतिज्ञ थे। संघ नेतृत्व को नानाजी का यह शाश्वत गुण प्रारंभिक काल में ही समझ आ गया था, और नानाजी ने अपने नेतृत्व को कभी निराश नहीं किया। अपने शैशवकाल में जनसंघ भले ही कोई बहुत बड़ी राजनैतिक शक्ति न बन पाया हो, परंतु नानाजी शीघ्र ही राजनीति के माहिर खिलाड़ी अवश्य बन गए थे।

लगभग तीन दशक तक नानाजी देश के राजनैतिक पटल पर छाए रहे। जनसंघ में भी और उसके बाहर भी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पश्चात् जनसंघ में उनकी छवि एक अद्वितीय संगठक की बनी और पंडितजी के रहते हुए भी देश की राजनीति में एक ऐसे सर्वमान्य राजनेता की, जो अपनी विचारधारा से इतर अन्य दलों को भी साथ लेकर चलने की क्षमता रखता था। लोकनायक जयप्रकाश नारायण, डॉ. राम मनोहर लोहिया और आचार्य कृपलानी जैसे विचारकों और महानायकों को कभी नानाजी के साथ काम करने में संकोच नहीं हुआ, बल्कि ये सब काफी हद तक नानाजी पर निर्भर हो गए थे। सिर्फ राजनैतिक दल ही नहीं, उद्योग व पत्रकारिता जगत् के महारथियों ने भी नानाजी की अद्भुत क्षमता को बार-बार अनुभव किया।

राजनेता के रूप में नानाजी बहुत से राजनीतिक घटनाक्रमों के साक्षी रहे। 1960 के दशक में गैर-कांग्रेसवाद की राजनीति के सूत्रधार नानाजी ही रहे। कई राज्यों में जो गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं, उनके रणनीतिकार व रचनाकार नानाजी ही रहे। 1970 के दशक में इमरजेंसी से पहले व उसके बाद, परदे के पीछे चलनेवाली देश भर की सारी राजनीति के वे मुख्य किरदार रहे। नानाजी का उल्लेख किए बिना उस दशक की राजनीति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। राजनेताओं की महत्वाकांक्षाओं के कारण जनता पार्टी के टूटने की वेदना नानाजी कभी छुपा नहीं पाए। उसे बचाने की कोशिशों में राजनीति के खट्टे-मीठे, कड़वे, चटपटे, सब अनुभव नानाजी की ही कलम से पाठकों को पढ़ने को मिलेंगे, इस खंड में कितने ही राज खुलेंगे।

विराट् पुरुष

नानाजी देशमुख

जिन दिनों प्रस्तुत वाङ्मय का संकलन व संपादन चल रहा था, उन्हीं दिनों अंग्रेजी की एक उपन्यास शृंखला चर्चा में आई—शिव द्रायोलॉजी। एक युवा भारतीय लेखक अमीश ने उसमें भगवान् शिव की एक मनुष्य-रूप में कल्पना कर उनकी स्तुति की है। बहुत खूबसूरत वर्णन है। देवों के देव महादेव का उन्होंने दुष्टता का नाश करनेवाले, प्रचंड प्रेमी, महान् योद्धा, नृत्यकला में निपुण, एक करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, परम शक्तिशाली लेकिन फिर भी सब प्रकार के दोषों से मुक्त, अद्भुत वाक्पटु, पूरे ब्रह्मांड को कंपा देनेवाला गुस्सा, लेकिन विशाल, दया व करुणा से भरपूर हृदय, ऐसे व्यक्तित्व के रूप में चित्रण किया है।

लेखक का संभवतः नानाजी से परिचय नहीं रहा होगा। वरना वे नानाजी को सामने रखकर भी एक जीवंत उपन्यास की रचना कर सकते थे—देवताओं के सभी गुणों से परिपूर्ण, राजनीति में दुष्ट लोगों को साफ-साफ खरी-खोटी सुनानेवाले और उन्हें राजनैतिक तौर पर ही नष्ट करनेवाले, स्वयं ब्रह्मचारी लेकिन गृहस्थ जीवन के कट्टर समर्थक व गृहस्थों को प्रेम का पाठ पढ़ानेवाले, महान् रणनीतिकार, ललित कलाओं के प्रेमी, करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली राजनेताओं में से एक, लेकिन महत्वाकांक्षाओं व अहंकार से पूर्णतया मुक्त, वाक्पटुता अद्वितीय, आवश्यकता पड़ने पर गजब का गुस्सा, यानी वही सब गुण, जिनको आधार बनाकर वह उपन्यास लिखा गया।

नानाजी के निधन के पश्चात् हम सबने उनका राष्ट्रऋषि के रूप में स्मरण किया। अपने जीवनकाल में मानव कल्याण के लिए उन्होंने जो साधना की, जो तपस्या की, उसे देखते हुए तो उनके जीवित रहते हुए ही उन्हें इस रूप में संबोधित किया जा सकता था। लेकिन नानाजी को यह स्वीकार्य नहीं होता। चित्रकूट में नानाजी से मिलने व उनके काम को देखने के बाद तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम उन्हें एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति के रूप में ही संबोधित करते थे।

अपने शास्त्रों में विराट् पुरुष की जो व्याख्या की गई है, नानाजी उसके मूर्त रूप थे। आमजन के लिए तो विराट् पुरुष वह है जो चतुष्पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभी में संतुलन बैठा सकता हो।

विराट् पुरुष

नानाजी का समस्त जीवन, विचार व कर्तृत्व उन्हें विराट् पुरुष के फ्रेम में ही रखते हैं। जिन लोगों के बीच वे काम करते थे, जो वंचित थे, उनके लिए तो नानाजी विराट् पुरुष ही थे। नानाजी के सहयोगी रहे लोग या जिन्होंने नानाजी के साथ कुछ भी समय काम किया, वे भी उनके इस वर्णन से सहमत होंगे।

देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान करने से लेकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक प्रचारक के रूप में नानाजी ने पहले राष्ट्रीय राजनीति में और बाद में सामाजिक पुनर्गठन के कार्य में अपनी जो छाप छोड़ी, वह अद्वितीय है।

राजनीति में उनके विरोधी भी उनका लोहा मानते हैं। नानाजी ने देश में राजनीति की विभिन्न धाराओं को राष्ट्रहित के लिए एकजुट करने का जो अनोखा काम किया, उनके अलावा कोई अन्य राजनीतिज्ञ वैसा फिर नहीं कर पाया। यहां तक कि जिस कांग्रेस को हराने के लिए वे जीवन भर प्रयासरत रहे, समय आने पर उन्होंने उसे भी राष्ट्रहित में साथ आने का निमंत्रण देने में संकोच नहीं किया। संघ जीवनपर्यंत उनकी जीवनरेखा रहा। संघ पर जब भी कोई अनर्गल आक्षेप लगा तो नानाजी उसके सामने एक ढाल की तरह खड़े रहे, एक योद्धा के रूप में।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनके सखा व प्रेरणास्रोत थे। लेकिन जब उन्हें लगा कि बदले परिवेश में अन्य विचारों को साथ लेना भी जरूरी हो गया है तो उन्होंने डॉ. राममनोहर लोहिया और आचार्य कृपलानी जैसे लोगों को भी अपने साथ आत्मसात् करने में कोई परहेज नहीं किया। 70-80 के दशकों में ऐसा समय आया जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण अपने राजनैतिक कार्यों के लिए पूरी तरह नानाजी पर निर्भर हो गए।

60 बरस की उम्र होने पर सक्रिय राजनीति छोड़कर सामाजिक पुनर्गठन के काम में उन्होंने स्वयं को समर्पित कर देश के राजनीतिज्ञों के लिए एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उनके इस कदम का बाद में किसी ने अनुकरण नहीं किया और अधिकांश राजनेता दलगत व स्वार्थपरक राजनीति में उलझे रहे। हां, उनके कुछ साथी राजनेताओं ने नानाजी के काम को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान अवश्य दिया।

सामाजिक कार्यों में उन्होंने समाज की पहल और उसकी भागीदारी के आधार पर जो मॉडल देश के सामने प्रस्तुत किया, उसकी सराहना देश भर में होती रही है। आज विदेशों से भी कई शोधार्थी और विद्यार्थी उस मॉडल को समझने व उसे अपने यहां दोहराने की दृष्टि से चित्रकूट आते रहते हैं। देश के तत्कालीन राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री स्वयं इस मॉडल को देखकर आने के बाद इसकी प्रशंसा ही नहीं करते रहे बल्कि इसके अनुसरण की अनुशंसा करने में भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। गोंडा तो प्रारंभ से ही उनकी कर्मभूमि रहा और बाद में बीड़ व नागपुर भी।

नानाजी के बहुआयामी व्यक्तित्व को टुकड़ों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। मानव जीवन में जिस समग्रता के वे आगहरी थे, उन्हें भी उसी समग्रता से देखने की आवश्यकता है। उनके जीवन के हर आयाम, हर पहलू को आनेवाली पीढ़ी के समक्ष रखने का प्रकल्प है यह नानाजी वाङ्मय। नानाजी ने अपने सार्वजनिक जीवन के सात से अधिक दशकों में बहुत कुछ बोला और लिखा। राष्ट्रहित में शायद उससे भी ज्यादा उन्होंने अपने सीने में छुपाकर रखा।

नानाजी द्वारा स्थापित दीनदयाल शोध संस्थान ने उनके निधन के पश्चात् जब 'नानाजी समग्र' प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो उसकी संपादकीय टीम के सामने एक प्रश्न खड़ा हुआ कि नानाजी के विचारों का संकलन कैसे किया जाए? नानाजी के बहुत से सहयोगी उनसे पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। उनके साथ काम कर चुके या उनसे संपर्क में रहे बहुत से सहयोगियों की स्मृति काफी क्षीण हो चली थी। फिर भी लगभग दो वर्ष तक अलग-अलग स्रोतों से सामग्री जुटाने का प्रयास हुआ। संस्थान के दिल्ली व चित्रकूट कार्यालयों में काफी सामग्री मिली थी; लेकिन इमरजेंसी से पूर्व की सामग्री नहीं मिल पाई।

इस तैयारी के प्रारंभिक दिनों में कल्पना यह थी कि नानाजी ने अपने जीवनकाल में जो भी लिखा व बोला, उसे एकत्र कर कालखंड या विषयवार रूप में प्रकाशित किया जाए, ताकि आनेवाली पीढ़ियां जान सकें कि इस युग में भी एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति ने जन्म लिया था। जिसने अपना संपूर्ण जीवन दीन-दुखियों की सेवा, मानव जीवन को सार्थक बनाने, भारतीय मूल्यों के संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने, व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को एकात्म करने, देश की राजनीति को नई दिशा देने, विकास का देशानुकूल, परंतु साथ ही युगानुकूल प्रतिमान खड़ा करने में समर्पित कर दिया।

लगभग पांच हजार पन्नों की सामग्री को संकलित कर उन्हें नए सिरे से कंप्यूटरीकृत किया गया। इस बीच इस बात पर मंथन चलता रहा है कि समग्र को किस रूप में प्रेषित किया जाए—कालखंडानुसार, विषयानुसार अथवा विधानुसार, यानी पत्रों, भाषणों, बौद्धिकों आदि को अलग छपा जाए। यों तो समग्र को कालखंडानुसार प्रकाशित करना सर्वाधिक श्रेयस्कर होता, लेकिन नानाजी के जीवनकाल के एक बहुत बड़े हिस्से का रिकॉर्ड तो बिलकुल ही उपलब्ध नहीं है। यह कालखंड यानी इमरजेंसी (1975) से पहले का काल।

ऐसा नहीं कि नानाजी व उनके सहयोगियों ने इससे पहले के नानाजी के भाषणों, पत्रों आदि का संग्रह नहीं कर रखा था। स्वयं नानाजी इस बारे में बताते रहे कि इमरजेंसी से पहले का उनका बहुत ही समृद्ध अभिलेखागार कहीं सुरक्षित जगह पर छिपाकर रखा गया था। क्योंकि उन परिस्थितियों में वह राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील था। जिन मित्रों के पास नानाजी की बहुत सी सामग्री थी, उनसे बीच-बीच में नानाजी की अनबन की बात समग्र में कहीं न कहीं पढ़ने को मिलेगी। लेकिन यह अनबन उनके अभिलेखागार के न मिल पाने का कारण नहीं रही होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। बहरहाल, इस महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन कालखंड की सामग्री तथा अन्य कुछ सामग्री अंत तक उपलब्ध नहीं हो पाई। दैवयोग से अगर कभी मिली, तो संस्थान उसे प्रकाशित करने में अपना सौभाग्य समझेगा।

बीते तीन बरसों में सभी संभावित और उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री एकत्र हो पाई, उसके आधार पर नानाजी समग्र को विषयवार प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। लेकिन नानाजी के कुछ वरिष्ठ सहयोगियों का मानना है कि इसे समग्र नहीं कहा जाए। क्योंकि नानाजी के जीवनकाल का एक बहुत बड़े भाग का लेखा-जोखा, जो उन्होंने स्वयं संजोकर रखा था, उपलब्ध नहीं है और उसके बिना उन्हें समग्रता से नहीं देखा जा सकता। वास्तव में, यह बहुत तकनीकी विषय है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर भी नानाजी का व्यक्तित्व समग्रता से देखा जा सकता है। बहुत से साक्षात्कारों व उनके द्वारा बाद में लिखे गए पत्रों आदि में नानाजी ने कई बार अपने उस कालखंड का विस्तार से उल्लेख किया है।

इसलिए उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही यह नानाजी वाङ्मय तैयार करने का निर्णय लिया गया।

विराट् पुरुष

नानाजी ने जिन विषयों पर विशेष जोर दिया, उन्हें प्रमुख रूप से निम्न विषयों में विभाजित किया गया। ये हैं—

1. सामाजिक पुनर्रचना
2. स्वावलंबन
3. शिक्षा
4. लोकनीति व राजनीति
5. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इनमें से प्रथम तीन विषय गोंडा, बीड़ और चित्रकूट प्रकल्पों से संबंधित हैं। इनमें प्रकल्पों की विस्तृत जानकारी (जो नानाजी के स्वयं के शब्दों में ही है), उनके लेख, भाषण, बौद्धिक व पत्रों का संग्रह है। सक्रिय राजनीति से दूर हो जाने के बाद भी नानाजी राजनैतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी लिया करते थे, लेकिन दखल नहीं दिया करते थे। वस्तुतः वह राजनीति से अधिक लोकनीति थी। यह एक ऐसा विषय रहा, जिस पर अन्य लोगों की नजर नानाजी के वक्तव्यों व विचारों पर रही। इसलिए कहीं-न-कहीं राजनीति पर उनके विचार संगृहीत होते ही रहे। संघ के मामले में तो वे जीवनपर्यंत स्वयं को स्वयंसेवक ही मानते रहे, और उनका कर्तृत्व भी उसी अनुरूप रहा। संघ के स्वयंसेवकों व अन्य पाठकों के लिए यह विषय भी बहुत रोचक रहेगा।

लेकिन यह समग्र तैयार करने की अंतिम अवस्था में संपादकों को एक नई समस्या से जूझना पड़ा। पुनरावृत्ति टालने के लिए जब Process of Elimination अपनाया गया, तब महसूस हुआ कि किन्हीं खंडों में सामग्री बहुत ही कम हो गई है और किसी में अधिक। इसलिए विभिन्न खंडों में विषयों का जिस प्रकार समावेश प्रस्तावित था, उसे बदलना आवश्यक हो गया।

वैसे भी इस वाइमय को अब समग्र न कहकर 'विराट् पुरुष नानाजी के जीवन के विभिन्न आयामों के प्रतिबिंब' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। विराट् पुरुष के चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—की प्रतिमूर्ति थे नानाजी। उनके विचारों व कर्तृत्व को इन चारों विषयों में अलग-अलग तो विभाजित नहीं किया जा सकता, न ही यह संभव है, न ही वांछित। इसलिए प्रकाशन व पठनीयता की दृष्टि से इन्हें निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. साक्षात् नानाजी
2. समाजशास्त्री नानाजी
3. अर्थशास्त्री नानाजी
4. शिक्षाविद नानाजी
5. राष्ट्रद्रष्टा नानाजी
6. राजनीतिज्ञ नानाजी

उपलब्ध सामग्री के आधार पर उपर्युक्त छह खंड आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं। संपादकीय टीम इनकी

विश्वसनीयता की पूरी जिम्मेदारी लेती है। यों तो प्रकाशन में किसी प्रकार की गलतियाँ न रह जाएं, इसका भरपूर प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी कोई गलती रह गई है तो उसके लिए संपादकीय टीम क्षमाप्रार्थी है।

इसके साथ ही सुधी पाठकों से निवेदन है कि अगर उन्हें नानाजी से संबंधित सामग्री कहीं भी उपलब्ध होने का भान होता है तो कृपया संस्थान के पते या दूरभाष पर संपादक को सूचित करने का कष्ट करें।

इस वाङ्मय के प्रकाशन में अनेकों लोगों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग रहा है। संस्थान के संरक्षक व पालक माननीय मदनदासजी इसमें निरंतर रुचि लेते रहे, इसकी प्रगति की जानकारी लेते रहे, मार्गदर्शन व सुझाव देते रहे। प्रधान सचिव डॉ. भरत पाठक ने चित्रकूट में जो सामग्री थी, उसे संपादकीय टीम को उपलब्ध कराने में स्वतःस्फूर्त भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व में चित्रकूट की टीम ने बिना किसी हस्तक्षेप के बहुत ही सटीक और व्यावहारिक सुझाव दिए। नानाजी के साथ भरतजी का लंबा अनुभव संपादकीय टीम के लिए बहुत काम आया। नानाजी के प्रति असीम भक्ति-भाव में डूबे संगठन सचिव श्री अभय महाजन को तो इसके प्रकाशन की चिंता निरंतर सताए रहती थी। उसके लिए उन्होंने कभी भी किसी भी प्रकार के संसाधनों की समस्या खड़ी नहीं होने दी। कुछ ऐसी समस्याओं के समाधान में भी उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही, जिनका उल्लेख किया जाना वांछनीय नहीं है।

नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. देवेंद्र स्वरूपजी और श्री यादवराव देशमुख से भी प्रारंभिक काल में विस्तार से चर्चा हुई। संस्थान के सचिव तथा दीर्घकाल तक नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. महेश चंद्र शर्मा पिछले तीन वर्षों में लगातार इसकी तैयारियों में रुचि लेते रहे। वाङ्मय का प्रथम प्रारूप उन्हीं के मार्गनिर्देशन में और सहमति से तैयार हुआ तथा उसका वर्तमान स्वरूप भी। हर कदम पर उन्होंने वाङ्मय के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया।

श्रीमती सुमेधा मिश्रा ने इसके प्रकाशन में सूत्रधार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बहुत विशाल भंडार था उनके सामने। उसमें से छंटाई करना, पुनरावृत्ति को टालना, संपादन करना, संदर्भ ढूँढ़ना, सामग्री को सिलसिलेवार संजोना, सचमुच भारी-भरकम काम था। इसके लिए लगन, निष्ठा, मेहनत व तन्मयता के साथ-साथ धैर्य की भी आवश्यकता थी। इन सभी गुणों का सुमेधाजी ने खूब परिचय दिया।

संस्थान के हर काम में सहयोगी रहने वाले पत्रकार राकेश शुक्ल ने संपादन में भी एक गुणी सहयोगी की भूमिका निभाई। समय-समय पर अन्य पत्रकार मित्रों ने भी पन्नों को पलटा और अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

संस्थान के दिल्ली कार्यालय में उपमहाप्रबंधक और वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री अमिताभ वशिष्ठ ने वाङ्मय के प्रकाशन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं जुटाकर काम को आसान किया। नानाजी के साथ बरसों तक कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करनेवाले संस्थान के महाप्रबंधक मेजर टी.आर. वर्मा इस महायज्ञ के लिए सदैव उपस्थित रहे।

बहुआयामी नानाजी के अनन्य सहायक रहे हेमंत पांडे संस्थान के हर काम में बहुपयोगी रहते हैं। नानाजी के साथ उनका लंबा अनुभव बहुत काम आया। इस वाङ्मय के प्रकाशन में भी उनकी उपयोगिता

विराट् पुरुष

हर कदम पर महसूस हुई और काम आई। ऐसे ही अंशुमान सिंह भी ऑलराउंडर हैं। हर किसी तरह के काम में मुसकराते हुए प्रस्तुत रहे। मुकेश का संस्थान या नानाजी से पहले का कोई परिचय नहीं रहा। लेकिन उन्होंने बहुत जल्दी ही पूरे काम को अच्छे से आत्मसात् कर लिया। श्री गब्बर सिंह रावत ने संस्थान के अभिलेखागार से पुरानी पुस्तकें व अन्य संदर्भ ढूँढ़ने में बहुत मदद की।

सुश्री दीपा सूद लगभग एक दशक से संस्थान के प्रकाशनों हेतु ग्राफिक व लेआउट डिजाइनिंग में जुड़ी हुई हैं। मामूली से संकेतों से ही नानाजी की पसंद, नापसंद को समझ जाती हैं और उसी के अनुरूप आउटपुट देती हैं।

प्रभात प्रकाशन किसी भी राष्ट्रवादी प्रकाशन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। नानाजी के लिए तो प्रभात कुमारजी ने स्वयं को समर्पित कर ही रखा है। उन्होंने इस वाइमय के प्रकाशन की जिम्मेदारी स्वेच्छा से ली। उनका हार्दिक साधुवाद।

इस महत्वपूर्ण प्रकाशन में सहयोग देने वाले जिन सहयोगियों के नाम यहां उल्लेख होने से रह गए हैं, उनसे करबद्ध क्षमाप्रार्थना।

युगाब्द 5116, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी
11 अक्टूबर, 2014, नई दिल्ली

अतुल जैन
संपादक

(प्रस्तुत वाइमय में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त नानाजी ने अपने जीवनकाल में एक पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' शीर्षक से 1979 में लिखी थी, जिसे दीनदयाल शोध संस्थान ने प्रकाशित किया था। उस समय देश भयंकर राजनैतिक झंझावात से गुजर रहा था। संघ के बहाने कुछ राजनैतिक तत्त्वों ने देश को फिर से अस्थिरता के दौर में ढकेल दिया था। इस पुस्तक में राजनैतिक दुर्भावना के शिकार संघ का विचारोत्तेजक अध्ययन अद्वितीय है। अगस्त 2011 में प्रभात प्रकाशन ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।)

विषय-सूची

आमुख

v

विराट् पुरुषः नानाजी देशमुख

vii

1. जनसंघ की कार्यपद्धति : संगठन व शुचिता सर्वोपरि हो	1
2. सांप्रदायिक सद्भाव : रचनात्मक कार्यों से संभव	15
3. धर्मनिरपेक्षता : भारतीय संदर्भ में हो बहस	19
3. पोखरण विस्फोट : जनाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति	27
4. निज पराक्रम करें : तभी छंटेगा निराशा का अंधेरा	30
5. विकास की दिशा जनता की सहमति से तय हो	35
6. एक राष्ट्र का विचार : नेतृत्व बने ईमानदार	37
7. सरकार पर निर्भरता : हमारी समस्याओं की जड़	40
8. लोकतांत्रिक जीवन : तृणमूल से सुदृढ़ बने	45
9. तिब्बत की आजादी : विश्व शांति के लिए आवश्यक	47
10. विशाल बांध : हर दृष्टि से पुनरावलोकन हो	49
11. पीढ़ी-दर-पीढ़ी के प्रेरणास्रोत : जयप्रकाश नारायण	51
12. जनता के युवा तुर्क : चंद्रशेखर	54
13. संवेदनशील मनीषी : जयप्रकाश नारायण	57
14. स्वभाव से ही योद्धा : रामनाथ गोयनका	61
15. पत्र	63
16. रिपोर्टर नानाजी	175
17. प्रदर्शनी में समग्रता का अभाव	176

विराट् पुरुष

18. कुटीर उद्योग : प्रादेशिक संगठन जरूरी	179
19. डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी : भारतमाता की बलिवेदी को सुशोभित कर गए	183
20. बाढ़ का समाधान उचित प्रबंधन से ही होगा	186
21. बाढ़ विभीषिका : पंगु सरकारी तंत्र	192
22. पंडित प्रेमनाथ डोगरा : सर्वस्व की आहुति देने वाले नायक	195
23. सतालोलुप कांग्रेस अपनाती है सभी हथकंडे	199
24. पुलिस अत्याचार गांव में चरम पर	203
25. जनसंघ : जन आशाओं का केंद्र	207
26. इंदिरा की राजनीति : सत्तावाद की पराकाष्ठा	211
27. भीषण जलसंकट : किसानों की दुर्दशा का कारण	218
28. समग्र क्रांति : मात्र सत्ता परिवर्तन नहीं	226
29. प्रशासन तंत्र : जवाबदेही का अभाव	230

जनसंघ की कार्यपद्धति संगठन व शुचिता सर्वोपरि हो

19 71 में लोकसभा के मध्यावधि चुनाव तथा 1972 में हुए विधानसभाओं के आम चुनावों में हमें अनपेक्षित पराजय सहनी पड़ी। उस कारण हमें आत्मनिरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ है और हम लोग जनसंघ के सभी पहलुओं पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। जनसंघ के नाते कार्य करते हुए 20 वर्ष का काल बीत गया है। इस काल में अनेक आम चुनाव एवं बहुत से उपचुनावों में हमने भाग लिया। जनसंघ के जन्म के ठीक बाद ही 1952 के आम चुनाव हुए। राजनीतिक दल के नाते एकदम नए होते हुए भी हमने बड़े उत्साह और अपेक्षाओं के साथ व्यापक परिमाण पर वह चुनाव लड़ा। प्रत्यक्ष विजय की दृष्टि से भले ही हमारे अनुमान गलत सिद्ध हुए हों, किंतु उस चुनाव के कारण जनसंघ को अखिल भारतीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त हो सकी। वह हमारे राजनीतिक जीवन का प्रारंभ ही था। चुनाव प्रक्रिया से हम अनभिज्ञ थे। जनसाधारण के लिए हम अपरिचित थे। हमारा नेतृत्व (डॉ. मुखर्जी को छोड़कर) कार्यकर्ताओं तक सीमित था। हमारे प्रत्याशी नए-नए और चुनाव के मामले में अनुभवहीन थे। अतः चुनाव परिणामों को बहुत आश्चर्यजनक मानने का कारण नहीं था। इसी कारण कार्यकर्ताओं को वास्तविकता समझने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। वे शीघ्र ही संभल गए और फिर से कार्य में जुट गए।

इसके बाद 1967 में आम चुनावोपरांत तक का काल जनसंघ के लिए निरंतर प्रगति का काल रहा है। संगठन की व्यापकता और दृढ़ता, जनसंपर्क हेतु कार्यकर्ताओं की कार्यशीलता तथा जनसंघ की लोकप्रियता सतत बढ़ती गई। इस काल में हमने चार आम चुनाव और अनेक उप-चुनाव लड़े। इन चुनावों में प्रमुख विरोधी दल के रूप में उभरकर आने की हमारी आकांक्षा रही। इसीलिए हमने जनता से समर्थन मांगा। उस समय की हमारी आकांक्षा अपनी क्षमता के अनुरूप थी और जनता की समझ में आने के लायक थी। फलस्वरूप चुनाव परिणाम अनुकूल रहे।

1947 से 1967 तक कांग्रेस का सर्वत्र एकत्र राज्य चला। इतने लंबे काल में जनसाधारण

विराट् पुरुष

के लिए अपेक्षित हितावह परिवर्तन नहीं हो पाया। गरीब और मध्यम वर्ग की अपेक्षाएं पूरी नहीं हुई। प्रशासन का ढर्रा रूढ़िवादी बन गया। कांग्रेसियों के व्यवहार में पग-पग पर प्रकट होनेवाली अधिकार भावना से जनता मर्माहत हुई। घूसखोरी, अन्याय, सिफारिश, भाई-भतीजावाद से लोग ऊब गए और इसी कारण 1967 के आम चुनाव में कांग्रेसी कुशासन के विरुद्ध जनसंतोष विद्रोह कर उठा। शासन चलाने के लिए कांग्रेस का स्थान कौन ले सकता है, इसकी जनता ने चिंता नहीं की। जो भी, जहां कहीं कांग्रेसी को पराजित करने की क्षमता रखता है, ऐसा जनता ने समझा, उसने उसे ही समर्थन देकर विजयी बनाया। परिणामस्वरूप कांग्रेस को अधिकांश राज्यों में सत्ता से हाथ धोना पड़ा। 1967 की विरोधी दलों की विजय में कांग्रेस के प्रति जन-विद्रोह की भावना का भी हाथ रहा।

कांग्रेसी कुशासन के 20 वर्ष बाद देश की राजनीति में एक नया मोड़ आया था। इस नाजुक घड़ी में नए मोड़ की पृष्ठभूमि और जनभावनाओं को ठीक से समझने की आवश्यकता थी। उस ओर हम भी ध्यान न दे सके। परिस्थिति भी बड़ी विचित्र थी। तमिलनाडु और दिल्ली को छोड़कर अन्य प्रदेशों में जहां कांग्रेस बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी, वहां कोई भी अन्य दल ऐसी स्थिति में नहीं था जो अपने बलबूते पर शासन संभाल सके।

1955 में डॉ. लोहिया ने घोषणा की थी कि सात साल में वे शासन पर कब्जा कर करेंगे। उसमें वे पूर्ण विफल हुए। अतः उन्होंने 1962 से गैर-कांग्रेसवाद की हवा चलाई। कांग्रेस के विरुद्ध स्वतंत्र पार्टी से लेकर कम्युनिस्टों तक अर्थात् गैर-कांग्रेसी सभी दलों व निर्दलियों को एक साथ लाकर कांग्रेस को सत्ता से हटाने का लक्ष्य रखकर के चले। 1967 के चुनाव के बाद वह स्थिति पहुंच गई। गैर-कांग्रेसी सरकारें गठित करने के लिए सब का साथ आना आवश्यक हुआ और मिलीजुली सरकारों का युग प्रारंभ हुआ।

इस वातावरण ने भले-बुरे की पहचान भुला दी। सत्ता-प्रियता मानव सुलभ स्वभाव है। कांग्रेस की पराजय से सत्ता प्राप्ति का अवसर उपस्थित हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में कार्यशील व्यक्तियों के मुंह से लार टपकने लगी। जिन्हें प्रत्यक्ष हुकूमत करने का अवसर नहीं मिला था, वे इसके लिए दौड़ पड़े। अवसरवादिता की आंधी चल पड़ी। दल-बदल को प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी। उन्हें मुख्यमंत्री और मंत्री पद के उपहार मिलने लगे। कांग्रेस और अन्य दलों में विधायकों को तोड़ने की होड़ लग गई। अपना बहुमत बनाए रखने की चिंता में ही सबका ध्यान और शक्ति लगी रही। जनभावना और जनअपेक्षाओं की ओर पूर्ण रूप से दुर्लक्ष्य हुआ। जिस कारण जनता कांग्रेस के विरुद्ध विद्रोह कर उठी थी, वे सब बुराइयां नई सरकारों में भी नग्न तांडव करती हुई देखने को मिलीं। प्रशासन और अधिक भ्रष्ट बनता गया। सरकारों का बनना-बिगड़ना आए दिन की बात बनी। इस कारण जनता अधिक परेशान हो उठी। मिली-जुली सरकारों में सम्मिलित या संबंधित दलों की प्रतिष्ठा में कमी आने लगी। उस बात को समझते हुए भी उन सरकारों से अलग होने का साहस दिखाया न जा सका। सरकार छोड़ने की दिशा में कदम उठाएं या न उठाएं इसी उलझन में हम भी फंसे रहे। दल-

बदल की बीमारी बहुत बढ़ गई थी। अन्य दलों की तुलना में जनसंघ की प्रतिष्ठा इस बारे में बनी रही, किंतु इस बीमारी से हम पूर्ण रूप से अछूते न रह सके।

शुद्ध संगठन का दायित्व संभालने में संलग्न अपने कार्यकर्ता भी शासनाभिमुख बनते गए। सत्ता में भागीदार बनने के बाद अपने कार्यकर्ताओं में परस्पर तनाव पैदा हुआ और बढ़ता गया। परस्पर विश्वास में कमी आई। एक-दूसरे की चर्चा में रुचि बढ़ी। इसी में विभिन्न स्तरों के कार्यकर्ताओं का समय बीतने लगा। नेताओं का कार्यकर्ताओं से, कार्यकर्ताओं का अपने सदस्य तथा सहानुभूति रखनेवालों से और जनता से संपर्क टूटता गया। स्वयं कार्य करने की प्रवृत्ति का स्थान आदेशवाद ने ग्रहण किया। अनेक प्रमुख कार्यकर्ताओं के द्वारा कुछ कार्य करने से यह कहकर मना किया जाने लगा कि यह कार्य तो साधारण कार्यकर्ता के करने का है। मेरे व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं। हम सब कार्यकर्ता हैं और सब समान हैं, इस भावना को इससे गहरी ठेस पहुंची। अपने संगठन के मर्म पर आघात हुआ। इतना ही नहीं, इस कारण जनता के मन में जनसंघ कार्यकर्ताओं के प्रति श्रद्धा भी कम हुई। इन सब बातों की सम्मिलित प्रतिक्रिया जनमानस पर होना स्वाभाविक था। 1947 से 1967 तक लगातार चले कांग्रेसी कुशासन से त्रस्त जनता को 1967 के चुनाव के बाद अस्तित्व में आई हुई मिली-जुली सरकारों से कोई राहत नहीं मिली। फलस्वरूप जनता सभी राजनीतिक दलों से निराश हो गई। अपने भविष्य के बारे में वह हताश हो गई। उसके मन में यह बात जम गई कि शासन का ढर्रा कुछ ऐसा है, जिसमें केवल धनी और बलवान ही पनप सकते हैं। गरीब, कमजोर और पिछड़ों की कोई पूछ नहीं है।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने जनसाधारण की इस नाजुक मनःस्थिति को पहचाना। वैसे भी वे समझ चुकी थीं कि कांग्रेस संगठन व शासन के प्रारंभ से चले आए ठेकेदारों को हटाए बिना अपनी सत्ता निर्विघ्न नहीं रह सकती। अतः उन्होंने साहस कर कांग्रेस को तोड़ा और रुढ़िवाद को खत्म करने का श्रेय प्राप्त किया। देश के नौजवानों के दिल में जगह बना ली। कम्युनिस्टों द्वारा प्रचलित, गरीबों के हित में दिखाई पड़नेवाले कुछ कदम उठाए। गरीबी हटाने का नारा लगाकर गरीब और पिछड़े लोगों के मन में आशा जगाई और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया। समाज के 64 प्रतिशत लोगों की मैं प्रतिनिधि हूँ, यह प्रतिभा उन्होंने प्रचार के द्वारा उजागर की। इन तबके के लिए उन्होंने प्रचार तंत्र और शासन तंत्र का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

विरोधी दलों ने भी श्रीमती इंदिरा गांधी के व्यक्तित्व को अधिक शक्तिशाली बनाने में योगदान किया। 'इंदिरा हटाओ' के नारे के आधार पर संयुक्त मोरचा स्वयं की प्रतिमा तो न बना सका, किंतु श्रीमती इंदिरा गांधी बहुत शक्तिशाली हैं, इस धारणा को जनता के मन में जमाने में अप्रत्यक्ष रूप में सहायक बना।

संगठन कांग्रेस का नेतृत्व स्वीकार कर हमने 28 वर्ष शासन में रहकर बदनाम हुए लोगों का लांछन अपने ऊपर ओढ़ लिया। 'इंदिरा हटाओ' का नारा लगानेवाले संयुक्त मोरचे में सम्मिलित दल प्रधानमंत्री पद का भार वहन करनेवाला कोई एक नेता तय करने में पूर्ण विफल हुए। अतः

विराट् पुरुष

जनता के मन में स्वयं के प्रति विश्वास निर्माण करना संयुक्त मोरचे के लिए संभव नहीं हुआ। जनता मिली-जुली सरकारों के अनुभव से समझ गई थी कि यह खिचड़ी पकानेवाली, आपसी स्वार्थ और संघर्ष में ही लगी रहनेवाली पुरानी ही चौकड़ी है। इनसे अपना कोई भला नहीं हो सकता। जनता न कम्युनिस्टों के हौवे से डरी, न मुसलिम लीगी सांप्रदायिकता से भड़की। वह नया, साहसी और जनसाधारण का अर्थात् गरीबों का हिमायती नेतृत्व और शासन चाहती थी। श्रीमती इंदिराजी के नेतृत्व में इन दोनों बातों की प्राप्ति की संभावना जनता ने अनुभव की और उसे खुलकर समर्थन दिया।

हमारे लिए यह विशेष चिंता का विषय नहीं होना चाहिए। इंदिरा गांधी के व्यक्तित्व की नींव मजबूत नहीं है। उनका नेतृत्व न ठोस संगठन पर खड़ा है, न किसी आदर्शवाद पर। वह केवल सत्ता के सहारे उभरा हुआ है। सत्ता के आधार पर न आदर्शवाद पनप सकता है, न संगठन ही खड़ा किया जा सकता है। चुनाव में जो तरीके उन्होंने अपनाए हैं, वे न शासन में शुचिता ला सकते हैं, न सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। निकट भविष्य में न वे आर्थिक दशा में ही सुधार ला सकते हैं, न गरीबों को राहत और बेकारों को काम ही दे सकते हैं। अतः अपना नेतृत्व प्रभावी, संगठन व्यापक और मजबूत बनाने तथा जनसमर्थन प्राप्त करने का हमें पूरा अवसर प्राप्त है।

गत 20 वर्ष की प्रगति और अवस्था देखकर कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि जनसंघ अपने बलबूते पर सार्वदेशिक आधार पर समाजव्यापी बनकर शासन-सूत्र संभालने की स्थिति में शायद कभी नहीं आ सकता। इसी भावना के कारण यह प्रस्ताव सामने आ सकता है कि इंदिरा कांग्रेस के विरुद्ध अन्य दलों को मिलाकर व्यापक और विशाल आधार पर नए दल का निर्माण किया जाए। मेरे विचार में यह प्रस्ताव न आवश्यक है, न उपयोगी। इसके दो कारण हैं—

- आज के समय में त्यागमय, साहसी और जनसाधारण को स्पर्श करनेवाला व्यापक संगठन तथा प्रखर नेतृत्व समाज के हर स्तर पर आवश्यक है। ऐसा संगठन और नेतृत्व सब दलों को मिलाकर खड़ा करना कठिन है। प्रखर आदर्शवाद के बिना त्याग की भावना जीवन में समा नहीं सकती। केवल सत्ता प्राप्ति के लिए बना मेल-मिलाप गुटबाजी का एक अखाड़ा मात्र बनकर रह जाएगा। एक-दूसरे के प्रति आज तक चले आनेवाले पूर्वग्रह इसमें खाद का काम करेंगे। परस्पर विश्वास और जनसेवा के लिए स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण निर्माण नहीं हो सकेगा। ऐसी स्थिति में इस प्रकार का संगठन चाहे जितना व्यापक आधार पर खड़ा किया जाए, जनविश्वास अर्जन नहीं कर सकेगा और न अधिक दिन टिक ही सकेगा।
- जिन्हें मिलाकर व्यापक आधार बनाने का विचार किया जा सकता है, वे कौन हैं? उनके प्रति समाज की धारणा क्या है, उनमें आदर्शवाद की प्रखरता, परिश्रम करने की क्षमता और अन्यो को प्रेरणा देने की पात्रता कितनी है? सत्ता से हटते ही स्वयं निष्प्रभ होकर निराश मनःस्थिति

में पराभूत मनोवृत्ति का शिकार बने लोगों के सहारे व्यापक आधार पर नई परिस्थिति का नेतृत्व करने के लिए नया संगठन खड़ा करने की कल्पना व्यावहारिक अनुभव नहीं होती।

ऐसी परिस्थिति में हमें स्वयं अपने संबंध में ही एक बार पुनर्विचार कर अपने संगठनों को एक आदर्श राजनीतिक दल के रूप में व्यापक आधार पर खड़ा करने की आवश्यकता है। अभी तक इस दिशा में न गंभीर रूप से चिंतन हो पाया है, न प्रत्यक्ष कारगर कदम उठाने का लगन के साथ प्रयास ही किया गया है।

अपना देश विशाल है। पचपन करोड़ से अधिक हमारी जनसंख्या है। भारतीय समाज विविधताओं का एक नमूना है। अनंत काल से चले आने के कारण बहुत सी रूढ़ियां प्रचलित हैं। उनमें से अनेक वर्तमान संदर्भ में निरर्थक होते हुए भी चलती चली आ रही हैं। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी आविष्कारों के कारण समाज का आर्थिक जीवन नया रूप ग्रहण करता जा रहा है। फलस्वरूप सामाजिक ढांचे में भी परिवर्तन हो रहा है। फिर भी अनुपयोगी परंपराओं से समाज का मानसिक लगाव और उनके लिए आग्रह कायम है।

समाज में राजनीतिक जानकारी और चेतना नगण्य है। हजार वर्ष गुलामी में बीतने के कारण शासकों की आलोचना करने की प्रवृत्ति होते हुए भी शासन के बारे में उदासीनता बनी हुई। बालिग मताधिकार के कारण चुनाव काल में कुछ हलचल अवश्य नजर आती है किंतु वह प्रवृत्ति में परिवर्तन की सूचक नहीं है। समाज की इस अवस्था में हमें समाजव्यापी कर्तृत्वशाली और परिणामकारी राजनैतिक दल के रूप में विकसित होकर राष्ट्र जीवन में आवश्यक और उपयुक्त परिवर्तन लाना होगा। इसके लिए हमें आत्मविश्वास से सुनियोजित और सातत्य के साथ कठोर परिश्रम करना पड़ेगा। इस दृष्टि से अपने सम्मुख दो प्रमुख कार्य हैं—

- संसदीय लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए वर्तमान परिस्थिति की पृष्ठभूमि में चुनाव तंत्र के सभी पहलुओं का अध्ययन कर सफलता के लिए आवश्यक कदम उठाना।
- वर्तमान और आगामी परिस्थिति को ध्यान में रखकर सामाजिक और आर्थिक क्रांति का नेतृत्व अपने हाथ में लेना। इसके लिए आवश्यक अध्ययन, मनन और चिंतन कर साहसी कदम उठाते हुए युवा-शक्ति को सहयोगी बनाना।

इस लक्ष्य सिद्धि के लिए एकमेव साधन है—आदर्शवादी प्रखर नेतृत्व और कर्तव्य तत्पर सर्वस्पर्शी सजीव संगठन। इसी एक विषय के संबंध में मैं अपना मानस प्रकट करना चाहता हूँ।

अपने संगठन का ढांचा है—सदस्यता, समितियां और उनकी विभिन्न इकाइयां। इन इकाइयों में कार्यसमिति और पदाधिकारी।

इन सबकी क्रियाशीलता, समुचित विकास और विस्तार, विभिन्न स्तरों पर समस्याओं का अध्ययन, उनके निराकरण के प्रयास, उसके लिए मार्गदर्शन और निरीक्षण, वैचारिक अधिष्ठान के बारे में सब स्तरों पर अध्ययन और निरीक्षण, सदस्य एवं कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, जनशिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन आदि का ठीक रूप आज तक विकसित नहीं किया जा सका। यदा-कदा कुछ वर्ग अवश्य हुए हैं, किंतु यह सतत चलनेवाली आवश्यक प्रक्रिया न बनाई जा सकी।

विराट् पुरुष

प्रशासन की विभिन्न इकाइयों के लिए आवश्यक प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के निर्माण की ओर भी ध्यान नहीं दिया जा सका। जहां कहीं इन विभिन्न इकाइयों में हमारे कार्यकर्ता पहुंचे, उनका भी मार्गदर्शन करना संभव नहीं हो पाया। अपने आप स्वयं स्फूर्ति से अपनी समझ के अनुसार अन्य दलों की प्रतिस्पर्धा में जो जितना और जैसा करता गया, यही हमारी इस दिशा में आज तक की उपलब्धि है। एकाध प्रदेश में इस दिशा में कुछ प्रयास किया भी हो तो केंद्रीय स्तर पर उसकी न जानकारी प्राप्त की गई, न उनके मार्गदर्शन की चिंता। कभी किसी मतदान के अवसर पर या अन्य प्रसंग में किसी सदस्य ने प्रतिकूल कदम उठाया और वह सामने लाया गया तो उस पर अनुशासन की कार्यवाही करने तक ही अपना दायित्व समझा।

ऐसी स्थिति में क्या हमें यह अपेक्षा करना चाहिए कि अपना संगठन परिणामजनक और लोकप्रिय बनेगा? क्या जनसंगठन के रूप में विकसित होने के लिए जहां जैसा भी चल रहा है, पर्याप्त है? इसी स्थिति में रहकर क्या हम सामाजिक और आर्थिक जीवन में आवश्यक परिवर्तन ला सकेंगे? हमारी यही चाल रही तो क्या हम समाज के हर एक स्तर पर नेतृत्व प्रदान करने और विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों के लिए उपयुक्त जनप्रतिनिधियों की पूर्ति करने में सफल हो सकेंगे?

अभी तक हमने इन प्रश्नों पर गंभीरता से विचार नहीं किया है। इसका अर्थ यह नहीं कि ऐसा विचार करने की अभी तक आवश्यकता ही न पड़ी हो। अनेक जगहों की पंचायतों, जिला परिषदों, सहकारी समितियों, नगरपालिकाओं, महानगरपालिकाओं, विधानसभाओं और लोकसभा में हमारे प्रतिनिधि हैं।

1967 के आम चुनाव के उपरांत तो प्रादेशिक सरकारों में हमारे कार्यकर्ता प्रत्यक्ष शासन सूत्र संभालने का अवसर प्राप्त कर चुके हैं, किंतु अखिल भारतीय स्तर पर इन सब आवश्यकताओं पर चिंतन करते हुए मार्गदर्शन की पद्धति की हम व्यवस्था न कर सके। यह सब बातें नई नहीं हैं। अनेक बंधुओं के मन में समय-समय पर यह न्यूनताएं तीव्रता से ध्यान में आईं। किंतु इसके लिए सामूहिक चिंतन और व्यवस्था की ओर अभी तक दुर्लक्ष्य होता गया है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि हम सब स्तरों पर सामूहिक नेतृत्व खड़ा न कर सके।

अखिल भारतीय राजनीतिक दल के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वह हर एक स्तर पर अर्थात् सार्वदेशिक, प्रादेशिक, जिला, तहसील, विकास प्रखंड और ग्राम पंचायत के स्तरों पर क्रियाशील, कर्तव्य तत्पर लोकप्रिय और प्रभावी नेतृत्व खड़ा करें। इसके बिना राजनीतिक दल का कोई अर्थ नहीं हो सकता, किंतु इस दिशा में भी अभी तक सोच-विचार कर प्रयास नहीं किया गया।

देश का आकार-प्रकार और विविधताओं को देखते हुए सार्वदेशिक स्तर पर विभिन्न विषयों को लेकर कम-से-कम 25-30 कार्यकर्ताओं की टीम सामूहिक नेतृत्व के रूप में विकसित करना आवश्यक था, किंतु 20 वर्ष के काल में हम उस दिशा में कदम न बढ़ा सके। प्रादेशिक स्तर पर भी वही हालत है। ऐसी स्थिति में जिला, नगरपालिका, विकास

प्रखंड और ग्राम पंचायत के स्तर की चर्चा करना ही व्यर्थ है। इस प्रश्न के सब पहलुओं पर गंभीर चिंतन कर इसकी व्यवस्था करने की दिशा में तेजी से कदम बढ़ाने का हमें अविलंब निर्णय करना चाहिए।

जनसंघ संविधान के अनुसार हमारी समितियां क्षेत्रीय आधार पर गठित हैं। सदस्यता भी क्षेत्रीय आधार पर ही की जाती है। क्षेत्रीय आधार पर ही प्रशासनिक इकाइयां हैं। अतः क्षेत्रीय आधार पर हमारा कार्य खड़ा होना स्वाभाविक और आवश्यक है। हमारे सदस्य एवं समिति की क्रियाशीलता के आधार पर ही उस क्षेत्र में नेतृत्व का विकास होगा। अतः इस प्रक्रिया को सतत चलने देने की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रत्यक्ष संगठन के कार्य के लिए हमारा कार्यकर्ता सदस्यता के अभियान के काल में आम जनता के संपर्क में आता है। सदस्यता अभियान का दायित्व साधारणतः स्थानीय समिति का है। जहां स्थानीय समिति क्रियाशील नहीं है अथवा बनी ही नहीं है, वहां मंडल या जिले के स्तर के कार्यकर्ता यह कार्य करेंगे, यह अपेक्षित है।

स्थानीय समिति संगठन की नींव है। इसकी क्रियाशीलता, व्यापकता और राजनीतिक सजगता से ही दल का रूप निखर सकता है। हर आवश्यकता के लिए इसी से कार्यकर्ता और नेताओं की पूर्ति संभव है। इसी स्तर पर आम जनता और दल का निकटतम संपर्क रहता है। स्थानीय समिति की प्रतिष्ठा और उसे प्राप्त जन विश्वास को अपने संगठन-शक्ति की कसौटी मानी जानी चाहिए। दल की नीति, निर्णय और नेतृत्व की जानकारी इसी के माध्यम से जनता तक पहुंच सकती है। हमारी नीति चाहे जितनी उत्तम, निर्णय चाहे जितने सामाजिक और उपयुक्त हों, उन्हें कार्यान्वित करने की यह इकाई निष्क्रिय रही तो सब निरर्थक सिद्ध होंगे। 1971 के मध्यावधि चुनाव के अवसर पर गरीबी के विरुद्ध संघर्ष का उद्घोष सर्वप्रथम हमने ही किया था। हमारी स्थानीय समितियां सजग और सक्रिय रहतीं तो इस उद्घोष की जनता में पहुंच जनसंघ के नाम से होती। अतः स्थानीय समितियों के गतिविधियों तथा उनका संचालन करनेवाली मंडल समिति के कार्यकलापों का हमें विशेष ध्यान रखना आवश्यक है, किंतु हमारी आज तक की गतिविधियों में यह इकाई सर्वाधिक दुर्लक्षित है। इसकी सक्रियता का स्मरण केवल चुनाव के काल में ही और वह भी अंतिम दिनों में होता है।

सदस्य प्रबोधन की आवश्यकता

स्थानीय समितियों में भर्ती हुए अपने सदस्यों और चुनाव अभियान के काल में या अन्य किसी जन प्रदर्शन के समय साथ में दिखाई पड़नेवाली जनसमूह में जनसंघ की जानकारी और दल के प्रति निष्ठा की दृष्टि से कोई अंतर है, ऐसा हम कह नहीं सकते।

जनसंघ के साधारण सदस्यों में जनसंघ की जानकारी, जनसंघ की भारत के भविष्य की कल्पना, जनसंघ के प्रति अभियान की भावना, जनसंघ के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने की लगन और जनसंघ की देश भर में चलनेवाली गतिविधियों को जानने की सतत उत्कण्ठा निर्माण

विराट् पुरुष

हो, इसलिए विशेष प्रयासों की योजना और वह ठीक से कार्यान्वित हो रही हैं, इसके लिए निरीक्षण की व्यवस्था खड़ी करनी होगी। अन्यथा सदस्य बनकर पूरा वर्ष बीत जाने पर भी अपनी सदस्यता चालू रखने के लिए साधारण सदस्यों में कोई रुचि अनुभव नहीं होती।

- स्थानीय समिति के सभी सदस्यों का मासिक सम्मेलन—हर एक सदस्य उसमें उपस्थित रहे, इसका ध्यान रखा जाए, सदस्य बनते समय ही उसे इसकी कल्पना दी जाए। सम्मेलन का समय और स्थान आदि की सूचना हर एक सदस्य को समय से मिला करें। सम्मेलन का समय ऐसा रखा जाए, जिसमें महिला सदस्यों को सम्मिलित होने में कठिनाई न हो। इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया जाए कि सदस्य अपने परिवार के बालिग महिलाओं को भी इस सम्मेलन में जनसंघ सदस्य के नाते ले आया करें। जो सदस्य सम्मेलन में उपस्थित नहीं हो पाए, उनसे मिलकर उनकी अनुपस्थिति के कारण जानकारी करने की पद्धति विकसित की जाए और उसकी रपट अगले सम्मेलन में मंत्री द्वारा प्रस्तुत हो। जो सदस्य सम्मेलन में नहीं आ पाए, उन्हें सम्मेलन में हुए कार्यक्रम और निर्णयों की जानकारी कराने की व्यवस्था रहे।
- प्रत्येक सदस्य वर्ष में एक बार अपनी पांच दिन की आय जनसंघ कोष में नियम से दिया करे, यह परिपाटी चलाई जाए।
- प्रत्येक सदस्य जनसंघ द्वारा संचालित किसी-न-किसी मोरचे में सक्रिय हो, इसका ध्यान रहे।
- जनसंघ द्वारा आयोजित जनसभा, प्रदर्शन आदि कार्यक्रमों में हर एक सदस्य सम्मिलित हो और अपनी गली, मोहल्ला या ग्राम से जनसाधारण को उसमें सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित कर उन्हें आग्रह से ले आए। अपने परिवार के भी महिला-पुरुष उसमें सम्मिलित हों, इसका ध्यान रखें।
- वह अपना साहित्य समाज में बेचने का कार्य करें।
- जनसंघ का साहित्य स्वयं पढ़े। पढ़ने में असमर्थ सदस्यों को अपना साहित्य पढ़कर सुनाने और समझाने के कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित किए जाएं।
- अपने क्षेत्र के सभी घरों से जनसंघ के लिए निधि एकत्रित करने के कार्य में हर एक सदस्य को सहभागी बनाया जाए। हर एक पुरुष सदस्य और व्यवस्था कर पानेवाली महिला सदस्य सप्ताह में एक दिन या कम-से-कम आधा दिन जनसंघ के किसी-न-किसी कार्य के लिए लगाएं। इसके लिए व्यावहारिक योजना बनाकर उसे कार्यान्वित किया जाए।
- समाज में लोकप्रिय और अनुकरणीय व्यक्तित्व के रूप में प्रत्येक सदस्य के जीवन का विकास होता रहे, इसकी प्रेरणा और प्रोत्साहन सदस्यों को मिले। इसी से जनसंघ के सदस्यों के व्यक्तित्व की विशेषता समाज अनुभव कर सकेगा, जो आवश्यक है।
- उस क्षेत्र में रहनेवाले युवक और युवतियों के लिए नियमित सम्मेलन आयोजित कर उन्हें राजनीतिक गतिविधि की नियमित जानकारी देते हुए उन्हें समाज सेवा के किसी प्रत्यक्ष कार्य में संलग्न करना। इन्हीं में से अपने लिए कार्यकर्ताओं की आवश्यक संख्या में पूर्ति हो सकती है।

जनसंघ सदस्यों की साधारण शिक्षा के लिए निम्न साहित्य आवश्यक है—

- जनसंघ के 20 वर्ष
- जनसंघ की उपलब्धियां
- भारत की परंपरा, रूढ़ियां और जनसंघ
- जनसंघ की राष्ट्रीय नीति, जनसंघ की भाषा नीति, जनसंघ और वैदेशिक नीति
- जनसंघ की आर्थिक नीति और कार्यक्रम—
 - (अ) कृषि, किसान, खेतिहर मजदूर
 - (ब) औद्योगिक नीति—पूंजी, व्यवस्था, लाभ और मजदूर
- जनसंघ और पीड़ित, प्रताड़ित तथा पिछड़ा वर्ग
- जनसंघ और महिलाएं
- जनसंघ और युवा वर्ग
- जनसंघ और बेकारी
- जनसंघ और हरिजन
- जनसंघ और सांप्रदायिकता
- जनसंघ और देश में पिछड़े क्षेत्र
- जनसंघ और वनवासी
- जनसंघ और राज्य पुनर्गठन
- जनसंघ और उपभोक्ता
- जनसंघ और सहकारी अभियान
- जनसंघ और असमानता
- जनसंघ और शिक्षा, विद्यार्थियों एवं अध्यापक
- जनसंघ की भावी भारत की कल्पना।

इसी के साथ हमें अपने संगठन के विभिन्न स्तरों पर निम्न कार्यक्रम आयोजित करने होंगे—

- साधारण सदस्यों की शिक्षा व्यवस्था (राजनीतिक)।
- विभिन्न स्तरों पर कार्यकर्ता प्रशिक्षण वर्ग।
- प्रशिक्षितों को उनकी रुचि के अनुसार प्रत्यक्ष कार्य का अनुभव कराने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में (वर्गों में भी) कार्य करने के लिए कम-से-कम एक माह अन्यत्र भेजना।
- जनसंघ के पदाधिकारी एवं विभिन्न मोरचों के प्रमुखों के सम्मिलित प्रशिक्षण वर्ग लगाए जाएं। इससे अपने व्यापक कार्य में सामंजस्य और परस्पर सहयोग बढ़ेगा।

जिस रूप में हमें अपने संगठन को व्यापक रूप देना आवश्यक है और आम जनता से बराबर संपर्क बनाए रखने की आवश्यकता है, हमें संपूर्ण समय इसी कार्य में लगानेवाले कार्यकर्ताओं की व्यवस्था करनी होगी। यह व्यवस्था पूर्ण रूप से आर्थिक आधार पर खड़ी की जा सकती है।

विराट् पुरुष

अतः आवश्यक है कि हम युवकों एवं युवतियों को इस कार्य के लिए तैयार करें। उनसे कम-से-कम दो-तीन वर्ष पूर्ण रूप से इस कार्य के लिए मांगे जाएं।

उनके प्रशिक्षण की नियमित व्यवस्था खड़ी कर उसे सतत चलाना होगा। इसी से हमें स्थायी रूप से आवश्यक संख्या में हर एक क्षेत्र में कार्य करने लायक लोग प्राप्त हो सकेंगे।

संपूर्ण समाज को अपने प्रभाव में लाकर उसमें समयानुकूल और उचित परिवर्तन कराने, उसे स्वस्थ बनाने, प्रशासन को ठीक से संचालित करने और आर्थिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए हमें विविध प्रकार का नेतृत्व खड़ा करना होगा जैसे—

- क्षेत्रीय
- जनसेवी और
- व्यावसायिक नेतृत्व

क्षेत्रीय नेतृत्व

हमें मोटे तौर पर अपने कार्यकर्ताओं में विभिन्न इकाइयों का काम बांट देना होगा। संबंधित कार्यकर्ता इन इकाइयों की गतिविधियों का कानूनी तथा व्यावहारिक अध्ययन करें। इसके लिए विशेष प्रेरणा देनी होगी। विभिन्न इकाइयों के हर एक निर्वाचित क्षेत्र के लिए हमें प्रत्याशी के रूप में भी नेतृत्व का विकास करना होगा। उनमें लोकोपयोगिता, लोकप्रियता, कर्तव्यपरायणता और समयसूचकता विकसित करने का ध्यान रखना होगा। इस दिशा में बढ़ने से हम लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से लेकर ग्राम पंचायत निर्वाचन क्षेत्रों तक नेतृत्व के रूप में विकासमान होनेवाली टीम खड़ी कर सकेंगे। यह टीम प्रशिक्षित और संगठन के साथ तादात्म्य रखनेवाली बनेगी।

इस व्यवस्था से संगठन में कुछ दोष आने की आशंका व्यक्त की जा सकती है। जैसे अन्य महत्वाकांक्षी लोगों के मन में डाह और अन्य कार्यकर्ताओं में उत्साह की कमी, किंतु इन आशंकाओं को महत्व दिया गया तो क्षेत्रशः लोकप्रिय नेतृत्व खड़ा करना संभव नहीं होगा। जब तक चुनाव पद्धति में निर्वाचन क्षेत्र के लिए प्रत्याशी के रूप में व्यक्ति की अनिवार्यता है, हमें यह व्यवस्था स्वीकार करनी ही पड़ेगी। समाज के लोग सिद्धांत और संगठन से व्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं। उनकी धारणा है कि समस्याओं का निराकरण या आवश्यकताओं की पूर्ति किसी व्यक्ति के द्वारा ही संभव हो सकती है। अतः क्षेत्रीय आधार पर नेतृत्व खड़ा करने का सुविचारित प्रयास आवश्यक है। यह नेतृत्व ही प्रशासन की विभिन्न इकाइयों में निर्वाचित होकर जनसंघ का जनप्रतिनिधि के रूप में कार्य करने में सफल हो सकेगा।

जनसेवा नेतृत्व

शासन के सभी विभाग—सरकारी और अर्द्धसरकारी जनहित के कार्यों में संलग्न रहने

के लिए बने हैं। किंतु वे जनहित का कार्य कितना कर पाते हैं, यह सर्वविदित है। समाज के प्रभावी लोग अपना कार्य तो किसी भी प्रकार करा लेते हैं, किंतु सर्वसाधारण जनता पूर्ण रूप से उपेक्षित रह जाती है। शासन के सभी विभाग जनता के लिए सही रूप में उपयोगी सिद्ध हों, इसके लिए हमें प्रयत्नशील होना पड़ेगा। इससे जनता का तो हित होगा ही हमारे लिए जन-समर्थन बढ़ेगा और हमारे कार्यकर्ताओं को प्रशासन और प्रशासन में संलग्न लोगों के गुण-दोषों का ठीक-ठीक ज्ञान होगा। यह ज्ञान हमारे जन-प्रतिनिधियों के लिए जो प्रशासन के विभिन्न इकाइयों में निर्वाचित होकर पहुंचेंगे, बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। अन्यथा जन-प्रतिनिधि मंत्री बनने के बाद भी अपने विभाग को समझने की क्षमता नहीं रख पाते। इस कार्य का रूप निम्न प्रकार का हो सकता है—

उदाहरण के लिए हम प्रादेशिक सरकार का स्वास्थ्य विभाग लें। इस विभाग के द्वारा सभी जिला केंद्रों पर सरकारी अस्पताल चलते हैं। संपूर्ण जिले से उनमें रोगी पहुंचते हैं। हम इस कार्य के लिए दो टोलियां बना लें। पुरुषों की तथा महिलाओं की।

अस्पतालों में महिला और पुरुष वाडर्स रहते हैं। अस्पताल में रोगियों से मिलने का समय निश्चित रहता है। उस समय हमारी दो टोलियां रोगियों से मिलने जाएं। उनकी देखभाल और आवश्यक सहायता का सेवा भाव मन में रखकर ही अपनी टोलियां कार्य करें। इससे हमें तीन लाभ स्पष्ट रूप में होंगे—

- स्वास्थ्य विभाग की गतिविधि का इससे आकलन होगा। इससे हम इन अस्पतालों को संचालित करनेवाली प्रशासनिक इकाई के द्वारा अपने प्रतिनिधि के माध्यम से सुधार का प्रयास कर सकेंगे। स्वास्थ्य विभाग को अच्छा बनाने की कल्पनाएं हमारे लोगों के मन में उठेंगी। उस पर चर्चा कर हम अपने प्रतिनिधि की क्षमता बढ़ा सकेंगे।
- अपने संगठन में जनसेवा वृत्ति के महिला पुरुषों का हम उपयोग कर सकेंगे। इस कार्य में पेंशनर लोगों का भी उपयोग हो सकता है। इसमें रोगियों की सेवा के लिए जनता से सहायता मिलेगी।
- हमारी टोलियों के कार्य से इन रोगियों की सीमित समय में देखभाल करने से रोगियों के और उनके परिवार के सदस्यों के मन में जनसंघ के लिए अपनत्व जाग्रत होगा। जनरल वार्ड में साधारणतः गरीब और उपेक्षित वर्ग ही रहता है। उनमें हमारा प्रवेश होगा और मोहल्लों एवं ग्रामों में उनके सहारे हमारे केंद्र खड़े हो सकेंगे। हमारा जिला कार्यालय उनसे संबंध बनाए रख सकता है। सेवा कार्य में संलग्न टोलियां साधारणतः संघर्ष और आंदोलन को अपना साधन न बनाएं। डॉक्टर, नर्स और अन्य कर्मचारियों में सहानुभूति और विनय से करुणाभाव जगाते हुए रोगियों की आवश्यकता पूर्ति की जाए।

इसी प्रकार हरिजन कल्याण, समाज कल्याण, सहकारिता, कृषि आदि विभागों के लिए भी जनसेवा कार्य की व्यवस्था करनी चाहिए। इस जनसेवी नेतृत्व के माध्यम से हम संपूर्ण प्रशासन का अंदर से अध्ययन कर सकते हैं। यथासंभव उन्हें समाजोपयोगी बना सकते हैं तथा उनमें

विराट् पुरुष

आवश्यक सुधारों की योजना बनाकर उसे लागू करने की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं। इसका उपयोग हमारे निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के लिए बहुत होगा।

व्यावसायिक नेतृत्व

पुरानी जाति व्यवस्था व्यवसाय के आधार पर खड़ी थी, परंतु परंपरागत व्यवसाय का युग समाप्त हो गया है। इसी कारण आज की स्थिति में जातियां निरर्थक और निरुपयोगी सिद्ध हो रही हैं। विवाह के अतिरिक्त जाति का अन्य उपयोग नहीं रहा। अब तो विवाह भी अंतर्जातीय होने लगे हैं। समाज में हो रहे इस परिवर्तन के अनुसार समाज धारणा की कल्पना को हमें नया मोड़ देना चाहिए।

अब व्यवसाय के आधार पर समाज में नई इकाइयां खड़ी हो रही हैं। किसी व्यवसाय को हम लें। उसमें परंपरागत विभिन्न जातियों के और अलग-अलग मजहब को माननेवाले लोग मिलेंगे। एक व्यवसाय में संलग्न होने के कारण उन सबकी समस्याएं और आवश्यकताएं एक ही हैं। उन समस्याओं के निराकरण और आवश्यकता पूर्ति के लिए उन्हें अपने संगठन खड़े करने पड़ रहे हैं। वह नए युग की नवीन व्यवस्था है।

हमें चाहिए कि अपनी स्थानीय समितियां जब सदस्यता अभियान चलाएं, तब वे अपने क्षेत्र में रहनेवाले सभी व्यवसायों से चुने हुए उत्साही लोगों को सदस्य बनाने का ध्यान रखें।

हम व्यवसायशः सदस्यों को प्रेरित और प्रोत्साहित कर उनके व्यवसाय की आवश्यकताएं और समस्याओं का अध्ययन करवाएं। उन समस्याओं को लेकर उनके द्वारा निराकरण के प्रयास प्रारंभ करें। वे उस व्यवसाय का संगठन बना हो तो उसमें कार्यकर्ता के नाते कार्य प्रारंभ करें, अन्यथा संगठन खड़ा करें। नेता बनने की उतावली न करें। अपितु निस्स्वार्थ और सेवाभाव से लोगों को प्रभावित कर लोकप्रिय बनें। इससे जनसंघ के कार्यकर्ताओं का विभिन्न व्यवसायों में स्वाभाविक प्रभावी और लोकप्रिय नेतृत्व खड़ा होगा।

इस प्रकार क्षेत्रीय, जनसेवी और व्यावसायिक नेतृत्व का त्रिवेणी संगम हमें समाज में युगानुकूल नई मान्यताएं खड़ी करने में सफल बना सकेगा। संपूर्ण समाज में आवश्यक और समयानुकूल परिवर्तन लाया जा सकेगा। शासन सत्र हाथ में आने की कठिनाई नहीं रहेगी, इतना ही नहीं तो शासन सूत्र हाथ में आने पर उसका उपयोग भारत का वांछित भविष्य खड़ा करने में होगा।

कार्यालय और निधि व्यवस्था

कार्यालय राजनीतिक दल का मर्मस्थान है। सक्षम कार्यालय के बिना राजनैतिक दल की स्थिति बिना डोरे की पतंग जैसी बनती है। दल की सभी गतिविधियों का संचालन कार्यालय के माध्यम से ही होना आवश्यक है।

राजनैतिक दल की आकांक्षा शासनसूत्र संभालकर देश को सुयोग्य शासन प्रदान करने की रहती है। अतः अपना संगठन, उसके कार्यकर्ता, जनप्रतिनिधि एवं सभी इकाइयां आवश्यक रूप में सक्षम सिद्ध हों, इसके लिए सक्षम कार्यालय आवश्यक है। साथ ही आम जनता से संपर्क और

सहयोग की व्यवस्था के लिए भी अपनी गतिविधियों का ठीक संचालन होता रहे, इसका माध्यम भी कार्यालय ही होता है। इस दृष्टि से कार्यालय की समुचित व्यवस्था केंद्र, प्रांत और जिले के स्तर पर तो अनिवार्य है, किंतु इतने वर्षों में अभी तक अनेक प्रदेश भी ऐसे हैं, जहां के कार्यालय की व्यवस्था लगभग नहीं के बराबर है।

कार्यालय के लिए रुचि रखनेवाले और सब दृष्टि से योग्य व्यक्ति की प्रथम आवश्यकता है। अतः हमें कार्यालयों की व्यवस्था खड़ी करने की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

अपने देश में ऐसी स्थिति बन रही है कि राजनीति के वाहन के रूप में धन कार्य कर रहा है। दलों के लिए अपार धन एक प्राथमिक आवश्यकता सी बनती जा रही है। चुनाव के लिए बेहिसाब धन चाहिए। इसके तीन स्रोत प्रचलित हैं—

- कुछ दलों की निष्ठा विदेशों में है। वे वहां से केवल प्रेरणा ही नहीं पाते, उन्हें वहां से पर्याप्त आर्थिक सहायता भी मिलती है।
- शासनारूढ़ दल इस मामले में सबसे आगे है। वह शासन तंत्र का पूरा लाभ उठाकर विधि निषेध की चिंता किए बिना अनेक प्रकार से असीम धनराशि जुटाता है। देश के उद्योगपति और धनपतियों से सौदा कर वह सतत धन बटोरता रहता है। वह चुनावों को निरंतर अधिकाधिक खर्चीला बनाता जा रहा है। उसका उद्देश्य दिखाई पड़ता है कि अन्य दल इसमें टिक ही न पाएं। अब चुनाव तो इतने व्ययसाध्य हुए हैं कि समाज का साधारण व्यक्ति चुनाव में खड़ा होने की कल्पना भी नहीं कर सकता।
- उद्योगपति और धनपति वर्ग देश की राजनीति को प्रभावित और शासन को अपने अनुकूल बनाने में लगा रहता है, इसलिए उसने एक स्वतंत्र राजनैतिक दल चलने का प्रयास भी किया था। प्रारंभ में तो उसे कुछ सफलता भी मिली, किंतु आगे चलकर वह मृतप्राय होने लगा। ये लोग अन्य दलों को (विशेषकर शासनारूढ़ दल को) धन के द्वारा प्रभावित करने में लगे रहते हैं। राजनीति में इन वर्गों के माध्यम से धन आता है।

उपरोक्त तीनों मार्ग प्रचलित हैं। अपने सम्मुख प्रश्न है कि हम अपने लिए आर्थिक व्यवस्था का कौन सा मार्ग अपनाएं? यह धन दोधारी तलवार है। यह लाभ भी पहुंचा सकती है और प्राण लेवा भी बन सकती है। उपरोक्त धनार्जन के तीनों मार्ग राजनैतिक संगठन को न केवल आदर्शवाद से ही डिगा सकेंगे अपितु भ्रष्ट और विघटित भी कर डालेंगे। हमें तो ऐसा मार्ग अपनाना पड़ेगा, जो दल की शक्ति, प्रभाव और जन-समर्थन बढ़ा सके।

अतः हमें धन के स्रोत के लिए भी आम जनता का ही सहारा लेना होगा। हमें वर्ष में एक बार जिस प्रकार अपने सभी सदस्यों से धन प्राप्त करने की व्यवस्था करनी चाहिए, उसी प्रकार वर्ष में एक बार आम जनता से भी निधि संग्रह की व्यापक योजना बनाकर इस संग्रह कार्य में एक निश्चित काल के लिए सब समितियों के कार्यकर्ता एवं सदस्यों को जुटाना चाहिए। इससे आवश्यक धन प्राप्त होने में कठिनाई नहीं होगी। इस योजना की सफलता निर्भर है कि हम अपने कार्यकर्ताओं को कितनी संख्या में और पूर्ण रूप से जुटा सकेंगे।



विराट् पुरुष

इससे जनता अनुभव कर सकेगी कि जनसंघ सब दृष्टि से उन्हीं पर निर्भर एवं उन्हीं का है। जन-समर्थन भी बढ़ेगा। कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ेगी और धन के कारण किसी विशिष्ट वर्ग के दबाव का भी प्रश्न उपस्थित नहीं होगा।

यह कार्य बहुत कष्टसाध्य अवश्य है किंतु इसके बिना अन्य उपाय हमें बल पहुंचानेवाले सिद्ध नहीं हो सकते।



सांप्रदायिक सद्भाव रचनात्मक कार्यों से संभव

अलीगढ़ दंगे को लेकर इस सदन में विचार विनिमय हो रहा है। अलीगढ़ का दंगा हो, बनारस का हो, संभल का हो या लखनऊ में शिया-सुन्नियों का हो—ये सभी दंगे हमारे लिए लज्जा का कारण हैं। ये दंगे हमारी जिंदगी पर एक किस्म से कलंक हैं। हमें सोचना होगा इन दंगों के सिलसिले में। यद्यपि ये बहुत पुराने हैं, अंग्रेजों के काल से चल पड़े हैं, कांग्रेस के जमाने में भी चलते रहे और अभी जनता पार्टी के जमाने में भी रुके नहीं हैं। हमें देखना होगा कि हिंदुस्तान में कभी दंगा होने ही न पाए। इनसान इनसान पर हमला करे—यह इनसानियत पर कलंक है, यह असभ्यता का लक्षण है और इनको मिटाए बिना संतोष कर लेना मूर्खता है।

इसीलिए मैं कुछ बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ। जो दंगे होते आ रहे हैं, उन दंगों को रोकने का काम सरकार का माना जाता रहा है और सरकार पुलिस के द्वारा दंगों को रोकती आई है—फिर चाहे वह पी.ए.सी. हो, सी.आर.पी.एफ. हो या प्रोविशियल पुलिस हो। हो सकता है कि दंगों को तात्कालिक रोकने का काम पुलिस के द्वारा कर लें, लेकिन दंगे कभी न होने पाएं, इसका इंतजाम पुलिस नहीं कर सकती है। इसका इंतजाम हम लोगों को करना होगा, जो कि इस सदन में बैठे हुए हैं। हम यहां पर एक-एक मिनट जो बोलते हैं, उस पर कितना खर्च होता है और वह खर्चा गरीब लोगों से टैक्स के रूप में आता है।

हम 65 करोड़ लोगों के प्रतिनिधि यहां पर हैं, हम किसी मजहब के हों, किसी पार्टी के हों—इस नाते इस दंगे के मसले को मत देखें। इस नाते हम इस मसले को देखें कि हम हिंदुस्तान के बाशिंदे हैं, इस देश के नागरिक हैं और हम सभी मिलकर देश के इस कलंक को मिटाकर छोड़ेंगे। यह कैसे होगा? यह मिट सकता है लेकिन पुलिस के द्वारा नहीं और प्युनिटिव टैक्स के द्वारा भी नहीं। एक अफसर को गलत कहा, दूसरे अफसर को ठीक कहा—इससे भी यह कलंक नहीं मिटेगा। यह कलंक मिट सकता है, अगर आप और हम सभी मिलकर काम करें तो, लेकिन अभी तक वह हुआ नहीं। एक-दूसरे को दोष दिया जाता है। लेकिन एक-दूसरे को गाली देने से ये दंगे मिटेंगे नहीं।

बलरामपुर से सांसद के तौर पर लोकसभा में नानाजी का भाषण। 05 दिसंबर, 1978

विराट् पुरुष

इन दंगों के शिकार होते हैं गरीब लोग, जिनके पास कुछ नहीं होता है। मैं आप सभी से प्रार्थना करता हूँ। मैंने अपना तरीका रचनात्मक ढंग से काम करने का अपनाया हुआ है। इस वक्त मोहरम का सिलसिला चल रहा है। जैसे ही यह खत्म होगा, मैं खुद अलीगढ़ जाकर जिन गरीबों के घर बरबाद हुए हैं, जिन गरीबों की दुकानें बरबाद हो गई हैं, वहां के ही लोगों से पैसा और चंदा इकट्ठा करके उनके घर बनवाऊंगा। उनकी दुकानें ठीक कराने का काम करूंगा। जो भी भाई आना चाहते हैं, वे मेरे साथ आएँ। चाहे कांग्रेस के हों, कम्युनिस्ट हों, हिंदू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, हम में कोई फर्क नहीं है, हम सब एक हैं। हम कोई भी हों, असल में हम सब एक हैं। एक खानदान के हैं। इस हिंदुस्तान के हैं। इसके लिए ही जीना है, इसके लिए ही मरना है। अगर हिंदुस्तान में इनसानियत की कोई मुखालफत करता है तो हम उसको कलंक मानकर उसे समझा-बुझाकर ठीक करेंगे।

वोट-बैंक की राजनीति

आज बहुत सी बातों को दोष दिया जा रहा है—आर.एस.एस. का नाम लिया जा रहा है। लेकिन मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि ये दंगे होते क्यों हैं। हमको पता है कि संविधान निर्माताओं ने हमको ऐसा संविधान दिया, जिसमें बालिग मताधिकार मिला है, हर एक पढ़ा हो या बे-पढ़ा हो, लेकिन 21 साल या उससे ज्यादा उम्र का हर एक मर्द और औरत मतदाता है। अब तो उम्र शायद 18 वर्ष होनेवाली है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि हम जो चुनकर आए हैं—यह कोई नहीं कह सकता है कि मैं मुसलमानों की बदौलत चुनकर आया हूँ या हिंदुओं की बदौलत चुनकर आया हूँ या ब्राह्मण के वोट से चुनकर आया हूँ या चमार के वोट से चुनकर आया हूँ। जो भी चुनकर यहां आया है, सब के वोटों से चुनकर आया है। यह हो सकता है कि किसी को कम मिले हों या किसी को ज्यादा मिले हों, लेकिन हम यहां पर सभी नुमाइंदगी कर रहे हैं। इसलिए हमको ध्यान रखना होगा—इस लोकसभा में बहस करते समय कि हम ऐसा निष्कर्ष निकालें, हम मिलकर ऐसा रास्ता अपनाएं, जिससे अब आगे दंगे न हों। जहां कहीं भी दंगे होंगे—हम लोगों को वहां जाकर जो उसके शिकार होंगे, सबसे पहले उनको बसाने का काम करना होगा और वहां के लोगों का सहयोग लेकर, हिंदू-मुसलमान सबका सहयोग लेकर इस काम को करना होगा, ऐसा किए बिना ये दंगे नहीं रुक सकेंगे।

हमारे राजनीतिक लोगों को भी थोड़ा ध्यान रखना होगा। आप देखिए—जब एडल्ट फ्रैंचाइज शुरू हुआ, उसके आधार पर सबसे पहले 1952 के चुनाव हुए। उस समय आपने क्या देखा, उस समय मुसलमानों के गिरोह ने आतंक पैदा करने का काम शुरू किया गया। आप उस समय के सारे अखबार निकालकर देखिए। पं. नेहरू से लेकर मामूली से मामूली कांग्रेसी नेताओं के बयान देखिए—“देखो, मुसलमानो, यह जनसंघ तुम्हें खा जाएगा। तुम्हें हिंदुस्तान से निकालकर बाहर कर देगा, इनसे बचो।” क्यों मुसलमानों से ऐसा कहा गया? ईसाइयों से क्यों नहीं कहा गया? पारसियों से क्यों नहीं कहा गया? क्योंकि मुसलमानों का ब्लॉक-वोट दिखलाई देता था।

ये लोग नहीं चाहते थे कि हिंदू और मुसलमान एक हो जाएं। यदि ये एक हो गए तो फिर कांग्रेस की हुकूमत नहीं रहेगी। इसीलिए ऐसी फिजा पैदा करने की कोशिश की गई।

दूसरे को कम्युनल कहना और अपने को सेक्युलर कहना, यह सबसे गलत काम कांग्रेस ने 30 साल तक किया। मैं पूछना चाहता हूँ—जनसंघ के प्रति मुसलमानों के दिलों में डर पैदा करना, हिंदुस्तान के नागरिकों के दिलों में डर पैदा करना—क्या यह ठीक काम है?

कांग्रेस ने विष बोया

मैं फिर पूछना चाहता हूँ—हिंदुस्तान की चीन के साथ लड़ाई हुई—उस समय क्या हुआ? चीन ने हमला किया, उस समय आर.एस.एस. के लोगों को काम में लगाया गया। 1962 के बाद 26 जनवरी को खुद पंडितजी ने आर.एस.एस. के लोगों से कहा कि आप भी परेड में आइए—क्या उस समय आर.एस.एस. कम्युनल नहीं था?

1965 में पाकिस्तान के साथ लड़ाई हुई। यदि सचमुच आर.एस.एस. के लोग मुसलमानों के खिलाफ होते, तो क्या देश में शांति रह सकती थी? उस समय श्री लाल बहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री थे। उस समय उन्होंने, कांग्रेस के मंत्रिमंडल ने आर.एस.एस. के लोगों से कहकर दिल्ली में ट्रैफिक पुलिस का काम 12 दिनों तक कराया और कहीं कोई गड़बड़ नहीं हुई। उसी प्रकार जब इंदिराजी प्रधानमंत्री थीं, उस समय के युद्ध के समय आर.एस.एस. के स्वयंसेवक अटल बिहारी वाजपेयी को कहकर सेना के सामने और दूसरी जगहों पर उनके भाषण कराए, क्या उस समय वह कम्युनल नहीं था?

यदि आर.एस.एस. कम्युनल होता तो जिस समय दिल्ली में मेट्रोपोलिटन काउंसल और कारपोरेशन में जनसंघ का बहुमत था, तो मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या अपनी सरकार का पक्षपात वहां हुआ? आज मध्य प्रदेश में, राजस्थान में, हिमाचल प्रदेश में आर.एस.एस. के आदमी चीफ मिनिस्टर हैं, वहां क्या किसी प्रकार के दंगे हो रहे हैं? किसी प्रकार मुसलमानों की खिलाफत हो रही है? यह कह देना कि मुसलमानों की खिलाफत होती है, सरासर गलत है। अगर कहीं दंगा होता है और उसमें आर.एस.एस. का कोई आदमी शामिल होता है तो उस को फांसी लगाओ, कोई भी विचार न करो। जो भी दंगों के लिए जिम्मेदार हो, उसको फांसी पर लटकाओ। हर दंगा फसाद करनेवाला इनसानियत पर कुठाराघात करता है, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो।

मैं पूछना चाहता हूँ कि एक-दूसरे को गाली देकर क्या इन दंगों को समाप्त किया जा सकता है? सांप्रदायिकता का विष बोया है कांग्रेस ने, पिछले तीस बरस में। मैं पूछना चाहता हूँ कि तीस बरस में जब कांग्रेस की हुकूमत केंद्र और ज्यादातर राज्यों में थी, तब जो दंगे हुए तो उनमें कितने आर.एस.एस. के लोग थे, जिनको पकड़कर सजा दी गई? कौन से न्यायालयों में कौन से फैसले हुए, जिन में आर.एस.एस. के लोगों को सजा हुई? कौन से आर.एस.एस. के आदमियों ने छुरे मारे? यह सारा रिकॉर्ड मौजूद होगा। निकालकर देखिए, तब ऐसे आरोप आप लगाएं। ये आरोप केवल इसलिए लगाए जाते हैं कि हिंदू-मुसलमान एक न हों। जब हम लोग जेल में रहे

विराट् पुरुष

तो आर.एस.एस. के लोग भी वहां रहे, मुसलिम मजलिस के लोग भी वहां रहे। साथ-साथ रहते थे, साथ-साथ खाते थे, साथ-साथ सोते थे, तकलीफ में, बीमारी में एक-दूसरे की सेवा करते थे। समझने लग गए थे कि सचमुच में हममें कोई फर्क नहीं है और हम एक हो रहे थे। इस वास्ते आर.एस.एस. का भूत खड़ा करके हमको अलग-अलग कराने की कोशिश की जा रही है। यह एक प्रकार की साजिश है। यह साजिश हिंदुस्तान में विघटन पैदा करवाने की प्रतीक है। इस तरह की साजिश का हरगिज किसी भी तरह से समर्थन नहीं दिया जाना चाहिए। किसी भी प्रकार से कम्युनल फीलिंग को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए। हर जाति का संगठन हो सकता है। हर मजहब का संगठन हो सकता है। लेकिन वह ऐसा नहीं होना चाहिए कि दूसरी जाति के लिए खतरा बने। अपनी जाति को अच्छा बनाओ, अपने समुदाय को अच्छा बनाओ। लेकिन अच्छा बनाते समय बाकी सभी समुदाय, बाकी सभी मजहबों के लोग भी खुशहाली से रहें, तरक्की करते रहें और उस तरक्की में हम कैसे इमदाद दें सकते हैं, यह बराबर सोचते रहें।

इस प्रकार का वातावरण देश में पैदा करने की जरूरत है। एक-दूसरे के बारे में अविश्वास, विद्वेष, नफरत फैलाने का काम राष्ट्रद्रोह का काम है। और मैं प्रार्थना करता हूं कि इस प्रकार से एक-दूसरे के खिलाफ नफरत फैलाने के काम को छोड़ देना चाहिए। इससे भारत का भला नहीं होगा। इससे दंगे नहीं रुकेंगे। हिंदुस्तान में दंगे न हों, इनके लिए हम सब मिलकर काम करें। बिना सोचे कि मैं हिंदू हूं या मुसलमान, कांग्रेसी हूं या जनता पार्टी का हूं, काम करें। हम सब एक हैं। जो मुसीबत में हैं, उनकी मुसीबत को खत्म करने की जरूरत है। इसके लिए मैं कहता हूं कि मैं अलीगढ़ जा रहा हूं। मेरे साथ चलें। हम साथ-साथ एक-एक मकान जो वहां जला है या एक-एक पर जो मुसीबत आई है, उसको दूर करने के लिए जुट जाएं। उसको फिर से उसी प्रकार का मकान बनाकर दें। फिर से उसी प्रकार की दुकान बनाकर दें। जो कुछ भी बरबादी उसकी हुई है, उसको ठीक करने का काम हम मिलकर करें। इस तरह की चीज की आज देश को जरूरत है। यह हवा देश में बहनी चाहिए। सरकार चाहे किसी की हो, देश में दंगा होने का कोई कारण तब नहीं रहेगा। इस प्रकार का निष्कर्ष इस लोकसभा को निकालना चाहिए। यह मेरा आप सब लोगों से विनम्र निवेदन है और अनुरोध है।



धर्मनिरपेक्षता भारतीय संदर्भ में हो बहस

वोट और सत्ता की वर्तमान राजनीति में लगभग 25 साल तक सक्रिय भाग लेने के दौरान मैंने इस राजनीतिक प्रणाली में विद्यमान विघटनकारी व भ्रष्टकारी प्रवृत्तियों को निकट से देखा और अनुभव किया। इस विघटनात्मक राजनीति का विकल्प खोजने की इच्छा ही मुझे लोकनायक जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रांति आंदोलन में खींच ले गई। उस आंदोलन ने केंद्र में सत्ता परिवर्तन का चमत्कार तो घटित किया, पर वह अपने मूल उद्देश्य की प्राप्ति में विफल रहा। अतः मैंने सत्ता राजनीति से संन्यास लेकर स्वयं को सामाजिक-आर्थिक पुनर्रचना की मौन कर्म-साधना में जुटाने का निश्चय किया और 8 अक्टूबर, 1978 को पटना में जयप्रकाशजी की उपस्थिति में अपने निर्णय की सार्वजनिक घोषणा कर दी। तभी से मैं अपने देश के कुछ सर्वाधिक पिछड़े जिलों में सामाजिक-आर्थिक पुनर्रचना के प्रयोगों में पूरी तरह लगा हुआ हूँ।

किंतु पिछले कुछ महीनों की घटनाओं ने मेरी एकाग्रता को भंग कर दिया है। एक ओर जल्दबाजी में घोषित नई आरक्षण-नीति ने समाज को जाति-विभाजन के कगार पर धकेल दिया है व आए दिन इस नीति के विरोध में होनहार युवक-युवतियों द्वारा आत्मदाह के हृदय-विदारक समाचार कानों पर पड़ रहे हैं। दूसरी ओर कृत्रिम रूप से उत्पन्न सांप्रदायिक तनाव का वातावरण सब तरफ फैल रहा है। विशेषकर गोंडा जिले में जो भयानक सांप्रदायिक नरमेध हुआ, उसने मुझे पूरी तरह हिला दिया।

गोंडा जिला पिछले बारह साल से मेरा कार्य-क्षेत्र रहा है। मुझे प्राप्त सूचनाओं के अनुसार इस नरमेध को कुछ उच्च पदस्थ स्थानीय व राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों ने अपनी वोट-गणित के हिसाब से योजनापूर्वक रचा। सबसे अधिक धक्का मुझे तब लगा जब मैंने अहसास किया कि सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञ तो अपनी घृणित कूर योजना में सफल हो गए, पर मैं एक रचनात्मक कार्यकर्ता निर्दोष नागरिकों की लाशों पर उनके पाशविक नृत्य का असहाय मूकदर्शक ही बना रह गया। इस पीड़ादायक

विराट् पुरुष

अनुभूति ने मुझे विवश कर दिया है कि मैं आपको अपने कुछ विचारों से अवगत कराऊँ ।

वोट-बैंक की राजनीति

काफी समय से मेरे मन में यह प्रश्न उठता रहा है कि जब हम स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से लगातार राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिक-सद्भाव, जाति-विहीन समाज, सामाजिक न्याय आदि की लंबी-चौड़ी बातें करते आ रहे हैं तो फिर हम उससे बिलकुल उलटी दिशा में बढ़ते हुए क्यों दीख रहे हैं? निश्चय ही, कहीं-न-कहीं कुछ भूल हो रही है। या तो हम इन आदर्शों के प्रति पूरी तरह से ईमानदार नहीं हैं अथवा हम इन ऊँचे-ऊँचे शब्दों के सार तत्त्व के बारे में किन्हीं गलत व विकृत अवधारणाओं के बंदी बने हुए हैं। जहां तक आदर्शों के प्रति ईमानदारी का प्रश्न है, लंबे समय तक इस राजनीतिक प्रणाली का सक्रिय अंग रहने के कारण मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ, हमारा राजनीतिक नेतृत्व अपनी चुनाव-राजनीति और वोट-गणित का पूरी तरह गुलाम बन चुका है।

इस भारी-भरकम शब्द-जाल की आड़ में उसके प्रत्येक राजनैतिक व शासकीय निर्णय का एकमात्र लक्ष्य अपने तुच्छ राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति करना मात्र रहता है। उन्हें हर समय एक ही चिंता रहती है कि अपने अनुकूल वोट-बैंक और वोट-बैंकों का गठबंधन कैसे तैयार किया जाए। उनकी यह धारणा बन गई है कि मुसलिम समुदाय ही तो वोटों का सबसे बड़ा और पुख्ता आधार बन सकता है। क्योंकि मुसलिम मतदाता आमतौर पर मजहबी आधार पर अपने वोट का इस्तेमाल करते हैं, जबकि राजनैतिक स्तर पर हिंदू चेतना जाति, भाषा व क्षेत्र के आधार पर बिखर जाती है। इसलिए ये राजनैतिक नेता एक ओर तो धर्मनिरपेक्षता के नारे की आड़ में 'बहुसंख्यक सांप्रदायिकता' व 'हिंदू-आक्रामकता' का हौआ खड़ा करके मुसलमानों की सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काने का प्रयास करते हैं, दूसरी तरफ हिंदू वोटों को बटोरने के लोभ में वे जातिवाद, भाषावाद व क्षेत्रवाद को उभारने की पूरी कोशिश करते हैं।

वस्तुतः उनकी धर्मनिरपेक्षता का अर्थ 'हिंदू-निंदा' से अधिक कुछ नहीं है और उसका स्वरूप हमेशा नकारात्मक रहा है, जबकि जातिवादी, भाषाई, मजहबी व क्षेत्रवादी दलों से गठबंधन करने में उन्हें तनिक लज्जा नहीं आती। संक्षेप में कहना हो तो, सांप्रदायिक फूट व समाज के जातीय विघटन में इन राजनीतिज्ञों का निहित स्वार्थ पैदा हो गया है और सत्ता राजनीति के अपने धिनौने खेल पर परदा डालने के लिए केवल इन ऊँचे-ऊँचे शब्दों का दुरुपयोग करते रहते हैं।

नकली धर्मनिरपेक्षतावाद

'बहुसंख्यक सांप्रदायिकता' व 'हिंदू आक्रामकता' को कोसते समय 'नकली धर्मनिरपेक्षतावाद' के ये अति उत्साही ठेकेदार भूल जाते हैं कि इसी 'बहुसंख्यक समुदाय' ने अपनी मातृभूमि के विभाजन से उत्पन्न अत्यंत हृदय विदारक व उत्तेजनापूर्ण वातावरण के काल में भी विभाजन के

लिए उत्तरदायी मुसलिम अल्पसंख्यकों को अपने खंडित घर में न केवल बसे रहने दिया था, अपितु स्वाधीन भारत के संविधान में 'धर्मनिरपेक्षता' के आदर्श को प्रतिष्ठित किया था। इतिहास का यह एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि विभाजन के बाद 'इंडिया दैट इज भारत' नाम धारण करनेवाले भूखंड में रहनेवाले ये मुसलमान ही 'पाकिस्तान आंदोलन' में सबसे आगे थे और इन्होंने ही अपने हिंदू भाइयों की दृढ़ इच्छा व लगातार कोशिशों के विरुद्ध ब्रिटिश-साम्राज्यवादियों के साथ सांठगांठ करके मजहब के आधार पर मातृभूमि के विभाजन का गहरा घाव दिया था।

यही 'हिंदू-आक्रामकता' है, जिसने अपनी छाती में लगे इस ताजे घाव को झेलकर भी अपने मुसलिम बंधुओं को स्वाधीन भारत के संविधान में अपने से भी अधिक अधिकार प्रदान किया। बहुसंख्यक हिंदू समाज के इस आचरण के पीछे न तो कोई मजबूरी थी और न ही इसका कोई कारण अंग्रेजी पढ़े-लिखे पश्चिम भक्तों के छोटे से वर्ग को माना जा सकता है। यह असामान्य निर्णय हिंदू समाज की युग-युगों से चली आ रही उस दार्शनिक अवस्था की सहज अभिव्यक्ति मात्र थी, जिसे वैदिक ऋषियों ने 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' में व्यक्त किया था और जिसके कारण हिंदू-मानस उपासना-स्वातंत्र्य के आदर्श के प्रति अर्थात् सब उपासना पद्धतियों के प्रति समान आदर भाव के प्रति सदैव समर्पित रहा है।

ये नकली धर्मनिरपेक्षतावादी यह भी भूल जाते हैं कि देश के भीतर एवं बाहर सब प्रकार की उत्तेजनाओं के बावजूद भारत यदि आज तक धर्मनिरपेक्षता के आदर्श पर दृढ़ है तो उसका कारण यह 'हिंदू परंपरा' व 'हिंदू मानस' ही है, जिसे वे दिन-रात कोसते रहते हैं। क्या उन्होंने कभी यह सोचा है कि क्या कारण है कि पाकिस्तान अपने जन्मदाता मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा पाकिस्तान संविधान सभा में की गई घोषणा की उपेक्षा करके और बंगलादेश अपने मुक्तिदाता शेख मुजीबुर्रहमान द्वारा निर्मित संविधान को रद्दी की टोकरी में फेंककर इसलामी राज्य क्यों बन गए?

हिंदू समाज धर्मनिरपेक्ष

एक ही ऐतिहासिक भूखंड के इन तीन भागों के आचरण में इस भारी अंतर पर ध्यान दें तो इस प्रश्न का उत्तर भी मिल सकता है कि पिछले 43 वर्षों से 'सेक्युलरवाद' के राग का दिन-रात आलाप होने के बाद धर्मनिरपेक्षता की अधिकांश आवाजें आज भी हिंदू समाज के भीतर से ही क्यों उठती हैं, जबकि मुसलिम समाज के भीतर धर्मनिरपेक्षवादियों की संख्या को उंगलियों पर ही गिना जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ सदाशय मुसलिम बंधु हैं, जिनकी वाणी और व्यवहार में सच्ची धर्मनिरपेक्ष भावना प्रकट होती है, परंतु वे स्वयं को अपने समाज के भीतर सर्वथा प्रभावहीन व अलग-थलग पाते हैं। क्योंकि उनका समाज बहुधा उन कट्टरपंथियों के प्रभाव में बह जाता है, जो उन्हें आत्मालोचन व सुधार के मार्ग पर बढ़ने देना नहीं चाहते। यह बात कुख्यात 'शाहबानो केस' तथा प्रख्यात मुसलिम लेखक सलमान रशदी के लिए ईरान द्वारा प्राण दंड की घोषणा से बिलकुल साफ हो गई है।

विराट् पुरुष

स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्षता की पहल केवल एकतरफा नहीं हो सकती। हमें इस तथ्य को कदापि नहीं भूलना चाहिए कि 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस के ही जन्मकाल से हमारा राष्ट्रीय नेतृत्व हमेशा इस विकट समस्या से जुड़ा रहा है कि मुसलिम जनता को देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अपने हिंदू भाइयों का हाथ बंटाने के लिए कैसे प्रेरित किया जाए? 1913 में लोकमान्य तिलक द्वारा आशीर्वाद प्राप्त लखनऊ समझौता व 1920 में गांधीजी एवं लाला लाजपतराय द्वारा खिलाफत आंदोलन का समर्थन इस दिशा में किए गए लगातार प्रयत्नों का ही हिस्सा थे। किंतु महात्मा गांधी व जवाहरलाल नेहरू जैसे अत्यंत प्रभावशाली एवं सत्यनिष्ठ नेता भी मुसलिम जनता को अपने साथ लाने में विफल रहे, केवल कुछ इने-गिने मुसलमानों ने ही उनका साथ दिया। 1943 का चुनाव इस केंद्रीय प्रश्न पर ही लड़ा गया कि भारत अखंड रहे या उसका विभाजन हो। किंतु इस चुनाव के परिणामों से स्पष्ट है कि 66 प्रतिशत हिंदू मतदाताओं ने कांग्रेस के 'अखंड-भारत' के आह्वान का समर्थन किया तो 65 प्रतिशत से अधिक मुसलिम मतदाताओं ने मौलाना आजाद जैसे राष्ट्रवादी नेता की उपेक्षा करके मिस्टर जिन्ना की 'पाकिस्तान' मांग के पक्ष में अपने मत दिए थे।

फूट डालो, राज करो नीति का परिणाम

हमने अपने मन में यह धारणा बैठा ली थी कि मुसलमानों की यह अलगाववादी प्रवृत्ति अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति का परिणाम है अर्थात् यह अंग्रेजों द्वारा ही पैदा की गई है। अतः हमें आशा थी कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के प्रधान एवं हिंदू-मुसलिम आधार पर देश का विभाजन हो जाने के पश्चात् हम स्वतंत्र भारत में मुसलमानों की इस प्रवृत्ति को बदल सकेंगे और लोकतंत्र व धर्मनिरपेक्षता के आदर्शों के प्रति निष्ठावान एक समरस राष्ट्रीय समाज जीवन खड़ा करने में सफल हो जाएंगे। अपने इस आशावाद से अभिभूत होने के कारण ही हमने उन ऐतिहासिक घटनाक्रम एवं उन विचारधाराओं का कोई गहन अध्ययन एवं वस्तुपरक विश्लेषण करने की चेष्टा नहीं की, जिन्होंने हमारे सब प्रयत्नों के बावजूद हमें देश विभाजन की विनाशकारी विपत्ति में धकेल दिया। उलटे स्वाधीन भारत द्वारा अपनाई गई वोट-राजनीति की मजबूरियों का गुलाम बनकर हमारे राजनैतिक नेतृत्व ने 'सेक्युलरिज्म' और 'अल्पसंख्यकों की पहचान' की रक्षा के नाम पर मुसलिम समाज में कट्टरपंथी व पृथक्तावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण देने का रास्ता पकड़ लिया। सत्ता के इस अवसरवादी खेल को बौद्धिक धरातल पर सेक्युलरिज्म का सैद्धांतिक जामा पहनाने का जिम्मा ले लिया हिंदू बुद्धिजीवियों के उस वर्ग ने, जिसकी सोच ब्रिटिश शिक्षा-पद्धति द्वारा भारतीय मानस में आरोपित विकृत धाराणाओं का बंदी बन चुका है एवं जो अभी भी अधिकांश कम्युनिस्ट देशों द्वारा दुकराए हुए कालबाह्य मार्क्सवादी विचारधारा के मोह जाल में फंसा हुआ है।

हिंदुत्व एक अखंड ऐतिहासिक प्रक्रिया

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह खोज करना आवश्यक था कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपनी

‘फूट डालो और राज करो’ नीति की बौद्धिक आधारशिलाएं निर्माण करने की प्रक्रिया में किस प्रकार ‘हिंदू’ शब्द को उसके मूल भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अर्थ से हटाकर एक ‘मजहब’ का रूप दे दिया और ‘इसलाम’ व ‘ईसाई’ जैसे सुसंगठित विस्तारवादी मजहबों की श्रेणी में ला बिठाया। भारतीय इतिहास के लंबे व गहन अध्ययन से वे यह जान चुके थे कि अब ‘हिंदुत्व’ शब्द उस लंबी व अखंड ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिचायक नाम है, जिसने भारतवर्ष कहलानेवाले विशाल भूखंड पर बसे हुए मानव समूहों को उनकी समस्त विविधताओं के साथ एक केंद्रीय सांस्कृतिक प्रवाह में सम्मिलित करके उन्हें एक समान सांस्कृतिक पहचान प्रदान की थी और इस भारतभूमि के प्रति भाव से बांध दिया था।

‘राष्ट्रियता’ की आधुनिक व्याख्याओं के प्रकाश में अंग्रेजों को स्पष्ट था कि ‘हिंदू या हिंदुत्व’ नाम से परिचित यह ऐतिहासिक प्रक्रिया ही भारत में राष्ट्रियता की आधारभूमि है। उन्हें यह भी भलीभांति ज्ञात था कि ‘हिंदू’ नाम से पहचाने जानेवाले विशाल जन समाज का ऐतिहासिक विकास मजहबी आधार पर न होकर ‘विविधता में एकता’ के सिद्धांत पर हुआ है। किंतु फिर भी उन्होंने जान-बूझकर ‘हिंदू’ या ‘हिंदुइज्म’ को मजहब का रूप देकर इसलाम व ईसाई मजहबों को उसका प्रतिस्पर्धी बनाकर उसके विरुद्ध खड़ा करने की कोशिश की। जनगणना रिपोर्टों, गजेटियरों, सरकारी दस्तावेजों आदि में सब जगह ‘हिंदू’ शब्दों को इसलाम व ईसाई मजहब के समकक्ष रखा गया। मजहबी प्रतिस्पर्धा को पैदा करने के लिए भारत में इसलाम के प्रवेश के पूर्व की संपूर्ण ऐतिहासिक यात्रा को उन्होंने ‘भारतीय इतिहास का हिंदू काल’ कहा। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित सुधार आंदोलन की ओर सम्राट अशोक के झुकाव को उन्होंने ‘हिंदू धर्म’ से बौद्ध धर्म में ‘धर्म परिवर्तन’ का नाम दिया। वास्तव में उन्होंने भारत के सभी प्राचीन सांस्कृतिक महापुरुषों को मजहबी प्रतीकों का रंग दे दिया। भारतीय मुसलमानों को समझाया गया कि मजहब के आधार पर वे हिंदू महापुरुषों से अपना नाता तोड़कर मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, तैमूर एवं बाबर जैसे विदेशी आक्रमणकारियों को अपना मानें।

विराट के प्रति अपनत्व

सब जानते हैं कि राष्ट्रीय एकता की स्थापना तब तक नहीं हो सकती जब तक प्रत्येक देशवासी के मन में अपने पूर्वजों से प्राप्त समान सांस्कृतिक विरासत के प्रति अपनत्व व गौरव का तथा अपनी मातृभूमि के प्रति भक्ति का भाव न हो। तभी हम सब अपनी सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि और मातृभूमि की अखंडता की रक्षा के लिए जीने-मरने के समान संकल्प से अनुप्राणित हो सकते हैं। मुझे दुःख है कि वोटों के भूखे राजनीतिज्ञों एवं धर्मनिरपेक्षवादी बुद्धिवादियों द्वारा इस दिशा में अब तक कोई जागरूक प्रयास नहीं किया गया। यदि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सभी पूजा-पद्धतियों के प्रति समान आदर की भावना अर्थात् ‘सर्व धर्म समभाव’ है, तो यह प्रश्न कभी क्यों नहीं उठाया गया कि क्या विचारधारा के नाते ‘इसलाम’ को माननेवाले इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं? अभी हाल में सलमान रशदी के लिए प्राणदंड की घोषणा का

विराट् पुरुष

विश्व भर के मुसलमानों ने जिस प्रकार हार्दिक स्वागत किया, वह किस बात का परिचायक है? क्या यह सोचने की जरूरत नहीं है कि इक्कीसवीं शताब्दी के प्रवेश द्वार पर पहुंचकर भी सऊदी अरब सहित अनेक मुसलिम देशों में गैर-मुसलिमों के लिए धार्मिक स्वतंत्रता का अभाव व भेदकारी कानून-व्यवस्था कायम क्यों है? रूस, यूगोस्लाविया, बुल्गारिया, चीन आदि कम्युनिस्ट देशों ने अपने-अपने यहां मार्क्सवाद की धर्मनिरपेक्ष आर्थिक विचारधारा के आधार पर मुसलिम समस्या को हल करने के लिए जो लंबे प्रयास किए, वे असफल क्यों हो गए? क्या कारण है कि इंग्लैंड जैसे उदारवादी देश में बसे मुसलमानों की ओर से यह मांग उठने लगी है कि एक धार्मिक संप्रदाय के नाते उनके लिए अलग संसद बनाई जाए?

नई दृष्टि की आवश्यकता

यदि इन सब प्रश्नों पर गहराई से विचार किया जाता तो शायद हमारे बुद्धिजीवियों को भी भारतीय संदर्भ में धर्म निरपेक्षता की समस्या की ओर नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता महसूस होती। तब वे इस भारतीय यक्ष-प्रश्न का उत्तर नए सिरे से खोजने की कोशिश करते कि क्यों मुसलिम समस्या ही हमारे लंबे स्वातंत्र्य संघर्ष के मार्ग में बाधा बनकर खड़ी रही और क्यों देश विभाजन के बाद भी स्वतंत्र भारत की राजनीति भी इस समस्या के चारों ओर घूम रही है? यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि संगठित मुसलिम थोक-वोटों ने समूची भारतीय राजनीति को अपने यहां गिरवी रख लिया है और नकली सेक्युलरिज्म की आड़ में इन थोक-वोटों को लुभाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच अंधी दौड़ लग गई है।

मातृभूमि के प्रति भक्ति भाव से सराबोर होने पर भी हिंदू चेतना जाति, भाषा व क्षेत्र के आधार पर बंटी होने के कारण सत्ता-राजनीति के बाजार में संगठित मुसलिम वोटों के मुकाबले वोट-ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पा रही है। और इसलिए हिंदू समाज के सामने 'मुसलिम पहचान की रक्षा' का पुराना प्रश्न, जिसने स्वतंत्रता के पूर्व द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत का रूप धारण करके देश को विभाजन के गर्त में धकेल दिया था, पुनः विकराल रूप लेकर खड़ा हो गया है। अब इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कश्मीर घाटी में चल रहा पृथकतावादी आंदोलन भारत-विभाजन की कहानी की ही अगली कड़ी है। हमारे अनेक राजनीतिक एवं बुद्धिजीवी इस नग्न सत्य को खुले मन से स्वीकार करने के बजाय कि कश्मीर में उनका 'सेक्युलरवाद' पूर्णतया विफल रहा है, वे अपने बचाव के लिए बौद्धिक वाग्जाल के गलियारे खोज रहे हैं।

पृथकतावाद बनाम राष्ट्रवाद

इस दृष्टि से विभ्रम का ही परिणाम है कि जब कभी इस मजहबी पृथकतावाद के विरुद्ध राष्ट्रवाद खम ठोककर खड़ा होने की कोशिश करता है तो उसे 'बहुसंख्यक संप्रदायवाद' व 'हिंदू आक्रामकता' कहकर लांछित कर दिया जाता है। वस्तुतः अयोध्या में राम जन्म-भूमि मंदिर के निर्माण के लिए आजकल जो आंदोलन चल रहा है एवं विवाद छिड़ा हुआ है, उसे भी इसी पृष्ठभूमि

में देखा जाना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रश्न को 'हिंदू बनाम मुसलिम' या 'मंदिर बनाम मसजिद' समस्या का रूप क्यों दिया जा रहा है?

आकाट्य पुरातात्विक एवं साहित्यिक प्रमाणों के सामने कौन अस्वीकार करेगा कि इस तथाकथित मसजिद का निर्माण विदेशी आक्रमणकारी बाबर के आदेश पर किसी मीरबाकी ने कराया था? इस कृत्य के पीछे विजितों को अपमानित करने के अलावा और क्या उद्देश्य हो सकता है? क्या यह अपमान आज के भारतीय मुसलमानों के अपने पूर्वजों का अपमान नहीं था? तब क्यों ये नकली सेक्युलरवादी मुसलिम भारतीयों की वर्तमान पीढ़ी को उस स्थान पर राम मंदिर के पुनर्निर्माण की राष्ट्रीय मांग का विरोध करने के लिए उकसा रहे हैं? क्यों इन्हें भड़काया जा रहा है कि वे अपनी 'पहचान' को विदेशी आक्रमणकारी बाबर के साथ जोड़ें न कि भारत के राष्ट्रीय महापुरुष राम के साथ। जो राम, समाजवादी नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया के कथनानुसार भारत के राष्ट्रीय मानस के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं, मात्र हिंदुओं के धार्मिक नेता अथवा भगवान नहीं।

क्या धर्मनिरपेक्षतावादी सचमुच यह मानते हैं कि देश भर में बिखरे हुए हजारों स्मारकों का अस्तित्व, जो विदेशी मुसलिम आक्रमणकारियों द्वारा धर्म के नाम पर की गई घोर विनाशालीला की जीवंत साक्षी है, सांप्रदायिक सद्भाव राष्ट्रीयता व धर्मनिरपेक्षता के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर रहा है? सच्ची धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास के लिए क्या यह आवश्यक नहीं है कि आज का भारतीय मुसलमान मध्य युग के विदेशी आक्रमणकारियों के इन कुकृत्यों से खुलेआम अपना संबंध-विच्छेद कर ले और इस संबंध-विच्छेद की प्रतीकात्मक घोषणा के रूप में अपनी ओर से कदम बढ़ाए।

आक्रमणकारियों के प्रतीक

यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वाधीन भारत के पहले मंत्रिमंडल द्वारा सोमनाथ के ध्वस्त मंदिर का पुनर्निर्माण करने के निर्णय में जो संकेत निहित था, उसे मुसलिम नेतृत्व ठीक प्रकार से समझ नहीं पाया, किंतु हमारे नकली धर्म-निरपेक्षतावादियों ने भी तो मुसलमान बंधुओं को इस दिशा में सोचने और मुख्य धारा में सम्मिलित होने की प्रेरणा देने के बजाय अपनी पूरी ताकत इस राष्ट्रीय आकांक्षा को मजहबी रंग देने और मुसलमानों को ऐसी किसी भी मांग का विरोध करने के लिए भड़कने में लगा दी।

वामपंथी बुद्धिजीवियों ने अपनी पूरी बौद्धिक शक्ति यह सिद्ध करने में लगाई कि राम मनुष्य नहीं थे, अयोध्या राम का जन्म-स्थान नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए कोई समकालीन साहित्यिक प्रमाण नहीं है कि वर्तमान ढांचा, जिसे बाबरी मसजिद कहा जाता है, कई शताब्दी पहले से विद्यमान किसी मंदिर को तोड़कर बनाया गया है, यदि इस ढांचे को यहां से हटाया गया तो यह 'मुसलिम पहचान' पर हमला होगा और इसका अर्थ होगा भारत में धर्मनिरपेक्षता की हत्या तथा सदा-सर्वदा के लिए समाप्ति। यदि कुछ देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि 'बाबरी मसजिद' नामक ढांचे को केवल इसलिए नहीं हटाया जाना चाहिए, क्योंकि उनके पक्ष में कोई समकालीन साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, तब उन हजारों स्मारकों के बारे में इनका क्या कहना है, जिनके

विराट् पुरुष

बारे में निर्विवाद साहित्यिक व अभिलेख साक्षी उपलब्ध हैं? क्या इन धर्मनिरपेक्षतावादियों ने ऐसे स्मारकों के बारे में कभी कोई पहल की? उलटे वे भारत के लंबे इतिहास को खोद-खोदकर धर्मस्थानों के विध्वंस के ऐसे इक्के-दुक्के प्रसंगों को ढूंढने में लगे हुए हैं, जिन्हें सामने लाकर वे मध्यकालीन विदेशी आक्रमणकारियों की विध्वंसलीला को उचित ठहरा सकें।

यदि ये नकली सेक्युलरिस्ट समझते हैं कि ऐसे स्मारकों के हटाने से राष्ट्र के स्वाभिमान एवं पहचान का कोई संबंध नहीं है तो उन्हें उत्तर देना होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ब्रिटिश ध्वज, ब्रिटिश शासकों की प्रतिमाओं एवं सड़कों से उनके नामों को हटाने की क्या आवश्यकता थी? क्यों रूस में बोल्शेविक क्रांति के पश्चात् जगह-जगह लेनिन और स्टालिन की विशाल प्रतिमाएं खड़ी की गईं, अनेक शहरों एवं सड़कों को उनका नाम दिया गया, उनके शवों को सुरक्षित रखा गया, उनके मजारों को तीर्थ-स्थान बना दिया गया, क्यों लेनिन के मजार पर श्रद्धा-सुमन चढ़ाना जरूरी सा हो गया? और क्यों अब विभिन्न कम्युनिस्ट देश अपने यहां मार्क्सवाद की विफलता एवं उससे अपने संबंध-विच्छेद की घोषणा करने के लिए प्रतिमाओं को हटा रहे हैं? स्पष्ट है कि प्रत्येक राष्ट्र किसी बड़े राजनैतिक या वैचारिक परिवर्तन की घोषणा स्वरूप ऐसे स्थूल प्रतीकों की स्थापना को आवश्यक मानता है। यह देखकर मुझे सचमुच दुःख होता है कि हमारे भारतीय मार्क्सवादी मित्र न तो अन्य कम्युनिस्ट देशों के अनुभव से कुछ सीखने को तैयार हैं और न ही युवावस्था में रटे हुए मार्क्सवादी शब्दजाल से बाहर निकलने की कोशिश कर रहे हैं।

भारतीय संदर्भों को तलाशें

मैं हृदय से अनुभव करता हूँ कि अब यह समय आ गया है कि भारतीय संदर्भ मैं 'राष्ट्रीयता', 'सांप्रदायिकता' एवं 'धर्मनिरपेक्षता' जैसे शब्दों की परिभाषा एवं भावार्थ पर खुले दिल से निष्पक्ष चर्चा प्रारंभ होनी चाहिए। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि कुछ भारतीय मुसलमान पक्के देशभक्त और कट्टर उदारवादी हैं और कुछ को तो मैं व्यक्तिगत रूप से जानता भी हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि वे इस समय कितने बेचैन हैं कि एक ओर तो वे अपने संप्रदाय में ही पूर्णतया अकेले पड़ गए हैं और दूसरी ओर बनावटी धर्मनिरपेक्षतावादी भी उनकी उपेक्षा करके उनके संप्रदाय में कट्टरपंथी नेतृत्व की चापलूसी करने एवं महत्व देने में लगे हुए हैं। विवेकशील बंधुओं से मेरा निवेदन है कि वे आगे आएँ और अपने समाज को सही नेतृत्व प्रदान करें। वे विश्वास रखें कि हमारा समर्थन सदैव उनके साथ है।

मेरा विश्वास है कि जब तक विशाल भारतीय समाज मजहब और जातिवाद के आधार पर बंटा रहेगा, तब तक वह युगानुकूल समाज रचना के मूलगामी कार्य पर अपना ध्यान पूरी तरह केंद्रित नहीं कर पाएगा। इसीलिए मैं विकट राष्ट्रीय संकट की इस घड़ी में आपसे प्रार्थना करने का साहस कर रहा हूँ कि 'राष्ट्रीयता', 'सांप्रदायिकता' और 'धर्म-निरपेक्षता' जैसी मूलभूत अवधारणाओं के बारे में पुनर्विचार करें, ताकि राष्ट्र अब तक के मतिभ्रम से बाहर निकलकर एकता व प्रगति के पथ पर आगे बढ़ सके।

□

पोखरण विस्फोट जनाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति

सफल सिद्ध हुए विस्फोटों के फलस्वरूप देश के नागरिक रोमांचित हो उठे हैं। उनमें सुप्त पड़ी देशभक्ति एकाएक जाग गई है। स्वतंत्र भारत में देशभक्ति की सर्वव्यापी लहर पहली बार देखने को मिल रही है, जिसे स्थायी बनाया जाना आवश्यक है। प्रबल राष्ट्रों द्वारा दी जानेवाली धमकियों से डरने के स्थान पर आम लोग उनका मुकाबला करने का साहस दिखा रहे हैं। देश के विकास के लिए इसे जनाधार का रूप दिया जाना चाहिए। इस संदर्भ में कुछ विचार बिंदु—

- विस्फोटों के लिए अनुमति प्रदान करनेवाले प्रधानमंत्री तथा नाभिकीय क्षमता अर्जित करनेवाले वैज्ञानिकों को ही उपर्युक्त वातावरण का श्रेय है।
- किसी दल या अपना व्यक्तित्व चमकाने वाले नेता ने इस प्रसंग का लाभ उठाने का प्रयास किया तो आम लोगों में जाग उठी देशभक्ति पर तुषाराघात होगा। एकजुट होकर विदेशी धमकियों का मुकाबला करने के लिए सिद्ध हुई जनशक्ति बिखर जाएगी।
- समृद्ध राष्ट्रों द्वारा पाबंदी लगाने की घोषणाओं के कारण सबके समझ में आना चाहिए कि देश के विकास के लिए विदेशी सहायता पर निर्भर रहना राष्ट्रीय सुरक्षा की दिशा में गतिशील होने में बाधक होता है।
- आजादी पाने के पचास साल बाद आर्थिक स्वाधीनता अर्जित करने की प्रबल जनाकांक्षा जाग्रत हुई है। उसका लाभ उठाना समय की आवश्यकता है।
- लगभग सभी आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि भारत की विशेषता है। धमकियां देनेवाले देशों में ऐसे भी देश हैं, जिनका विकास भारत के प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। आवश्यक है कि देश में उपलब्ध कच्चे माल को विदेशों के लिए निर्यात करने के स्थान पर हम अपने अधिकांश कच्चे माल को तैयार माल में रूपांतरित करें। इससे अपनी आर्थिक स्थिति अधिक मजबूत होगी।
- किए गए विस्फोटों ने सिद्ध किया है कि भारत में प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ सभी प्रकार की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रतिभा विद्यमान है। आवश्यकता है, हम स्वयं दोनों

■ विराट् पुरुष

उपलब्धियों का सदुपयोग कर देश के विकास की अपनी ही तकनीकी विकसित करें।

- विश्व के विकसित देशों की उन्नति का आधार है पूंजी प्रधान तकनीकी। इस तकनीकी द्वारा किया गया विकास टिकाऊ नहीं हो सकता। कारण, उस तकनीकी के परिणामस्वरूप सामाजिक एवं क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ती हैं। ग्राम अविकसित रह जाते हैं। बेकारी पनपती है। प्रदूषण फैलता है। प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण होता है। समाज में अशांति बढ़ती है। अविकसित देशों का शोषण करने की प्रवृत्ति पनपती है। जीवन से मानवीयता, जो भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का अनोखा समन्वय है, तिरोहित होती है। अतः भारत को विकास की पूंजी प्रधान नहीं—अपने जीवन-दर्शन के अनुसार श्रम प्रधान और आधुनिक तकनीकी विकसित करनी होगी।
- भारत मूल के अप्रवासी नागरिक, जिन्हें एन.आर.आई. के नाम से जाना जाता है, विश्व के लगभग सभी देशों में बसे हैं। नाभिकीय विस्फोटों से उन्होंने स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया है। इससे प्रगट है कि उनका भारत से लगाव प्रबल है। आर्थिक दृष्टि से वे संपन्न हैं। उनमें से कुछ लोग तो उन देशों में प्रथम श्रेणी के उद्योगपति बने हैं। अनेक लोगों ने व्यवसायों में भी विशेष स्थान प्राप्त किया है। भारत के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण हो सकता है।
- नौवीं पंचवार्षिक योजना में उनका सदुपयोग करना देश की आवश्यकता है। उसके लिए नाभिकीय विस्फोटों ने अनुकूल वातावरण बनाया है। प्रधानमंत्री की अपील उनके लिए विशेष प्रभावी हो सकती है।
- देश के उद्योगपतियों ने अपने-अपने घरानों की समृद्धि बढ़ाने के लिए स्वतंत्र भारत की राजसत्ता का बहुत लाभ उठाया है। सर्वसाधारण नागरिकों के हित-संवर्धन में उन्होंने न स्वयं कुछ किया है, न शासन ने उनसे कराया है। इन घरानों में से अनेक के पास टैक्स का बहुत रुपया बाकी पड़ा है, किंतु उसे वसूलने में कोताही की जा रही है।
- 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्री राजीव गांधी ने कहा था कि विकास कार्य के लिए सरकारी खजाने से एक रुपया दिया जाता है तो उसमें से केवल पंद्रह पैसा ही विकास पर खर्च होता है। शेष 85 पैसा बीच में ही गायब होता है। इस तथ्य की उपेक्षा करना घातक होगा। इस दोष को दूर करने का उपाय है—देश के विकास में जनसहयोग प्राप्त करना। इसके अभाव के कारण ही गत पचास सालों में नौकरशाही की मानसिकता जनसेवा की बन नहीं पाई। उसमें आवश्यक परिवर्तन की अनुकूलता अब निर्माण हुई है। अतः देशभक्ति की उदित भावना का लाभ उठानेवाली नौवीं पंचवार्षिक योजना बननी चाहिए।
- आजाद होने पर भी देश के विकास में जनसहयोग न लेकर विकास कार्यों का संपूर्ण दायित्व सरकारी यंत्रणा के द्वारा ही निभाने की रूसी प्रथा अपनाई गई है। परिणामस्वरूप देश के विकास में पहल करने की मानसिकता देश के सक्षम नागरिकों में भी पनप नहीं पाई। उसे गति प्रदान करने का सुअवसर नाभिकीय विस्फोटों की प्रतिक्रियास्वरूप मिलनेवाली धमकियाँ

ने उपलब्ध कराया है। उसका लाभ उठाकर जनसहयोग आधारित योजना बनाना समय की आवश्यकता है। उसी से लोकतंत्र का व्यावहारिक रूप विकसित करने की पहल का श्रेय भारत को मिलेगा।

- देश में अनेक सफल उद्योगपति हैं। समृद्धि के विकास की तकनीकी के वे माहिर हैं। इस समय उनकी क्षमता का लाभ देश के विकास के लिए करने का अनुकूल वातावरण बना है। अतः सर्वांगीण-विकास के लिए देश का एक-एक जिला एक-एक उद्योगपति को सौंपा जाए। उनके द्वारा ही उन जिलों के विकास की योजना बनाई जाए। वे ही उसे कार्यान्वित करें। उसके लिए आवश्यक धन जुटाने में वे एन.आर.आई. का सहयोग ले सकते हैं।
- अंग्रेज शासकों ने अपने औद्योगिक स्वार्थवश भारत को कृषिप्रधान देश कहकर हमें गुमराह किया था, किंतु वास्तविकता भिन्न थी। भारत के मनीषी जानते थे कि जनजीवन कृषि एवं उद्योगों के समन्वित आधार पर ही टिका रहता है। अतः भारत में हर ग्राम में गृह उद्योग प्रस्थापित थे। गांव के निवासियों की लगभग सभी आवश्यकताएं वे पूर्ण करते थे। शेष आवश्यकताएं व्यापार द्वारा पूरी होती थीं। आधुनिक पूंजी प्रधान औद्योगीकरण से उत्पन्न होनेवाले सभी दोषों से वे मुक्त थे। नौवीं पंचवार्षिक योजना बनाते समय भारतीय औद्योगीकरण की उपर्युक्त विशेषता का इस काल में किस रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- देश के नागरिकों की नित्य उपभोग की वस्तुओं में से लगभग तीन चौथाई वस्तुओं का उत्पादन विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियां कर रही हैं। इन कंपनियों के पास धन की कमी नहीं है। फलस्वरूप वे अपने उत्पाद के प्रचार-प्रसार पर बहुत धन खर्च कर उन्हें इतना आकर्षक सिद्ध करते हैं कि स्वदेशी का अभियान चलानेवाले नेताओं के घरों में भी उन वस्तुओं का प्रयोग होता हुआ देखा जा सकता है। ये कंपनियां बीस अरब रुपयों का लाभ प्रतिवर्ष भारत से विदेशों में ले जा रहे हैं। औद्योगिक उदारता देशी कंपनियों को नुकसान पहुंचा रही है। पूंजी प्रधान विकास का यह अभिशाप है। नौवीं पंचवार्षिक योजना इस घातक दिशा से मुक्त होनी चाहिए।
- अपना देश विदेशी कर्ज के असह्य बोझ का शिकार बना है। इससे छुटकारा पाने के लिए प्रधानमंत्री द्वारा 'विदेशी कर्ज मुक्ति कोष' की घोषणा होनी चाहिए। उसमें छोटी से छोटी धनराशि प्राप्त करने की सुविधा हो। इससे विद्यालय में पढ़नेवाले छोटे-छोटे बच्चे भी अपना योगदान दे सकेंगे। देश में जाग्रत हुई देशभक्ति की भावना स्थायी बनाने में इसका लाभ होगा। विदेशी कर्ज से मुक्ति पाने के लिए देश-विदेश के भारतीयों द्वारा पर्याप्त धन मिलेगा। पांच हजार से अधिक धनराशि देनेवालों को आयकर से शत-प्रतिशत छूट मिलनी चाहिए।



निज पराक्रम करें तभी छंटेगा निराशा का अंधेरा

स्वातंत्र्य की कल्पना मात्र से अंतःकरण कितना उल्लसित हो उठता था। इसे अपने जीवन में देखने की एक अजीब सी चाह थी। इस हेतु कहीं प्रयत्न चल रहा है, यह ज्ञात होते ही सारा ध्यान उस ओर आकृष्ट होता था। जीवन की संपूर्ण शक्ति इसी एक हेतु के लिए समर्पित करने की आकांक्षा अंतःकरण में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किए हुए थी। इतिहास की घटनाएं, स्वतंत्र देशों के वृत्तांत तथा नेताओं के भावपूर्ण भाषण, इन सब बातों ने अंतःकरण में स्वातंत्र्य का एक कल्पना-चित्र निर्माण कर दिया था। कितना सुहावना लगता था वह चित्र। उस कल्पना-चित्र के चिंतन में ही कितना समय चला जाता था। अपने मित्रों से इस विषय की चर्चा छिड़ती थी, तो भूख प्यास, नींद सब उड़ जाती। घर के लोगों की डांट-फटकार का ध्यान न रहता और सारी रात एक क्षण के समान अनुभव होती थी।

आंदोलन छिड़ते थे, बड़े उत्साह से हम भावावेश में आकर उनमें कूद पड़ते थे। स्वातंत्र्य का नाम लेकर किया जानेवाला प्रत्येक प्रयत्न हमें प्यारा था। कौन कितना विचारशील है, वह क्या करने के लिए कहता है? उसमें कुछ तथ्य हैं या नहीं, ये विचार हमें छू तक नहीं जाते थे, इतना जादू स्वातंत्र्य शब्द में था। लगता था, जिस दिन भारत अपने संघर्ष में सफल होकर स्वतंत्र होगा, उस दिन बच्चा-बच्चा नाच उठेगा। देशवासियों के शरीरों पर भले ही चोटें हों, पेट में अन्न का कण भी न हो, सम्मुख भाई-बांधवों के शव पड़े हों, घर के लोग घर-बार विहीन हुए हों, अपने विश्राम तक के लिए कहीं ठिकाना न हो, तब भी भारत स्वतंत्र हो। स्वतंत्र होते ही कितना अपूर्व उल्लास, कैसी उमंग, कैसी मस्ती छा जाएगी, यह विचार मन में रहता था। उसके पश्चात् अपने स्वप्नों की भांति भारत का निर्माण हम स्वयं अपने पुरुषार्थ से कर लेंगे।

बिखर गए स्वप्न

परंतु हुआ कुछ विपरीत ही। भारत स्वतंत्र हुआ, परंतु कल्पना-चित्र झूट निकला। अंतःकरण में एक धक्का सा लगा। वर्षों से अंतःकरण में लिए हुए भावों की होली देखने को मिली। मन में विचार आया कि खुशी का समाचार आते ही लोग किस प्रकार आनंद और उल्लास से फूल जाते

हैं, उनके प्रत्येक कार्य से अंतर का वह आनंद स्वाभाविक रूप से फूटकर निकलता सा है, किंतु अपने चारों ओर का दृश्य देखकर मैं रुका। केवल नेता ही नहीं, सरकार भी अपने रेडियो से, समाचार-पत्रों से, आदेशों से, विज्ञापनों से, लोगों को स्वतंत्र होने का समाचार देने लगी। खुशी मनाने के लिए योजनाएं बनाई जाने लगीं, आनंद व्यक्त करने के साधन सुझाए गए। मुझे लगा कि अब आनंद आएगा। परंतु फिर भी आनंद की लहर नहीं आई। सरकार की ओर से खूब प्रयत्न हुए। दीवाली मनाने के आयोजन हुए, चंदा एकत्रित करने की धूम मची, बड़े-बड़े जुलूस निकले परंतु आनंद का अभाव था। 'सरकार की आज्ञा' है ऐसा न किया तो 'सरकार नाराज होगी'—खुशी मनाने के पीछे ये भाव दिखाई देते थे।

मेरे मन में आया, लोगों के मन में एक असह्य वेदना है। जो घटना इतिहास में कभी न घटी थी, जिसकी कल्पना भी जीते जी किसी भारतीय ने न की होगी, दुर्दैव से वही लज्जाजनक बात हुई। भारत का विभाजन हुआ। लक्षावधि लोग बेघर हुए। अपने ही देश का भाग, हमारे हृदय का टुकड़ा, हमारी संस्कृति का नमूना, हमारे इतिहास का चिह्न 15 अगस्त को विदेश बन गया। यही पीड़ा आज की उदासीनता का कारण है। सरकारी आज्ञा से लोग खुशी का दिखावा भले ही कर रहे हों, किंतु अंतःकरण की उदासी का यही कारण है।

अंशतः यह सत्य निकला। बारंबार मन को ये प्रश्न झकझोरने लगे कि ऐसा क्यों हुआ? स्वातंत्र्य आया, फिर भी अंतःकरण से आनंद की लहर क्यों नहीं उठी? क्या यह वास्तविक स्वातंत्र्य नहीं है? स्वतंत्र स्वयं होना पड़ता है, तो क्या हमने स्वयं स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की है? क्या हमारे देशवासियों ने अपने परिश्रम से, अपने बल से विदेशियों को हटाकर माता का मुख उज्ज्वल नहीं किया है?

सचमुच, विचार करने पर कुछ दूसरा ही निष्कर्ष निकल रहा है।

अंतर का देवता कह देता है, कि सचमुच हमने अपने पराक्रम से अंग्रेजों को यहां से नहीं हटाया। इतने बलशाली हम होते, तो हमको अपने देश का विभाजन ही स्वीकार न करना पड़ता। हमारे नेता लोग देश को प्राणों से भी प्यारा समझते थे। बेचारों ने कितने कष्ट सहे। दर-दर घूमे, महलों की हवा छोड़ी, जेल की यातनाएं सही, मान-सम्मान की परवाह न की। समय पर डंडे, कोड़े, क्या-क्या नहीं सहा? यह सब किस बात के लिए, क्या देश के टुकड़े करने के लिए किया गया? नहीं। न चाहने पर भी वे विवश हुए। विवशता पराक्रम या सबलता का लक्षण है क्या? नहीं। तब फिर यह स्वराज्य कैसे मिला? इसमें कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों की कोई कुटिलता तो नहीं? परंतु स्वयं क्यों कोई इतना बड़ा राज्य अपने ही हाथों से गंवा देगा?

ब्रिटिश शासन की कूटनीति

हम जरा संसार की परिस्थिति पर विचार करें, उस समय दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था। अमरीका, फ्रांस, रूस एक ओर थे। इन्होंने एक होकर जर्मनी, जापान, इटली का सामना करना आरंभ किया। युद्ध जोरों पर चल रहा था। अंग्रेजी फौजों को भी पीछे हटना पड़ रहा था। इंग्लैंड

विराट् पुरुष

पर बमवर्षा हो रही थी। अंग्रेजों की हालत स्वयं उनके घर में ही खराब हो गई थी। हमारे देशवासियों ने अवसर देखा, हमारे देश में भी जापानियों ने अंग्रेजों के लिए आतंक पैदा कर दिया था। अंग्रेज बड़ी कठिनाई में थे। अपने युद्ध के लिए वे हमारे यहां का धन और जन दोनों ही लगा रहे थे। उनके विरुद्ध समाज में असंतोष था, ऐसे समय देश को सहज ही भड़काया जा सकता था। 1942 का सत्याग्रह संग्राम छिड़ा और उसने देशव्यापी स्वरूप धारण किया। पहले-पहल ऐसा लगा मानो हम स्वतंत्र हुए। अंग्रेजों की स्थिति बहुत ही नाजुक थी, परंतु ऐसी नाजुक स्थिति में भी उन्होंने सात दिन के अंदर संपूर्ण देश में शांति निर्माण की। क्रूरतम अत्याचार किए और ऐसा लगने लगा, मानो सर्वसाधारण समाज में देशभक्ति का लोप हो गया है। महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् नेता लोग जेल से निकले, किंतु सब हताश थे। इनको कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। तब फिर उपेक्षित सुभाष बाबू के बंदी सेनानियों के मुकदमे लड़कर वे समाज में प्रविष्ट हुए और उसी के सहारे समाज में चेतना निर्माण करने के प्रयत्न होने लगे।

विश्व दो गुटों में बंटा

इधर संसार का चक्र कुछ बदल गया। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् संसार गुटों में बंटने लगा। अमरीका तथा रूस इन गुटों के नायक बने। शब्दों के अर्थ बदल गए, परंतु भावनाएं वही रहीं। साम्राज्यवाद को नष्ट करने का पवित्र प्रण व्यक्त कर, संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की रूस की महत्वाकांक्षा से अमरीका का माथा टनका। वह भी प्रजातंत्र का नारा बुलंद कर, अपने स्वर्णमय धनागार का मोह फैलाकर, संसार को वश में करने के लिए निकला। दोनों की होड़ लगी। अंग्रेज भी अपने भविष्य को अमरीका के साथ सुरक्षित समझकर उसके ही साथ हो लिए। रक्त का प्राचीन संबंध, पुराना प्रेम उमड़ पड़ा। दोनों की आशा-आकांक्षाएं एक हो गईं और भावी नीति के बीजारोपण में उन्होंने अपनी दूरदृष्टि का परिचय दिया। शांति के दिनों में भी युद्ध की नीति चली। रूस का भूत उनको डरा रहा था।

हिंदुस्तान का प्रश्न उनके सम्मुख खड़ा था। हिंदुस्तान पर अपना राज्य बनाए रखने से वह अपने प्रभाव में रहेगा, अथवा उनको अपनी ओर बनाए रखने के लिए कोई दूसरा उपाय ढूँढ़ना पड़ेगा? देश में स्वातंत्र्य की तीव्र इच्छा है और हम उनके विदेशी शासक हैं। इसकी पूर्ण अनुभूति उनको थी। लड़ाई के दिनों में बहुत से भारतीय, जर्मनों या जापानियों के विजय की कामना रखते थे, यह वे जानते थे। लड़ाई के पश्चात् रूस अंग्रेजों, अमरीकियों का शत्रु सिद्ध हो रहा है और उसका तत्त्व ज्ञान लुभावना है। अंग्रेजों ने स्पष्ट देखा कि हम चाहें तो भारतीयों को अपने अधीन भले ही बनाए रहें, परंतु इनके मनोभाव रूस की ओर अवश्य आकृष्ट होंगे। चालीस करोड़ के सर्वविधि संपन्न देश का शत्रु की ओर आकर्षित होना अवश्य ही हमारे लिए घातक होगा, इसकी कल्पना वे कर सके और साम्राज्य का मोह उनको अंधा न बना सका। अतएव भारतीयों के अंतःकरण पर प्रभाव डालकर, उनकी शक्ति का उपयोग करने तथा भविष्य में उनको अपना सहायक बनाए रखना उन्होंने तय किया।

इतने से ही वे संतुष्ट न रहे। किसी पर विश्वास न करना—राजनीति का प्रमुख गुण है। अंग्रेज जैसी राजनीतिज्ञ जाति इसका अपवाद कैसे होती? उन्होंने सोचा, चालीस करोड़ जनसंख्यावाले भारत को हमने स्वशासन सत्ता सौंप दी, उसे अपने आधीन न रखा, तो भविष्य में ये क्या करेंगे, इसका क्या भरोसा? अतएव ऐसा कुछ किया जाए, जिससे इनकी सद्भावना भी मिले और इनकी शक्ति भी नष्ट हो। सहायतार्थ ये हमारे याचक भी बने रहें। यही सब सोचकर उन्होंने अपनी भावी नीति तैयार की। 'जैसा हम सदा से कहते आए हैं, उसके अनुसार भारत को स्वतंत्र करेंगे'—यह घोषणा हुई। यहां कमीशन पर कमीशन आए। हमारे नेता भी आशान्वित हुए। 'उन पर विश्वास करो' ऐसी भाषा बोली जाने लगी। ऐसे ही आश्वासनों पर लड़ाई के दिनों में ध्यान नहीं दिया जाता था, किंतु अब उन पर विश्वास किया जाने लगा। निराशा जब घेर लेती है, तब हर बात में आशा की किरण देखने की उत्कंठा होती है। सारासर विचार को स्थान नहीं रहता। कुछ ऐसी ही स्थिति अपने यहां हो गई थी। अंग्रेजों पर विश्वास करना इस बात का परिचायक था। अंग्रेजों ने वास्तविकता को पूर्ण रूप से जाना था, उन्होंने जाल रचा। हमारी स्थायी सरकार बनाई गई।

बीज विष-वृक्ष बना

1906 में अंग्रेजों का बोया हुआ बीज आज उनको पला हुआ दिखाई दिया। मुसलिम लीग आज विकराल बन गई। अपने भाई समझे जानेवाले मुसलमान भयंकर दिखाई देने लगे। देश में भयंकर कांड खड़े हुए। उनको संभालना हमारे नेताओं के मान की बात नहीं रही। अंग्रेज सारी भयंकर परिस्थिति को देख रहा था। उसकी इच्छा पूरी हो रही थी। नेता परेशान थे। इसके बाद भी आजादी का परवान न मिला तो समाज के सम्मुख किस मुंह से खड़े होंगे, यह प्रश्न उपस्थित हुआ। विवशता स्पष्ट हो गई।

और इसी कारण इच्छा न रहते हुए भी देश के प्रेम-मार्ग में रोड़ा बनकर आनेवाला विभाजन नेताओं ने स्वीकार किया। देश विभाजित हुआ। नैसर्गिक सीमाएं खंडित हुईं। देश को संकटग्रस्त बनाकर, हमेशा के लिए एक उलझन खड़ी कर अंग्रेजों ने देश हमें सौंप दिया, हमारी सहानुभूति ली, राजनैतिक दांव से पाकिस्तान की स्थापना की और हमेशा के लिए वहां अपना अड्डा बना ही लिया और बचा हुआ, दोनों ओर पाकिस्तान की कैची में फंसा हुआ हिंदुस्तान का 'स्वराज्य' हमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार हमें स्वराज्य मिला। अपने भविष्य के निर्माण हेतु अब भी हम उन्हीं की ओर आंखें लगाए हुए हैं। परंतु हम आजाद हैं, उनके बिना हम भविष्य निर्माण कैसे करेंगे, यह चिंता भी हमारे मन में है और हम स्वतंत्र भी हैं।

यह स्वातंत्र्य निज पराक्रम से प्राप्त नहीं

सचमुच में यह मिला हुआ स्वातंत्र्य है। स्वयं अपने भविष्य को बनाने के लिए किया हुआ यह अंग्रेजों का कूटनीतिक प्रयोग है। हम अपने पराक्रम से इसे प्राप्त करते तो क्या ऐसा टूटा-फूटा स्वातंत्र्य प्राप्त करते? मां-बहनों की इज्जत लुटाते हुए हम अपने को आजाद मानते? देश के

विराट् पुरुष

टुकड़े करके हम स्वतंत्र कहलाते? नहीं, यह हमारे बल से, हमारे पौरुष से प्राप्त किया हुआ स्वातंत्र्य नहीं है। यह तो दूसरे का दिया हुआ, अपने स्वार्थ के लिए दिया हुआ स्वातंत्र्य है।

इसी कारण हमारे हृदय में उसके लिए प्रसन्नता नहीं, उसके लिए उल्लास नहीं, उमंग की लहर नहीं, नव-निर्माण की जागृति नहीं। भविष्य की चिंता नहीं। सरकार आजादी मनाने के फरमान निकालती है, जुलूस निकलते हैं, दीपावली मनाई जाती है, किंतु उसके आलोक में किसी का चेहरा खिला हुआ नहीं दिखता। अपने परिश्रम से प्राप्त सूखी रोटी में भी कितना आनंद आता है। अपने परिश्रम के फल का आनंद अपने आप होता है। किंतु इस स्वतंत्रता की ओर सभी का एक जैसा ही दृष्टिकोण है, इसके लिए सुशिक्षित-अशिक्षित में भेद नहीं। गरीब-श्रीमंत का भेद नहीं। देहाती और शहरवालों का भेद नहीं। सभी यह अनुभव करते हैं कि यह आजादी मिली हुई है। अन्यथा इतिहास की घटनाओं से, स्वतंत्र देश के वृत्तांतों से और हमारे नेताओं के भावपूर्ण भाषणों से स्वतंत्रता की जो कल्पना-मूर्ति अंतःकरण में निर्मित हुई थी, जिसमें अंतःकरण तल्लीन हो जाता था, वही, एकदम वही आनंद, वही उत्साह चारों ओर दिखाई देता।



विकास की दिशा जनता की सहमति से तय हो

दुर्भाग्य से आज के नेताओं को उदार चरित्र भारतीय मूल्यों की याद दिलाना कठिन हो गया है। वे भारतीय दर्शन की खुली मानसिकता को तोड़-मरोड़कर अपने राजनैतिक स्वार्थों को पूरा करने के लिए उसे तोड़-फोड़ की राजनीति में बदल चुके हैं। अर्थहीन मुद्दों को भड़काकर उन्होंने समाज में कलह पैदा कर दी है। इन नेताओं को जनता के भले से कोई लेना-देना नहीं है।

भारत के नेतृत्व को राष्ट्रीय नेतृत्व नहीं कहा जा सकता। एक व्यक्ति जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर नेता बन जाता है। सारी समस्या यह है कि राष्ट्र का एक इकाई के रूप में विचार नहीं हो रहा। हर एक व्यक्ति हिंदू, मुसलिम, यादव, दलित, जाट आदि के तौर पर पहचाना जाता है। इसी आधार पर सरकारें बन रही हैं। मंत्रियों का चयन उनकी क्षमताओं या विकास कार्यों में योगदान के आधार पर नहीं वरन् उनकी गुटीय पहचान के आधार पर होता है।

हमारे नेताओं ने, चाहे वे राजनीति के क्षेत्र में हों समाज क्षेत्र, धर्म क्षेत्र या सांस्कृतिक क्षेत्र में हों, अपने बेटों, बेटियों को सामाजिक या राष्ट्रीय जिम्मेदारी की दृष्टि से कुछ नहीं सिखाया। उनका लक्ष्य इतना भर है कि उनकी संतान विदेश जाकर ऊंचे वेतन पर नौकरी कर लें। इस बात की उनको बिलकुल चिंता नहीं है कि हमारे चारों ओर भूख और कुपोषण की समस्या फैली है। आजादी के 50 साल बाद भी आर्थिक असमानता पहले के मुकाबले कहीं अधिक है। जब नेता ही देश के बारे में नहीं सोचते तो साधारण लोग कैसे सोचेंगे?

आज के राजनेताओं ने देश को टूटने के कगार पर पहुंचा दिया है। इसका प्रमाण चारों ओर दिखता है। आज सब ओर की राजनीति दूषित है। यही कारण है मैं किसी दल विशेष या नेता विशेष से नजदीकी अनुभव नहीं करता। मेरा मित्र तो वही है, जो राष्ट्र की बात करता है। मैंने 28 अप्रैल, 1978 को राजनीति छोड़कर लोगों के बीच कार्य करना शुरू कर दिया। मैं कभी जनसंघ और जनता पार्टी का सदस्य था, परंतु अब मैं उन्हें कोई सलाह नहीं देता, क्योंकि मुझे पता है, कोई मेरी सुननेवाला नहीं। राजनीति में तो बस सब सत्ता में बने रहना चाहते हैं।

आज संसद को चलने नहीं दिया जा रहा। सांसद काम नहीं करते, लेकिन वेतन पूरा पाते हैं।

विराट् पुरुष

इसमें उन्हें कोई शर्म नहीं। कुछ समय पहले मैंने सभी सांसदों को वेतन वृद्धि के औचित्य पर पत्र लिखा था। एकमात्र जवाब कुलदीप नैयर से आया। केवल उन्होंने और मैंने सांसदों के बढ़े वेतन को लेने से इनकार किया। जब मैं राज्यसभा में अपनी आर्थिक सिद्धांतों की बात रखता हूँ तो मुझे विपक्ष के नेता मनमोहन सिंह से समर्थन मिलता है। वे सरकारी पक्ष को कहते हैं, “कृपया नानाजी की कही बातें अमल में लाएं।” लेकिन सरकारी पक्ष से एक सदस्य भी उठकर इसका समर्थन नहीं करता।

मूलभूत त्रुटि ही यह रही कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही सरकार और प्रशासन यह मानते रहे कि जनता पर विकास कार्य थोपे जा सकते हैं। जनता से पूछने की जरूरत नहीं। विकास का तो लक्ष्य है कि शासन लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रोत्साहित करे। विकास की मूल समस्याओं को नजरअंदाज किया गया। प्राकृतिक संसाधनों से भरे-पूरे गांव छोड़कर लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं। सरकार 76 प्रतिशत उन किसानों के लिए कोई नीति क्यों नहीं बनाती जिनके पास अलाभकारी जोतें हैं? हम चित्रकूट के 500 गांवों में आदर्श विकास कार्यों के नमूने लागू कर चुके हैं। आप वहां पाएंगे कि जिस किसान के पास केवल ढाई एकड़ की भी जोत है, वह भी अपना सारा खर्चा निकालकर 5,000 से 6,000 रुपये हर साल बचा लेता है। मैंने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के निदेशक को भी काम दिखाए। सोचिए, यदि सभी किसान आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाएं और अपनी बचत का कुछ हिस्सा राष्ट्रीय आय में भी दे सकें तो कितनी पूंजी सृजन होगी। यह सब करने की बजाय हम विदेशी कंपनियों के पीछे भागते हैं, जिनका मकसद भारत का फायदा नहीं बल्कि अपना फायदा है। अपने स्रोतों के इस्तेमाल से कैसे देश का हित हो, इस ओर हमारा ध्यान नहीं है।

हाल ही में गुजरात का मैंने दौरा किया। मैं किसी जांच दल के साथ नहीं गया था। मैं किसी नेता से नहीं मिला। मुझे उनको सुनना भी नहीं था। मेरा मानना है, आज की समस्याएं सुलझाने के लिए राजनेताओं के पास जाने की जरूरत नहीं है। वे तो खुद समस्या पैदा करनेवाले हैं। मुझे लगता है, सीधे जनता के पास जाने की जरूरत है। हमें ऐसा क्यों लगता है कि नेताओं के जरिए ही जनता तक पहुंचा जा सकता है। यहां तक कि बंटवारे के समय भी गांधी जी जिन्ना के पास चले गए, जिसने इसलाम के नाम पर अशिक्षित जनता का फायदा उठाया।

अब तक की सरकारों ने हमारी शिक्षा व्यवस्था को दिशाहीन बना दिया है। यह बेहद जरूरी है कि आज की पीढ़ी मानवीय मूल्यों को समझे, ग्रहण करे और राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाए। यह भी सिद्ध हो चुका है कि धर्मनिरपेक्षतावाद, समाजवाद, साम्यवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद और पूंजीवाद इस देश के पुनर्निर्माण में सफल नहीं रहे हैं।

□

एक राष्ट्र का विचार नेतृत्व बने ईमानदार

भारत की स्वतंत्रता को 55 वर्ष पूरे हुए। लेकिन अभी भी राष्ट्रत्व का विचार हमारे देश में जड़ नहीं पकड़ पाया है। इसका कारण यह है कि हमारे नेताओं में एकात्म राष्ट्र की दृष्टि ही नहीं है। सत्ता के पीछे जाने में बुराई नहीं, परंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि हमें स्वतंत्रता एक राष्ट्र के तौर पर मिली। दुर्भाग्यवश हमारे नेता यह परम सत्य भूल गए हैं। अंग्रेज विदेशी थे। उन्हें भारत के भविष्य की चिंता नहीं थी। उनकी नजर केवल भारत के प्राकृतिक संसाधनों पर थी। हमारे समाज को विखंडित करना उनको आवश्यक अनुभव हुआ, ताकि वे अपनी सत्ता को मजबूत कर सकें। इसका परिणाम हमारे देश का दो हिस्सों में बंटवारे के रूप में हुआ।

स्वतंत्रता के बाद हमारे नेता राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए अपने ही देश को टुकड़ों में देखने लगे। पहले के समय में जातियों को व्यवसाय के आधार पर देखने का लाभ था, परंतु यह सोच अब वैध नहीं है। 1965 के युद्ध और कारगिल युद्ध में 'बनिया' युवकों ने अदम्य साहस का परिचय दिया। आज 'बाटा' की दुकान में ब्राह्मणों के बच्चे किसी भी ग्राहक को जूता पहनाते देखे जा सकते हैं। सच तो यह है कि जाति प्रथा कालबाह्य और अप्रासंगिक हो चुकी है। फिर भी स्वतंत्र भारत के नेता जातियों के गड़े मुरदे उखाड़ रहे हैं। नेताओं को तो सत्ता के लालच में, क्षेत्रीयवाद के नारे उछालने में भी शर्म नहीं आती। सत्ता की इसी दौड़ के चलते नेताओं की मानसिकता जातिवाद, क्षेत्रीयवाद और संप्रदायवाद में कैद हो गई है। स्वतंत्रता पाने के लिए हमने धर्मनिरपेक्षता की बलि दे दी। हमने हिंदू-मुसलिम समीकरणों के आधार पर अपने देश का बंटवारा स्वीकार कर लिया। इस सबके बावजूद भारत में 12 करोड़ से अधिक मुसलिम हैं। वे यहीं रहेंगे, क्योंकि भारत कभी एक पंथ में विश्वास करनेवाला देश नहीं रहा। 'सर्वधर्म समभाव' हमारी परंपरा रही है। यह देखते हुए क्या हिंदू-मुसलिम टकराव को चलते रहने देने से भारत कभी प्रगति कर पाएगा? क्या इन दोनों समुदायों का कल्याणकारी भविष्य अलग-अलग किस्म का है?

एक राष्ट्र की दृष्टि का अनुगमन जरूरी है। दुर्भाग्यवश इस दिशा में जनस्तर पर कोई भी

विराट् पुरुष

अभियान नहीं चलाया जा रहा। एक राष्ट्र का विचार उन नेताओं के आधार पर नहीं बन सकता जो विभाजनकारी हथकंडे अपनाकर राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर लेते हैं। बुनियादी स्तर पर दोनों समुदायों में मैत्री और भाईचारा है। इसलिए संघर्ष और मतभेद की राजनीति की दिशा बदलने की जरूरत है। एकात्म भारत के लक्ष्य को पाने के लिए हमें राजनीतिक सत्ता के लिए अपनाए जानेवाले पापतुल्य असहिष्णु हथकंडों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति को बदलना होगा।

सन् 1952 से हमारे देश में वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव आयोजित किए जा रहे हैं। 1952 में विधानसभाओं और लोकसभा के चुनावों में कितना पैसा खर्च किया जाता था और अब कितना किया जाता है? हम सभी जानते हैं कि चुनावों में काला धन इस्तेमाल किया जाता है, जो कि केवल भ्रष्टाचार से ही कमाया जाता है। चुनावों में खर्च होनेवाले काले धन के आधार पर ही राज्यों और केंद्र में सरकारें गठित होती हैं। क्या इससे समाज में नैतिकता का प्रादुर्भाव होगा? क्या ऐसे अनैतिक व्यवहार से देश में नैतिक वातावरण तैयार होगा? क्या ऐसा प्रशासन बेरोजगारी घटा सकता है? क्या ऐसी सरकारें गरीबों और पिछड़ों का कल्याण कर सकती हैं? क्या ऐसी प्रवृत्तियाँ राजनीतिक दलों की बढ़ती गुटबाजियाँ कम कर सकती हैं? क्या इस प्रकार का व्यवहार हमारे समाज को एक कर सकता है?

चुनाव लोकतंत्र का आधार है और चुनावी प्रक्रिया के लिए फंड जरूरी है। यही तर्क हमारी राजनीति को चलाता है। लेकिन इस तर्क से लोगों के अधिकतम भले के लिए लोकतंत्र मजबूत नहीं होगा और न ही राजनीतिक अवसरवादिता समाप्त होगी। इस प्रकार की राजनीति से देश को कमजोर करनेवाली ताकतों को पनाह और प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे राजनीतिक गठजोड़ सत्ता में हैं, जिनका विकास के मुद्दों से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसे गठजोड़ देश के भले के लिए नहीं बल्कि सत्ता का मजा लेने के लिए गठित होते हैं।

लोकतंत्र का अर्थ है कि कोई भी नागरिक वंचित न रहे। और जब तक हर सक्षम व्यक्ति को लाभयुक्त रोजगार (स्वरोजगार समेत) उपलब्ध नहीं होता, तब तक गरीबी साधनहीनता का अंत नहीं हो सकता। यह लक्ष्य शिक्षा और उचित स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता से ही पाया जा सकता है। नेता लोग इस दिशा में कहां काम कर रहे हैं?

जो भी जिस लोकसभा या विधानसभा चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ना चाहे, उसकी प्राथमिक चिंता उस क्षेत्र का विकास और सेवा कार्य होना चाहिए। विकास कार्यों में लगे उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने के लिए काले धन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। मतदाता ऐसे उम्मीदवारों को चुनकर भेजने के लिए स्वयं ही उत्सुक होगा।

फिलहाल हर सांसद को अपने चुनाव क्षेत्र के विकास के लिए दो करोड़ की राशि हर साल मिल रही है, चाहे सांसद खुद न जानता हो कि इस भारी रकम को कैसे खर्च करना है। इसके अतिरिक्त चुनाव क्षेत्र अनुदान भी मिलता है। मेरा अनुभव है कि इस राशि से चुनाव क्षेत्र का पर्याप्त विकास किया जा सकता है।

यदि एक सांसद या विधायक विकास कार्यों में लगता है, तो वह संसद् या विधानसभा में

सुनियोजित विकास के कानून बनाने के लिए उचित सुझाव भी दे सकता है, जिससे कि सदन में बहस का स्तर भी ऊंचा होगा। तब ही विकास का फायदा पिछड़े से पिछड़े तबकों तक पहुंचाया जा सकता है। भ्रष्टाचार समाप्त किया जा सकता है। नैतिक मूल्यों का बोलबाला हो सकता है। लोकतंत्र मजबूत एवं अर्थपूर्ण बन सकता है। यदि वर्तमान नेतृत्व इस दिशा में आगे नहीं बढ़ सकता तो निश्चित रूप से नई पीढ़ी यह काम कर सकती है।



सरकार पर निर्भरता हमारी समस्याओं की जड़

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से राजनीति पूरे देश पर छा गई है। सत्ताधारी दल को कामधेनु के रूप में देखा जा रहा है। यह बात सबके मन में घरकर गई है कि राष्ट्र के समेकित विकास का जिम्मा केवल प्रशासन पर है और नौकरशाही के जरिए ही इसे पूरा किया जा सकता है। यही वजह है कि भारत में नौकरशाही कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर पाती। यह अवधारणा सामाजिक जीवन पर बुरा प्रभाव डाल रही है। हमारा समाज अधिनायकवादी और अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति असंवेदनशील बन गया है। समाज निर्माण के कार्य में आम लोगों की भी भूमिका है, यह भावना ही लुप्त होती जा रही है। नतीजतन जनशक्ति विशेष तौर पर युवा-शक्ति राष्ट्र के समेकित विकास के दृष्टिकोण से महत्वहीन होती जा रही है। यह असीम शक्ति दिशानिर्देश के अभाव में विपत्ति का कारण बन सकती है। इस घातक वातावरण में बदलाव लाना नितांत आवश्यक है।

हिंदू समाज विश्व के सबसे प्राचीन समाजों में से है। राष्ट्र जीवन का कई बार उसने उत्थान और पतन देखा है। सत्ता संघर्ष की आधियों में कई सभ्यताएं ध्वस्त हो गईं। वे केवल इतिहास का विषय बनकर रह गईं, किंतु हिंदू समाज ने इन तूफानों में भी अपना अस्तित्व बनाए रखा। इस समाज ने कई बर्बर आक्रमण झेले। यहां तक कि सदियों की दासता ने भी उसके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और संघर्षशीलता को कम नहीं किया। कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए इसने हर बार अपनी स्वतंत्रता हासिल की। आज उज्ज्वल भविष्य की कामना में यह विकास के पथ पर अग्रसर है। हिंदू समाज की इसी 'जीवन शक्ति' का रहस्य समझकर सभी सहायक वर्गों को साथ लेकर सम्यक् विकास के पथ पर बढ़ने का लक्ष्य हमारी पारंपरिक जिम्मेदारी है। वरना जैसे विश्व के अन्य समाजों का हश्र हुआ, वही हमारे साथ भी होगा।

जनशक्ति विकास का यंत्र

हमारे समाज ने सरकार को नहीं वरन् जनशक्ति को विकास और उत्थान का यंत्र माना है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु', 'सर्वेपि सुखिनः सन्तुः', 'सर्वे सन्तु निरामयः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्'

जैसे मूल्य स्थापित करने की कामना प्रकट की है। समाज का आधार सरकार नहीं, धर्म को माना है। सामाजिक कर्तव्यों के प्रति तत्परता दिखाई है। यही है हमारे समाज की जीवनशक्ति का रहस्य। इसलिए सरकार को सर्वेसर्वा मानना और समाज के मूल गुणों को उजागर न होने देना हमारे राष्ट्र के अस्तित्व को खतरे में डाल देगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारी परंपरा में शासन की महत्ता नहीं थी। लेकिन शासन ही सबकुछ नहीं था। राजशक्ति का काम था देश की सुरक्षा, व्यवस्था, शांति और समाज में समरसता बनाए रखना। इसके अलावा आर्थिक विनियम, विदेशों से संबंध बनाना और न्याय प्रणाली मजबूत रखना।

विभिन्न प्रयोगों में लगे विद्वान् सामाजिक-आर्थिक पुनर्रचना के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते थे। उनके मन में सत्ता या धन का लोभ नहीं था। सम्यक् विकास के लिए दूरदर्शिता और निर्भीकता उनका गुण था। भलाई, सम्मान और सहयोग की भावना से शासन और विद्वान् जन अपने कर्तव्यों को निभाते थे। वे एक-दूसरे के पूरक बनकर पूरी श्रद्धा से जनसेवा करते थे। इन दोनों के बीच का संतुलन बिगड़ने के कारण ही राष्ट्र का पतन शुरू हुआ।

आजादी हासिल करने के बाद राष्ट्र नव निर्माण का काम पुरानी परम्पराओं के मार्गदर्शन से होना चाहिए था। महात्मा गांधी ने भी इस ओर इशारा किया था। लेकिन उन्हें नजरअंदाज कर दिया गया। जीवन के हर क्षेत्र में केवल सत्ता प्राप्ति की लालसा बढ़ती चली गई। सरकार ही सब काम करेगी ऐसी अलोकतांत्रिक दृष्टिकोण को बल मिला। नतीजतन, जनता का राष्ट्र निर्माण में सहयोग का रास्ता बंद हुआ। यह रास्ता खोले बिना समाज-शक्ति का स्रोत नहीं फूट सकता, न ही आम लोगों को राष्ट्र निर्माण के कार्यों में सक्रिय किया जा सकता है।

रचनात्मक कार्यकर्ता

यह कार्य पूर्ण रूप से रचनात्मक स्वभाव का है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आदर्शवादी और गुणवान कार्यकर्ता का एक दल बनाना होगा। यह दल भी सामाजिक आर्थिक पुनर्रचना की प्रयोगशाला में तैयार किया जाना चाहिए। रचनात्मक कार्यकर्ता की एक विशेष भूमिका है। उसे जातीय, प्रांतीय, प्रादेशिक और दलीय भावनाओं से ऊपर उठना होगा। इस कार्य में समाज के प्रत्येक वर्ग को साथ आना होगा। इसीलिए रचनात्मक कार्यकर्ता को सब वर्गों के साथ एकसार होकर आगे बढ़ना होगा।

नई पीढ़ी में आपसी सहयोग और रचनात्मक कार्यों के लिए नई चेतना फूंकनी होगी। सर्वव्यापी संकीर्ण राजनीति से दूर यह कार्य शुद्ध रूप से सामाजिक स्तर पर केवल रचनात्मक कार्यकलापों से ही संभव होगा। युवा दलों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना पनपेगी तो एक दिन सभी पार्टियाँ, प्रशासन और शासक वर्ग भी समर्थक दलों में परिवर्तित हो जाएंगे। यह एक महान् उपलब्धि होगी। यह आसान नहीं है। लेकिन यदि विश्वसनीयता के साथ संकीर्णता और घमंड से परे थके बिना किया जाए तो यह कार्य संभव है।

रचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए हमें हर व्यक्ति में उपलब्ध गुणों को अपने

विराट् पुरुष

स्वभाव में उतारना होगा। रचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करना होगा। अध्ययन करना होगा। स्थानीय आवश्यकताओं को समझना होगा। योजनाओं के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की पूरी सहभागिता करानी होगी। तीन गुणों की सहायता से हमें अपना लक्ष्य प्राप्त होगा। स्पष्ट लक्ष्य, दृढ़ निश्चय और एकाग्रचित्तता। इससे समाज की शासन तंत्र पर निर्भरता घटेगी और जनशक्ति का उचित उपयोग होगा। आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और आत्मगौरव पैदा होगा। उसी से गतिशील विकास की दिशा मिलेगी। मुझे पूरी उम्मीद है दीनदयाल शोध संस्थान से जुड़े हम सब लोग इस कार्य में सदैव तत्पर रहेंगे।

सांस्कृतिक युद्ध

हमारा स्वातंत्र्य संग्राम अखण्ड भारत के लिए था। 'वंदे मातरम्' की प्रेरणा उसी का प्रतीक थी। उसी के लिए असंख्य युवाओं ने अपने प्राणों की बलि चढ़ाई थी। हमारी स्वातंत्र्य की लड़ाई केवल राजनीतिक लड़ाई नहीं थी। उसका लक्ष्य राजसत्ता को विदेशी हाथों से छीनकर देशी हाथों में सौंपने तक सीमित नहीं था। यह दो सभ्यताओं का संघर्ष था। सही अर्थ में यह एक सांस्कृतिक युद्ध था।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना के साथ ही पश्चिम में उपजी भोगवादी औद्योगिक सभ्यता का भी प्रवेश हुआ। उन्नीसवीं सदी की भारतीय मनीषा ने इसे अपनी सभ्यता के लिए चुनौती के रूप में स्वीकार किया था। स्वाधीनता संग्राम के दार्शनिकों एवं अग्रणियों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि भारत इस भोगवादी औद्योगिक सभ्यता की बाढ़ में प्रवाहपतित के समान कदापि नहीं बहेगा। विवेकानंद, अरविंद, तिलक, गांधी आदि मनीषियों ने बार-बार दोहराया था कि नियति द्वारा निर्धारित अपने मानवीय जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही भारत स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है।

स्वातंत्र्य प्राप्ति का लक्ष्य इतना स्पष्ट होने के बावजूद देश के तत्कालीन नेताओं ने राजसत्ता पाने के उतावलेपन के वशीभूत होकर अपनी मातृभूमि का विभाजन स्वीकार किया। इस तथ्य को समझे बिना हम अपने देश का भविष्य उज्ज्वल नहीं बना सकते।

1947 में देश का विभाजन मानकर हमें खंडित भारत का स्वराज्य मिला। उसके पूर्व अपना समाज सदियों तक पराधीन रहा। उस लंबे काल में कुछ ही लोग स्वातंत्र्य के लिए जूझते रहे। शेष समाज अपनी आजीविका में ही लगा रहा। अतः हर एक परिवार तथा व्यक्ति अपनी-अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए विवश था। मानव जीवन की इस आवश्यकता का विदेशी शासकों ने अपनी हुकूमत कायम रखने के लिए पूरा लाभ उठाया। इस काम में अंग्रेज सबसे अधिक चालाक सिद्ध हुए।

जनसाधारण के मन-मस्तिष्क से सामाजिक भावना लुप्त हुई। सामूहिकता का लोप हुआ। आबादियों के जीवन से परस्पर-पूरकता मिट गई। गुलामी का यह लंबा काल किसी एक ही आक्रमणकारी का नहीं रहा। अंग्रेजों के अतिरिक्त जो शासक बनकर आए, उनमें से अधिकांश वापस अपने देश नहीं गए। यहां ही स्थायी रूप से बस गए। उनमें से इसलाम को माननेवालों को

छोड़कर शेष लोग अपने समाज के साथ एक रूप बन गए। अंग्रेजों की हुकूमत अपने देश में न आती तो इसलाम को माननेवाले भी अपने मजहब को कायम रखते हुए शेष समाज के साथ एक रूप हो जाते, किंतु अंग्रेजों ने जानबूझ कर इसलाम को माननेवालों को अलग-थलग रखने का षड्यंत्र रचा। 'बांटो और राज करो' यह उनकी नीति रही है। भारत का विभाजन अंग्रेजों की इसी कूटनीति का नतीजा है।

समाज तोड़कर राजनीति

बचपन में हम लोग पढ़ा करते थे, तब एक कहावत बहुत लोकप्रिय थी। 'हिस्टरी, ज्योग्राफी बड़ी बेवफा, रात को रटो तो सवेरे सफा'। ऐसी स्थिति में इतिहास के अध्यापक समझाते थे कि परेशान मत होना। किसी भी राजा के काल का वर्णन परीक्षा में प्रश्न के रूप में आया तो सीधे लिख डालो—इस राजा ने पेड़ लगाए, सड़क बनवाई, तालाब खुदवाए और धर्मशालाएं बनवाई। कारण, कोई भी राजा हो, ये काम तो होते ही रहे हैं, अतः पिछले पचपन साल में सत्ता संघर्ष के बावजूद जो कुछ काम हुए हैं, उनका यही आधार रहा है।

सत्ता पाने के लिए कालबाह्य रूढ़ियों का फायदा उठाने में राजनीतिक दलों को संकोच नहीं होता है। इस कारण, व्यावहारिक धरातल पर जातिप्रथा का कोई उपयोग नहीं रहा, किंतु चुनाव जीतने के लिए पुरानी पड़ी घिसी-पिटी बेकार जातियों की, भाषाओं की, इलाकों की, मजहबों की भावनाएं भड़काकर वोट बैंक बनाने का काम जोर-शोर से चल रहा है। सेक्युलरवाद के नारे के पीछे भी विशिष्ट लोगों के वोट पाने की ही तरकीब काम में लाई जाती है। सरकारें जो बन रही हैं, वे राष्ट्रीय या सामाजिक भावना के आधार पर नहीं, अपितु अपने-अपने सत्ता संघर्ष में सहायक विघटनकारी तरीकों से ही बन रही हैं। नए-नए प्रदेश उन इलाकों के उत्थान की दृष्टि से नहीं, अपितु सत्ता पाने की अभिलाषा की पूर्ति के लिए ही बनाए जा रहे हैं।

जिस भारत ने मानव मात्र को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रेरणा प्रदान की, उसी भारत के निवासी आज अपने ही स्वार्थ में लिप्त हैं। इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति क्या होगी? पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति तथा संतान तक ही लोगों की दुनिया सिमट गई है।

समाज सामाजिक जीवन से वंचित हो गया है। अनेक परिवारों को मिलाकर आबादियां अस्तित्व में आती हैं। अकेला परिवार अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। उसे समूह में रहना अनिवार्य है, किंतु अब आबादियों में परस्पर-पूरकता का जीवन नदारद हुआ है। पड़ोस में रहनेवाले के भी सुख-दुःख की किसी को परवाह नहीं होती। मानव मानवीयता-विहीन हो गया है।

सैकड़ों साल हमें परतंत्रता में रहना पड़ा। उपर्युक्त दुष्परिणाम इसका है या काल के प्रबल प्रवाह में हम स्वयं ही अपने जीवन-दर्शन को भूल गए हैं? कारण जो भी हो, प्रचलित अवस्था से मुक्ति पाए बिना न देश और समाज का भविष्य उज्ज्वल होगा, न देश का शासन और प्रशासन जनकल्याणकारी बनेगा, न ही आम लोगों के पारिवारिक तथा व्यक्तिगत जीवन में सुख-शांति संभव होगी। दिन-प्रतिदिन अराजकता बढ़ेगी।

विराट् पुरुष

व्यक्ति और समाज एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असंभव है। व्यक्ति और समाज का जनक परिवार ही है। वही व्यक्ति और समाज का पालन-पोषण करता है। यदि परिवारों में शैशवावस्था से ही अर्थात् मां के दूध के साथ सामाजिक दायित्वबोध का वातावरण न मिला तो विकसित होनेवाले बालक या बालिका में सामाजिक जीवन दृष्टि कैसे पनप पाएगी?

समाज के घटकों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। साथ ही समाज में सामाजिक जीवन का अभाव भी बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप, स्वराज्य पाकर पचपन साल का काल बीत जाने के बावजूद देश से न बेकारी घटी है, न गरीबी मिटी है। भ्रष्टाचार दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ रहा है। सामान्य जन त्राहि माम्-त्राहि माम् कर रहा है।

स्वतंत्र भारत में भी शिक्षा की स्थिति कितनी दयनीय है? यह इसी से स्पष्ट है कि संपन्न लोगों या नेताओं के बच्चों की पढ़ाई विशेष रूप से होती है तथा सामान्य नागरिकों के बच्चों की पढ़ाई का हाल अत्यंत दयनीय है। स्वतंत्र भारत दिन-प्रतिदिन कर्ज से लद रहा है, किंतु सत्ता में बैठे लोगों की सुरक्षा पर करोड़ों रुपए खर्च हो रहे हैं। आरक्षण का रोग इतना अधिक फैल रहा है कि हर एक जाति के लोग आरक्षण के लिए आंदोलन छेड़ रहे हैं तथा राजनेताओं का उन्हें समर्थन प्राप्त हो रहा है। इसका अर्थ है कि देश में सुरक्षा की इतनी दयनीय स्थिति है कि हर एक आरक्षण चाह रहा है।

जब से बालिग मताधिकार का अधिकार मिला है, तब से उम्मीदवारों के चुनाव में होनेवाले खर्च की कोई सीमा ही नहीं रही है। यह धन आता कहां से है? यह सारा धन नंबर दो का है, यह सब जानते हैं। काले धन पर बनी सरकारें भ्रष्टाचार को बढ़ावा नहीं देंगी तो उन्हें सत्ता में आने का अवसर ही नहीं मिलेगा। जब राजसत्ता के लिए देश का विभाजन करने में नेताओं को संकोच नहीं रहा तो सत्ता के लिए हर अपराध जायज बनता जा रहा है। इस परिस्थिति को बदले बिना देश का भविष्य बन नहीं सकता।

□

लोकतांत्रिक जीवन तृणमूल से सुदृढ़ बने

लोकतंत्र के नाम पर हर एक आबादी चुनाव का अखाड़ा बनी है। दलीय उन्माद ने सभी आबादियों के निवासियों को एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा किया है। काल-बाह्य रूढ़ियों को दफनाने के बजाय उन्हें भड़काकर समाज को अधिकाधिक विघटित कर आपसी संघर्ष बढ़ाया जा रहा है। पक्षपात चरम सीमा पर पहुंचा है। आबादियों में सबके विश्वास प्राप्त व्यक्तियों को पाना असंभव हुआ है। यह न सुख शांति का मार्ग है, न प्रगति का। यह जनजीवन के विनाश का कारण बन रहा है।

सदियों बाद भारत स्वतंत्र हुआ है। हमने शासन का माध्यम संसदीय लोकतंत्र को अपनाया है। सत्ता प्राप्ति की लालच में उसका दुरुपयोग किया जा रहा है। हम लोग राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र अवश्य हुए हैं किंतु मानसिक दृष्टि से अभी स्वतंत्र होना शेष है। अपनाए गए संसदीय लोकतंत्र की कमियों ने देश के शासन को अस्थिरता के चक्कर में फंसा दिया है। अब देश के नेतागण सुझाव दे रहे हैं कि हमें अमरीका या यूरोप में प्रचलित किसी अन्य लोकतांत्रिक पद्धति को अपनाना चाहिए। अभी भी वे सोच नहीं पा रहे हैं कि विदेश में प्रचलित लोकतांत्रिक पद्धति अपना कर अपना काम नहीं चलेगा। वैसे भी विदेशों में प्रचलित लोकतांत्रिक पद्धतियां दोषरहित नहीं हैं। हमें अपने देश का शासन सफल एवं विकासोन्मुख बनाना है तो यह ध्यान में रखना होगा कि अपना समाज पुरातन है। उसकी सामाजिक जीवन की अपनी परंपराएं हैं। उसी में गुलामी के लंबे काल में अनेक विकृतियां आई हैं। अतः अपने सामाजिक जीवन की मूल प्रकृति को समझकर हमें अपनी ही समयानुकूल लोकतांत्रिक प्रणाली विकसित करनी होगी। उसमें अन्यत्र की उपयोगी बातें जोड़ी जा सकती हैं। किंतु इस दिशा में प्रयास करने की मानसिकता अभी भी दिखाई नहीं देती। लोकसभा एवं विधानसभाओं में जो दृश्य उपस्थित हो रहे हैं, उनसे भी स्पष्ट होता है कि अपने देश की वर्तमान संसदीय पद्धति अपने देश में लोकतंत्र के विकास के लिए अनुकूल नहीं है। ऐसी हालत में जिला पंचायतों, नगर पंचायतों तथा ग्राम पंचायतों से अच्छी कार्यशैली की अपेक्षा कैसे की जा सकेगी?

विराट् पुरुष

अपने पुरातनतम राष्ट्र जीवन में ऐसे निराशाजनक प्रसंग कई बार उपस्थित हुए थे। उनमें से ही राष्ट्र जीवन फिर से खड़ा हुआ और चमका था। अतः हमें उज्ज्वल भविष्य के लिए विश्वास के साथ काम करना होगा।

दीनदयाल शोध संस्थान देश के लोकतांत्रिक जीवन को तृणमूल (ग्रासरूट) से खड़ा करने की आवश्यकता अनुभव करता है। ऊपर से नीचे की ओर का मार्ग विफल सिद्ध हुआ है। उसमें सुधार की संभावना भी दिखाई नहीं देती।

ग्राम पंचायतों के चुनाव शासकों की मरजी पर होते हैं। उन्हें देश के संविधान में स्थान ही नहीं दिया गया। अतः जब कभी ग्राम पंचायतों के चुनाव चित्रकूट क्षेत्र में होंगे, तब दीनदयाल शोध संस्थान लोकतंत्र की अपनी परिकल्पना कार्यान्वित करने का प्रयास करेगा।

समाज स्वास्थ्य शिल्पी ग्राम पंचायतों के चुनावों के समय पंचायत के सदस्यों तथा पदाधिकारियों के चुनाव आम सहमति से कराने का प्रयास करेंगे। जिन ग्राम पंचायतों में आम सहमति से चुनाव संभव होंगे, उनका काम सुचारु रूप से एवं विकासोन्मुख रीति से चलाने में सक्रिय योगदान दिया जाएगा। सर्वसम्मति चुनाव के कारण हुए विकास को देखकर अगली बार अन्य ग्राम पंचायतें भी इसी दिशा में कदम बढ़ाने के लिए उत्सुक होंगी। इसे दीर्घकालीन उपाय कहा जाएगा। किंतु इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि शीघ्र फलदायी उपायों ने राष्ट्र जीवन के पचास साल बरबाद किए हैं।

जिन ग्राम पंचायतों में आम राय से पंचायत के सदस्य एवं पदाधिकारी चुने जाएंगे, उनकी कार्यशैली एवं सफलता देश की विधानसभा एवं लोकसभा के लिए भी अनुकरणीय सिद्ध होगी। सैकड़ों वर्ष गुलामी में जकड़े नवस्वतंत्र देश की नवरचना तृणमूल से ही करनी होगी। भारत के गत पचास साल का अनुभव हमें यही संकेत दे रहा है।

□

तिब्बत की आजादी विश्व शांति के लिए आवश्यक

आज स्व. महात्मा गांधीजी की जयंती है। हम सब भी जानते हैं कि गांधीजी ने जन्म पाया तो कोई विशेष उत्सव नहीं मनाया गया। संसार में किसी ने यह नहीं जाना था कि ये बालक संसार के महत्त्व का सिद्ध होगा। केवल उनके माता-पिता ने यह अनुभव किया था कि दिव्य पुत्र ने उनके संसार में जन्म लिया है। ऐसे एक साधारण व्यक्ति ने अपने कर्तृत्व से सारे भारत को 150 साल से ज्यादा गुलाम बनाए रखनेवाले अंग्रेजों को देश से उखाड़ फेंका। यह तथ्य तो दुनिया जानती है और इसलिए भारत और तिब्बत के एक-एक नागरिक को अपने मन में यह विश्वास होना चाहिए कि संपूर्ण विश्व में जिनके साम्राज्य में सूर्य डूबा नहीं करता था, ऐसे महान् साम्राज्य को भी जब गांधीजी ने भारत से उखाड़ फेंका तो फिर जिस तिब्बत ने मोक्ष को उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया, वो तो किसी के अधीन नहीं रहेगा। जिस प्रकार अंग्रेज परास्त होकर भाग गए, वैसे ही तिब्बत चीन को भगाएगा, ऐसा विश्वास रखना चाहिए।

यह आंदोलन तिब्बतियों के लिए नहीं है, न ही चीन और तिब्बत के बीच है, यह आंदोलन चीन को तिब्बत से उखाड़ फेंकने मात्र के लिए भी नहीं है। यह आंदोलन मानव मात्र के अन्याय के विरुद्ध, न्याय और अहिंसा की प्रस्थापना के लिए है। जो मानव मात्र के लिए आवश्यक है। यह आंदोलन वास्तव में भारत के प्रत्येक परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। क्योंकि ये आंदोलन मानव के अस्तित्व को चकनाचूर करनेवालों के खिलाफ है। मुद्दा केवल चीन के द्वारा तिब्बत के लोगों को विध्वंस करने का नहीं है। चीन ने अपने तिब्बत के आक्रमण द्वारा यह घोषणा की है कि वह मानवता को उखाड़ फेंकने के लिए और 'जिसकी लाठी उसी की भेंस' के जंगली वातावरण को दुनिया में फैलाने के लिए है। अतः यह आंदोलन इस घातक प्रवृत्ति के खिलाफ है। किसी व्यक्ति, किसी समाज, किसी शासन के खिलाफ यह आंदोलन नहीं है। इसलिए इस आंदोलन की सफलता निर्विवाद है।

इस आंदोलन को सफल करने के लिए देश के विभिन्न स्थलों से जो युवक-युवतियां, पौढ़, वृद्ध लोग आए हैं, उनका मैं अभिनंदन करता हूँ और साथ में एक शुभारंभ की घोषणा करता

नवस्वदेश, नानाजी विशेषांक-2010 में संकलित लेख। मूल स्रोत एवं तिथि अज्ञात।

विराट् पुरुष

हूं। तिब्बत में हुए विनाश को ठीक करने के लिए ऐसे शुभारंभ के लिए पहले भी इस देश के कई महापुरुषों ने प्रयत्न किए। उसी प्रकार मैं भी कर रहा हूं। इस यात्रा में, नवयुवक, प्रौढ़, बच्चे, सभी सम्मिलित होंगे। यह सफलता का अभियान है। कलिंगपोंग की विशेषता से हमें अनुभव हुआ है। यहां के सभी नागरिकों के मन में आंदोलन की भावना है। फिर से तिब्बत की राजधानी को पुनः प्रतिष्ठित करवाना यह चीन के लिए कल्याणकारक है। जिसको चीन के शासकों को समझना चाहिए।

भारत से अंग्रेज गए तो उनका कल्याण हुआ है। तिब्बत से चीन हटेगा तो चीन के नागरिकों का भी कल्याण होगा। हम इसलिए चीन के शासकों से अनुरोध कर रहे हैं कि देखो, कमजोरी मत करो। शक्ति के साथ सामने आओ खुले दिल से। बिना किसी शर्त के विचार-विनिमय करो और फिर से ससम्मान तिब्बत को राजधानी के रूप में विराजमान करने का मंगलमय कार्य करो। यही नागरिक संदेश है। तुम लोगों के यहां जगत् जागरण की भावना मैं देख रहा हूं तो इसके द्वारा ही मानव-मात्र का कल्याण हो। कष्ट सहते हुए अब सक्रियता की आवश्यकता है। राष्ट्रहित के लिए सबसे प्रार्थना है, इस आंदोलन में सहभागी बनें और मानवता के पुजारी के नाते अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन को सार्थक बनाएं।



विशाल बांध हर दृष्टि से पुनरावलोकन हो

4 अक्टूबर, 2001 को स्वयं टिहरी बांध देखने गया था। बांध की एवं विस्थापितों की अवस्था समझने का मैंने प्रयास किया। मैं तकनीकी ज्ञान से अनभिज्ञ हूँ। इस कारण मैं तकनीकी विषय में निर्णायक सुझाव व्यक्त नहीं कर सकता। विस्थापित होनेवाले लोग चाह रहे हैं कि इस बांध की ऊंचाई 260 मीटर के स्थान पर केवल 180 मीटर की ही रखी जाए। इस सुझाव पर इस विषय के विशेषज्ञ सहानुभूति के साथ विस्थापित होनेवालों से विचार-विमर्श करें। इससे विस्थापितों की नाराजगी घट सकती है।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी विद्या में आश्चर्यजनक प्रगति हो रही है। बांधों द्वारा विशाल जलाशय निर्माण करने के स्थान पर पर्वतीय क्षेत्र में नदियों के प्रबल प्रवाहों से बिजली निर्माण करना संभव हो सकता है। इस दिशा में तकनीकी का विकास क्यों नहीं किया जा सकता? हिमालय में साधारण झरनों से स्थानीय लकड़ी की टरबाइन का उपयोग कर जगह-जगह आटे की चक्कियां चलाने की परंपरा बहुत पुरानी है। उस लघु तकनीकी से प्रेरणा पाकर बड़े पैमाने पर बिना विशाल जलाशय निर्माण किए, बिजली उत्पादन क्यों नहीं किया जा सकता? इससे लागत में बहुत बचत हो सकती है। बिजली सस्ती दर पर लोगों को उपलब्ध कराई जा सकती है। विस्थापितों के पुनर्वास की समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती। प्राकृतिक संपदा के विनाश से भी मुक्ति मिल सकती है।

देश में एक से एक धुरंधर इंजीनियर हैं। उन्हें इस काम में आज तक क्यों नहीं लगाया गया? प्रवाहित जल शुद्ध बना रहता है। यह भारत की अनुभव सिद्ध पुरातनतम जानकारी है, अतः नदियों के प्रवाह में अवरोध निर्माण कर बड़े-बड़े जलाशयों का निर्माण प्रदूषण के साथ अनेक समस्याओं का कारण बन रहा है। क्या इसका उपाय करना लोकतांत्रिक सरकारों का काम नहीं है?

बड़ी-बड़ी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए नदियों का प्राकृतिक प्रवाह रोका जाता है। यह कार्य जनहित के लिए करने की बात कही जाती है, किंतु इस प्रक्रिया के परिणाम क्या हो रहे हैं? नदियों के प्राकृतिक प्रवाहों का वेग बहुत घट गया है। नदियों की गहराई बहुत कम

विराट् पुरुष

हुई है। वर्षा काल में आनेवाली बाढ़ों का वेगवान जल बहुत बड़े भूभाग में तेजी से फैलता है। हजारों लोग प्रति वर्ष डूबते हैं। जन हानि होती है। घर गिरते हैं। हजारों एकड़ कृषि भूमि में रेत जम जाती है। खेत खेती लायक नहीं रहते। सरकार को राहत कार्य में प्रति वर्ष करोड़ों रुपए का व्यय करने पड़ते हैं। नदी-योजनाओं द्वारा होनेवाले लाभ और हानि का हिसाब किया गया तो नतीजा आंखें खोल सकता है।

हमने लोकतांत्रिक संविधान बड़े उत्साह से बनाया व अपनाया है, किंतु शासन तथा प्रशासन की प्रणाली लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास नहीं हुआ है। विकास की योजनाएं बनाने तथा उनके क्रियान्वयन में उन लोगों के लिए कोई स्थान ही नहीं होता, जिनके विकास के लिए योजनाएं बनती हैं। आम लोगों का विधान सभाओं या लोकसभा में प्रतिनिधित्व करनेवाले अधिकांश लोग धनबल, बाहुबल व जातिबल या मजहब के बल पर जन प्रतिनिधि बन रहे हैं। ऐसे जन प्रतिनिधियों को न आम लोगों के विकास की चिंता रहती है, न परवाह। वे अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए सत्ता का उपयोग करने के ही फेर में लगे रहते हैं।

जिन इलाकों या लोगों के लिए विकास योजनाएं बनाई जाती हैं, उन लोगों की उन योजनाओं के बनाने व कार्यान्वयन में सहभागिता की कार्यशैली विकसित करना आवश्यक है। यही लोकतांत्रिक विकास व शासन का उपयुक्त रूप है। हमने बालिग मताधिकार देनेवाला संविधान स्वीकार अवश्य किया है, किंतु शासन व प्रशासन का रूप वही बना हुआ है, जो साम्राज्यवादियों का था। चुनाव कराना मात्र लोकतंत्र नहीं है। वह लोकतंत्र के प्रवेश द्वार तक पहुंचने का साधन मात्र है। लोकतंत्र का व्यवहार तो चुनाव के बाद ही प्रारंभ होता है। भारत का शासक बनने की आकांक्षा रखनेवाले नेताओं को एकत्रित होकर उपर्युक्त गंभीर परिस्थिति में से मार्ग ढूंढने का प्रयास करना चाहिए।

□

पीढ़ी-दर-पीढ़ी के प्रेरणास्रोत

जयप्रकाश नारायण

स्वातंत्र्य संग्राम के काल में अपने देश में एक से एक महान् देशभक्तों की लड़ी लगी रही। उनमें जे.पी. (जयप्रकाश नारायण) एक अनोखे देशभक्त हुए हैं। उनका देशभक्तिपूर्ण जीवन आनेवाली पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिए हर काल में प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। फलस्वरूप, उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को युवा पीढ़ी के सम्मुख रखना राष्ट्रोन्नति के लिए आवश्यक है।

मैं जे.पी. के निकट संपर्क में उनकी 'समग्र-क्रांति' के आंदोलन में आया। तदुपरांत मेरा अधिकांश समय उनके साथ ही बीता है। इस कारण अनौपचारिक रूप से विभिन्न विषयों पर उनसे चर्चा करने का मुझे सुअवसर मिला। परिणामस्वरूप, मैं उनके व्यक्तित्व से अधिकाधिक प्रभावित होता गया। जे.पी. वक्तृत्व एवं कर्तृत्व के दुर्लभ धनी थे। उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं था। वे अपने साथ काम करनेवालों में से किसी को भी तुच्छ नहीं समझते थे। हर एक के प्रति संवेदनशील व्यवहार करना उनका सहज स्वभाव था। इस कारण, उनसे खुलकर बातचीत करने में संकोच नहीं होता था।

'समग्र-क्रांति' को लेकर समाचार-पत्रों में विभिन्न प्रतिक्रियाएं प्रकाशित होती रहीं। आचार्य कृपलानीजी ने भी 'समग्र-क्रांति' शब्द पर कटाक्ष किया था। एक दिन मैंने जे.पी. से पूछा कि क्या 'समग्र-क्रांति' का अर्थ है कि हमें अपनी सभी परंपरागत बातों को छोड़ना पड़ेगा? क्या 'सर्वभूत हितैरतः' जैसे लक्ष्य भी हमसे बिछुड़ जाएंगे? उस पर जे.पी. मुसकराए। उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें अपनी छोटी सी पुस्तक देता हूँ। मेरी यह विचार-यात्रा तुम पढ़ो और उसके बाद इस विषय पर मुझसे चर्चा करो।" मैंने उस पुस्तिका को पूरा पढ़ा और अनुभव किया कि जे.पी. के विचारों का प्रवास नास्तिकता से प्रारंभ होकर आस्तिकता तक पहुंचकर पूर्ण हुआ है। कठमुल्लापन उन्हें कभी सहन नहीं हुआ। उससे मुझे अनुभव हुआ कि जे.पी. केवल कल्पना जगत् में ही विचरण नहीं करते रहे, अपितु व्यावहारिक धरातल पर उनके पैर जमे रहते थे।

जे.पी. स्वातंत्र्य संग्राम के एक सिपाही मात्र नहीं थे, अपितु संवेदनशील तथा जन्मजात नेता थे। सन् 1942 में देश के नेताओं को अंग्रेज सरकार ने जेलों में टूस दिया था। जे.पी. हजारीबाग जेल में बंद किए गए थे। फलस्वरूप, आजादी के लिए दीवाना बना विशाल युवा-वर्ग देश भर में

विराट् पुरुष

नेतृत्वहीन हो गया था। इससे जेल में बंद जे.पी. बेचैन हो उठे, किंतु विवशता के वशीभूत होना जे.पी. का स्वभाव नहीं था। वे ही एक ऐसे नेता रहे, जिन्होंने आधी रात में जेल की ऊंची दीवार फांदकर देश के जुझारू युवा-वर्ग का भूमिगत होकर मार्गदर्शन किया। फांसी से अधिक कष्ट एवं यातनाएं सहकर स्वातंत्र्य संग्राम को उन्होंने आगे बढ़ाया।

देशभक्ति सर्वोपरि

दूसरे विश्व युद्ध ने अंग्रेजों के साम्राज्य को जर्जर बना डाला था। उसका विसर्जन करने के अतिरिक्त उनके पास अन्य उपाय बचा ही नहीं था। भारत में देश की अंतरिम सरकार बनाए जाने का वातावरण बना था। उन्हीं दिनों जे.पी. गोरखपुर आए थे। वे 'ऑल इंडिया रेलवे मेन्स फेडरेशन' के अध्यक्ष थे। उत्तर-पूर्वी रेलवे का गोरखपुर हेड क्वार्टर था। वहां रेलवे के कर्मचारियों का सम्मेलन आयोजित था। उसी के लिए जे.पी. का वहां आना हुआ था। उन दिनों में गोरखपुर में ही रहा करता था। मेरे मित्र श्री ईश्वर शरण गोरखपुर रेलवे यूनियन के सेक्रेटरी थे। जे.पी. के रहने की व्यवस्था उन्हीं के जिम्मे थी। उन्होंने मुझे भी अपने साथ जोड़ लिया था।

जे.पी. के साथ रेलवे यूनियन के कुछ पदाधिकारी चाय-पान के लिए एकत्रित थे। अनौपचारिक चर्चा चल रही थी। गोरखपुर रेलवे यूनियन के उपाध्यक्ष श्री जौहरी साहब ने जे.पी. से कहा, "कुछ ही दिनों में आप मिनिस्टर बनकर आएंगे, तब आपका स्वागत करने में हम लोगों को बड़ी खुशी होगी।" जे.पी. ने उस पर तुरंत कहा, "आजादी का सिपाही सत्ता के बंधन में क्यों बंधेगा?" उसी समय स्पष्ट हुआ था कि जे.पी. किस धातु के बने हैं। उनकी मूल प्रकृति क्या है। देशभक्ति के बदले में कुछ भी पाने की चाह को वे सर्वथा त्याज्य मानते थे।

जे.पी. का विवाह शिक्षा पूर्ण होने के पूर्व ही हुआ था। वे विवाह के बाद पढ़ने के लिए अमरीका गए थे। प्रभावतीजी (जे.पी. की पत्नी) भी कुछ दिनों बाद गांधीजी के आश्रम पहुंचकर वहां ही रहने लगीं। देशभक्ति की लगन प्रभावतीजी के मन में भी कम प्रबल नहीं थी। आश्रम के वातावरण में वे पूरी तरह रम गई थीं। उन्होंने विवाहबद्ध होने के बावजूद आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का संकल्प ले लिया। पढ़ाई पूर्ण कर जे.पी. स्वदेश लौट आए। युवावस्था से उनका व्यक्तित्व चमक रहा था। जे.पी. की मानसिकता असाधारण थी। उन्होंने अपनी पत्नी के व्रत का सम्मान किया। उनके संकल्प का स्वयं वरण किया। प्रभावतीजी के प्रति उनकी संवेदनशीलता और असीम आत्मीयता जे.पी. की मानवीय वृत्ति का अनोखा उदाहरण है। जे.पी. अन्य लोगों की भावनाओं का कितना आदर करते थे, यह उनके उपर्युक्त आचरण से प्रकट होता है। उनका यह स्वभाव वस्तुतः लोकतंत्र का मर्म है। जब तक नेतृत्व करनेवालों में यह भावना जाग्रत नहीं रहती, तब तक लोकतंत्र की गाड़ी आगे नहीं बढ़ती।

जे.पी. के मन में प्रभावतीजी के प्रति केवल आत्मीयता ही नहीं थी, अपितु कमाल का आदरभाव भी था। जे.पी. के किसी गुण की कभी चर्चा होती थी तो जे.पी. सहज में कहते थे कि यह तो प्रभाव का प्रभाव है।

दुर्भाग्यवश, प्रभावतीजी कैंसर रोग की शिकार बनीं। जे.पी. अत्यधिक व्यथित हुए। अथक प्रयासों

के बावजूद प्रभावतीजी को बचाना संभव नहीं हुआ। भावुक जे.पी. पर यह मर्मघात था। फलस्वरूप, कवि दिनकर एवं रामनाथ गोयनका रात-दिन उनके साथ लगे रहे। जे.पी. के जीवन पर यह सबसे बड़ा संकट था। उससे जे.पी. को बचा पानेवाली शक्ति केवल देशभक्ति की ही थी।

तानाशाही के खिलाफ मुहिम

उन दिनों देश की स्थिति और अधिक बिगड़ गई थी। तानाशाही के बादल मंडराने लगे थे। भ्रष्टाचार के भस्मासुर ने विकराल रूप धारण किया था। उसे शासन और प्रशासन से बल मिल रहा था। इन सब बातों ने जे.पी. को और अधिक व्यथित किया। उनके लिए देश की यह भयावह दशा असह्य होने लगी। उनकी देशभक्ति की भावना उन्हें बेचैन करने लगी। किंतु उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। किडनियां जवाब दे रही थीं। प्रोस्ट्रेट का कष्ट असहनीय होने लगा था। शल्य क्रिया करने में डॉक्टर डर रहे थे। अंततोगत्वा मद्रास के निकट वेल्लोर में ऑपरेशन करने का निर्णय लिया गया। हम लोग मद्रास में रामनाथजी के यहां ठहरे। जे.पी. को अस्पताल में भर्ती किया। सभी लोग चिंताग्रस्त थे।

ऑपरेशन के एक दिन पहले कवि दिनकरजी ने तिरुपति में बालाजी के दर्शन के लिए जाने का मन बनाया। गोयनकाजी ने उनके लिए कार की व्यवस्था की। तिरुपति जाकर उन्होंने बालाजी के चरणों में अश्रुपूर्ण नयनों से प्रार्थना की कि उनकी (दिनकरजी की) आयु जे.पी. को दी जाए। तिरुपति के दर्शन कर दिनकरजी मद्रास लौट आए। कार से उतरते-उतरते उनके हृदय में पीड़ा होने लगी। उन्हें तुरंत अस्पताल पहुंचाया गया। वहां उन्हें मृत घोषित कर दिया गया। इसे संयोग माना जाए या अत्यधिक श्रद्धा का प्रतिफल? क्या इस वातावरण में उपर्युक्त मित्रता की उपलब्धि किसी के भाग्य में है? इस प्रकार के परस्पर स्नेह का आजकल अभाव क्यों हो रहा है? क्या ऐसी मित्रता के बिना हम अपने देश का भविष्य बना पाएंगे?

प्रभुकृपा से जे.पी. का ऑपरेशन सफल हुआ। वे ठीक होकर अस्पताल से लौट आए। डॉक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम की सलाह दी थी, किंतु इस जन्मजात देशभक्त के लिए विश्राम कहां संभव था। सतापिपासा ने देश की दुर्दशा कर रखी थी। दुराचार और भ्रष्टाचार का नग्न तांडव हो रहा था। तानाशाही का दानव लोकतंत्र का गला घोट रहा था। अंग्रेजी साम्राज्य से लोहा लेकर उनकी हुकूमत उखाड़ फेंकनेवाले जे.पी. को ही स्वतंत्र भारत में हावी होती हुई तानाशाही को मिटाने के लिए स्वयं आगे आना पड़ा। उन्होंने ही तानाशाही के खूंखार जबड़े से लोकतंत्र को मुक्त कराया। अति वृद्धावस्था की अशक्तता, स्वास्थ्य की जर्जरता, प्रभावतीजी के वियोग का कारण दुःख आदि असहनीय पीड़ाओं के शिकार होते हुए भी जे.पी. की देशभक्ति तनिक भी डिंग नहीं पाई। इस अवस्था में भी वे अपनी कर्तव्य पूर्ति में लगे रहे। ऐसे अद्वितीय एवं वंदनीय देशभक्त के 'समग्र-क्रांति' के सपने को पूर्ण करने का दायित्व अब नई पीढ़ी को निभाना होगा। इस दायित्व की अनुभूति के साथ जे.पी. की पावन स्मृति में शत-शत प्रणाम।



जनता के युवा तुर्क चंद्रशेखर

मा ननीय चंद्रशेखरजी ने अपने जीवन की तीन-चौथाई यात्रा पूरी की है। उनके अमृत महोत्सव का मंगल प्रसंग आ पहुंचा है। इस सुखद सुअवसर पर मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करते हुए विशेष खुशी अनुभव कर रहा हूं।

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में दूर-दराज के छोटे से गांव में, सामान्य परिवार में उनका जन्म हुआ था। इसके बावजूद वे विशाल भारत के असामान्य नेता के रूप में उभरे हैं। उन्हें यह गौरवशाली स्थान न किसी की कृपा से मिला है, न देशव्यापी संगठन के सहारे से, न ही धनाढ्य या विख्यात पिता से अपितु बुद्धिमत्ता, तर्कशुद्ध प्रभावी अभिव्यक्ति तथा पराक्रम की पराकाष्ठा के फलस्वरूप उन्होंने स्वयं अर्जित किया है।

आधुनिक भारत के वे ही एक ऐसे अनोखे नेता हैं, जो सत्ता से अधिक जनशक्ति को महत्व देते हैं। उसे ही वे लोकतंत्र की आधारशिला मानते हैं। इसी कारण, यातायात के बहुविधा गतिशील साधन उपलब्ध होते हुए भी उन्होंने पूरे भारत की पैदल यात्रा करना जरूरी माना। विभिन्न अंचलों में सभी स्तरों के लोगों की अवस्था का प्रत्यक्ष अवलोकन किया। उनकी समस्याओं तथा भावनाओं को समझा। क्या इसके बिना पीड़ितों के प्रति अंतःकरण में संवेदना जाग्रत् हो सकती है? संवेदना के बिना क्या उपेक्षितों की समस्याओं का निराकरण कर पानेवाले नेतृत्व के गुण प्राप्त हो सकते हैं?

मैं सन् 1951 से 1978 तक राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रहा हूं। बिना पक्ष परिवर्तन के विभिन्न दलों के नेताओं से अपनेपन के संबंध बना पाया था। डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे उच्चकोटि के समाजवादी नेता से भी मित्रता संभव हुई थी, किंतु श्री चंद्रशेखरजी को मैं समाचार-पत्रों के माध्यम से ही जानता था। वे 'युवा-तुर्क' कहलाते थे। अपने विचारों के वे बड़े पक्के माने जाते थे। सिद्धांत के प्रश्न पर बड़े-से-बड़े नेता से भी दबना उनके स्वभाव में नहीं था। परिचय न होते हुए भी उनके प्रति मेरी यही धारणा बनी थी।

सन् 1974 में लोकनायक जे.पी. की समग्र क्रांति का देशव्यापी वायुमंडल गरम हो रहा था। जनता का समर्थन तेजी से बढ़ रहा था। विशेषतः बिहार में समग्र क्रांति की लहर दुर्दम्य बनी थी। पटना में जे.पी. ने मार्च निकालने की घोषणा की थी। सरकारी अवरोधों के बावजूद मार्च में

शहरी जनता के अतिरिक्त भी हजारों लोग गांवों से पहुंचे थे। यह देख सरकार हड़बड़ा गई थी। पुलिस द्वारा हो रही गैस के गोलों की बौछार मार्च में शामिल जवानों के लिए खेल बन गई थी। जगह-जगह लोगों पर बेतहाशा लाठीचार्ज किया जा रहा था। शासन की इस बर्बरता को जे.पी. बरदाश्त नहीं कर पाए। वे जीप से उतरकर लाठीचार्ज के बीच घुस पड़े। मैं साथ में था। जे.पी. पुलिस की लाठियों की चपेट में आने ही वाले थे कि मैंने आगे बढ़कर जे.पी. को बचाना चाहा। उसमें मेरी पीठ पर लाठियां पड़ीं व हाथ में चोट आई। जे.पी. को छोड़, हम सैकड़ों लोगों को घेरकर बंदी बनाया गया था। गहरी चोटें खाए लोगों को कैदी के रूप में अस्पताल में रखा था। श्री चंद्रशेखर अस्पताल में हम लोगों को देखने आए थे। वहीं उनसे मेरी प्रथम भेंट हुई थी।

श्री चंद्रशेखर कांग्रेस के वरिष्ठ नेता थे, किंतु उनकी सहानुभूति जे.पी. के साथ थी। वे नहीं चाहते थे कि जे.पी. और इंदिराजी के बीच कोई टकराव हो, किंतु चंद्रशेखर की सलाह इंदिरा जी ने नहीं मानी। 12 जून, 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को संसद् की सदस्यता से अपदस्थ किया था। इंदिराजी हाईकोर्ट के फैसले को मानना नहीं चाहती थीं। अतः उन्हें आपातकाल लगाने के अलावा अन्य उपाय नहीं बचा था। जे.पी. की समग्र क्रांति के आंदोलन के साथ सहानुभूति रखनेवाली राजनीतिक पार्टियों तथा सामाजिक संगठनों के हजारों लोगों को इंदिराजी ने जेल में दूंस दिया।

आपातकाल के समय हर एक पुलिस का सिपाही व अन्य छोटे-बड़े अधिकारी अपने-अपने क्षेत्र में तानाशाह बनकर लोगों को आतंकित कर रहे थे। अन्याय की सुनवाई के सभी द्वार बंद कर दिए गए थे। भ्रष्टाचार ने सीमा पार की थी। आम जनता के लिए जीना असह्य हो रहा था। यह दानवीय व्यवहार 25 जून, 1975 की रात्रि से 1977 तक चला। श्री चंद्रशेखरजी कांग्रेस के नेता होने के बावजूद जयप्रकाशजी के प्रति संवेदनशील होने के कारण जेल में दूंस गए थे। पता नहीं कैसे, सन् 1977 के प्रारंभ में आपातकाल हटाकर श्रीमती इंदिरा गांधी ने संसद् के लिए चुनाव की घोषणा की। उसमें श्रीमती इंदिराजी की कांग्रेस को बुरी तरह परास्त होना पड़ा। सन् 1977 के मार्च में श्री मोरारजी भाई देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की केंद्र में सरकार बनी, यद्यपि तब तक वैधानिक रूप में जनता पार्टी का गठन नहीं हुआ था।

युवा तुर्क

प्रारंभ में छोटे से मंत्रिमंडल का गठन किया गया था। उसमें श्री चंद्रशेखर का भी नाम था, किंतु आपातकाल के पूर्व कांग्रेस के मंत्रिमंडल में श्री मोहन धारिया मंत्री रहे थे। उन्होंने जनता पार्टी के मंत्रिमंडल में भी स्थान पाने के लिए स्वयं को आगे किया। चंद्रशेखर ने अपनी जगह श्री मोहन धारिया को मंत्री बनाकर स्थिति को सामान्य बनाया। इससे स्पष्ट हुआ कि चंद्रशेखर सत्ता से अधिक अपने साथियों की आकांक्षाओं को प्राथमिकता देने की उदात्तरता बरतते थे। यही होती है नेतृत्व की कसौटी, जिस पर केवल चंद्रशेखर ही खरे उतर पाए।

इंदिरा कांग्रेस और कम्युनिस्टों के अतिरिक्त अधिकांश राजनीतिक दलों ने जनता पार्टी में विलयन

विराट् पुरुष

के प्रस्ताव पारित किए थे। दिनांक 1 मई, 1977 को दिल्ली में जनता पार्टी का विशाल अधिवेशन हुआ। उसमें श्री चंद्रशेखर सर्वसम्मति से शासनारूढ़ पार्टी के अध्यक्ष चुने गए। तब से श्री चंद्रशेखर का और मेरा संबंध बढ़ा और स्थायी बना। मैं जनसंघी था और चंद्रशेखर समाजवादी विचार के कांग्रेसी थे। इसके बावजूद चंद्रशेखर का लोकतांत्रिक स्वभाव होने के कारण किसी भी प्रसंग पर हम दोनों में मतभेद की एक भी घटना उपस्थित नहीं हुई। हम दोनों अभिन्नता अनुभव करते रहे।

श्री मोरारजी भाई के प्रधानमंत्रित्व का एक साल पूर्ण हुआ था। प्रधानमंत्री बनने की तीव्र अभिलाषा रखनेवाले चौधरी चरण सिंह की इस कमजोरी को पहचान कर श्रीमती इंदिरा गांधी ने राजनारायण के द्वारा चौधरीजी को घेरना प्रारंभ किया था। इसकी भनक मुझे लगी। दिनांक 4 अप्रैल, 1978 को मैंने प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई को सुझाया कि आप प्रधानमंत्री पद किसी युवा नेता को सौंपकर स्वयं सत्ता से हटकर सामाजिक कार्यों में जुटने की कृपा करें। मेरी इस बात से श्री मोरारजी भाई भड़क उठे। उन्होंने वस्तुस्थिति को समझना नहीं चाहा। मैंने उनसे कहा कि आप असलियत को नहीं समझेंगे तो आपको ही पछताना पड़ेगा, किंतु मेरी इस बात को मोरारजी भाई ने नहीं माना। इस कारण मुझे घर आकर उन्हें लिखित रूप में आगाह करना पड़ा। इससे जनता पार्टी के मंत्रिमंडल में जो जवान मंत्री थे, वे भी मेरे पत्र के कारण मुझ पर आग बबूला हुए। संकट की भीषणता अनुभव कर दिनांक 20 अप्रैल, 1978 को मैंने पत्रकार सम्मेलन में 60 वर्ष से अधिक आयु के सभी मंत्रियों से अनुरोध किया कि वे सत्ता से हटकर समाज कार्य में अपना शेष जीवन बिताएं। इसी उपाय से जनता पार्टी की सरकार बच सकती थी, किंतु मेरे सुझाव को नहीं माना गया। उस पत्रकार सम्मेलन में चंद्रशेखर स्वयं उपस्थित रहे। वे ही अकेले नेता थे, जिन्हें इंदिरा गांधी के षड्यंत्र का अंदाज था। अन्य कोई भी इस तथ्य को समझने के लिए तैयार नहीं था। इसका नतीजा देश को भुगतना पड़ रहा है।

मंत्री के रूप में हमारे शासकों के व्यवहार में राजा-महाराजाओं के चाल-चलन की ही झलक दिखाई दे रही है। शासक बनते ही वे स्वयं को समाज से अलग ही मानने लगते हैं। वे अपने पुराने साथियों से भी सहज रूप में मिलना पसंद नहीं करते। वे अपने ही स्थान पर जमे रहकर उन्हें मिलने आनेवालों को अपने ही दरबार में बुलाते हैं, वस्तुतः यह लोकतांत्रिक व्यवहार नहीं है। यह तो विदेशी शासक अंग्रेजों के प्रोटोकॉल की नकल मात्र है। लोकतांत्रिक जीवन की परिचायक नहीं है। कम-से-कम चंद्रशेखर ने प्रधानमंत्री बनने के बाद भी स्वयं को किसी भी रूप में बदला नहीं था। अपने पुराने सामान्य रूप को ही बरकरार रखा था। उन्होंने अपना पुराने किस्म का धोती, कुरता, बंडी और चप्पल को ही कायम रखा था।

वे अपने पुराने मित्रों के यहां पूर्ववत् जाने में हिचकिचाहट अनुभव नहीं करते थे, अपितु स्वयं मित्रों के यहां भोजन के लिए जाकर अनौपचारिक रूप से परिवार में हिल-मिल जाते थे। उन्होंने स्वयं को लोकतांत्रिक जीवन में ढाल लिया था। शासकों का यही स्वभाव देश में लोकतंत्र को व्यावहारिक धरातल पर साकार कर सकता है। इसके बिना प्रशासकों के जीवन में लोकतांत्रिक व्यवहार आना असंभव है।

□

संवेदनशील मनीषी

जयप्रकाश नारायण

जे. पी. का जीवन खोए हुए अवसरों का प्रतीक है—ये उद्गार उनके विरोधियों के नहीं, उनके प्रशंसकों के हैं। वे चाहते रहे कि जे.पी. सत्ताधीश बनें और अपनी प्रतिभा और क्षमता से देश को महान् बनाएं। प्रशंसकों की अभिलाषा गलत नहीं कही जा सकती, किंतु जे.पी. का व्यक्तित्व ही भिन्न था। संभवतः उनके जीवन-काल में उनके निकट के लोग भी उन्हें पूर्ण रूप से समझ नहीं सके। जे.पी. को वे अपनी नजर से देखते थे, जबकि जे.पी. की जीवन-दृष्टि अनोखी थी।

जे.पी. एक अद्भुत संवेदनशील मनीषी थे। चिंतन के उच्चतम शिखर पर पहुंचकर भी उनकी भाव-निर्लिप्तता कायम रहती थी। करुणा की वे साकार मूर्ति थे। दूसरे की पीड़ा से वे इतने मर्माहत हो जाते थे कि अपनी पीड़ा का उन्हें आभास ही नहीं हो पाता था। उनकी इस संवेदनशीलता में ही उनकी महानता छिपी हुई थी। उनकी विचारधारा में उनका यह व्यक्तित्व पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित हुआ है।

संपूर्ण संसार के ज्ञाता, विभिन्न जीवन-दर्शनों के मर्मज्ञ, अनंत अनुभवों के धनी, सर्वांगीण चिंतन के अधिकारी और विस्मयकारी प्रतिभाओं के पुंज होते हुए भी वे वैचारिक हठवाद से मुक्त रहे। यही है जे.पी. का अद्वितीय व्यक्तित्व। हर एक मत और व्यक्ति के साथ अभिन्न बनकर उनके मर्म को जानना जे.पी. का अपना स्वभाव था, किंतु यह सब अपने लिए नहीं, अपनी ख्याति के लिए नहीं, अपने प्रभाव-विस्तार के लिए नहीं, अपने उत्कर्ष के लिए नहीं, यह सबकुछ था, मानवता के प्रति समर्पण के लिए। वे तो अपने लिए एक क्षण-मात्र भी नहीं जीए। संसार का बड़े-से-बड़ा आकर्षण जे.पी. को मोह न सका। वे कभी कहीं रुके नहीं। सतत विकासमान, सतत गतिमान, अपनी अंतिम सांस तक वे महानता की सीढ़ियां चढ़ते ही रहे।

उनकी संवेदनशीलता उनकी वैचारिक उड़ानों में कभी बाधक नहीं बनी। कठोरतम निर्णयों में कभी आड़े नहीं आई। उसने उन्हें एक साथ मनीषी, द्रष्टा और कर्मवीर बनाया—त्रिगुणात्मक शक्ति का साकार रूप। युवावस्था से लेकर जीवन के अंतिम क्षण तक वे देश के युवकों के साथी, सखा और नेता बने रहे। यह अद्वितीय क्षमता जे.पी. की ही विशेषता थी।

विराट् पुरुष

आत्मा की शुद्धता

वे जो भी काम हाथ में लेते, अपनी बुद्धि, तर्कशक्ति और प्रामाणिक अनुभूति के आधार पर लेते। लोगों द्वारा होनेवाली आलोचना से वे अप्रभावित रहते थे। उन्होंने एक बार कहा था, “मेरे पिछले जीवन का रास्ता बाहर के लोगों को भले ही टेढ़ा-मेढ़ा और पेचीदा लगे, वे उसे अनिश्चित और अंधकार में टटोलता समझें, किंतु जब मैं अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूं तो मुझे उसमें विकास की एक अटूट रेखा दिखाई देती है। उसमें राह खोजने का प्रयत्न था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता, किंतु वह अंधकारमय हरगिज नहीं था। उसमें एक ऐसी पूर्ण ज्योति थी, जो शुरू से ही न कभी धुंधली पड़ी, न बदली और जो बराबर एक पेचीदा दिखनेवाले रास्ते पर भी मेरा मार्गदर्शन करती रही। कम-से-कम मैं तो इस टेढ़े-मेढ़े रास्ते के लिए दुखी नहीं हूं, क्योंकि जिस रास्ते पर चलने का मैंने अब निश्चय किया है, उसके संबंध में मैं निश्चित हूं।” उनके इस कथन से यह धारणा बनाना गलत होगा कि जे.पी. अपनी गलतियों की अनुभूति नहीं करते थे या उन्हें मानने में हिचकते थे। वे स्पष्ट वक्ता थे। जिनके प्रति वे श्रद्धा रखते थे, उस श्रद्धा में तनिक भी कमी आने दिए बिना वे उनकी गलतियों का भी उल्लेख करने में संकोच नहीं करते थे। अपने कारण किसी को भ्रम में या अंधकार में रखना उनके लिए असह्य होता था। शुद्धात्मा की यह प्रामाणिकता जे.पी. में कूट-कूटकर भरी थी। पाकिस्तान बनने के विरोध में जे.पी. ने जब महात्माजी से सत्याग्रह करने की बात की, तब गांधीजी ने जे.पी. से कहा था—“जयप्रकाश! मेरे पास दो मोहरे थे, नेहरू और पटेल, दोनों हाथ से चले गए। अब विरोध मत करो। जो हो गया, सो हो गया। हम दोनों को मिलाएंगे।” उस समय जे.पी. शांत जरूर हुए, किंतु मन-ही-मन बैचैन रहे। बाद में जे.पी. ने खुलकर कहा, “एक गलती गांधीजी ने की पाकिस्तान का निर्माण का विरोध न करके, दूसरी गलती मैंने की गांधीजी की बात मानकर।” कितना सरल, निष्पाप एवं संवेदनशील हृदय था जे.पी. का! अहंकार से पूर्णतः मुक्त, अपनी गलती को सार्वजनिक रूप से माननेवाला!

वे समाज के अंतरंग में पैठकर उसके मानस की अनुभूति किया करते थे। किसी से भी एकरूप होने की एक अनोखी क्षमता उनमें थी। चारों ओर के पतन से मर्माहत होकर जे.पी. ने कहा था, “व्यक्ति आज यह प्रश्न करता है कि वह अच्छा क्यों बने?” अब तो कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, नैतिकता नहीं है, इस जीवन के बाद कोई जीवन नहीं है और जन्म-मरण का कोई चक्कर नहीं है। वह द्रव्य का एक समुच्चय मात्र है, जो अनायास बन गया है और शीघ्र ही द्रव्य के असीम महासागर में बिखर जानेवाला है। वह अपने चारों ओर बुराई को, भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, झूठ, फरेब, क्रूरता, सत्तालोलुपता, हिंसा आदि को सफल होते देखता है। वह सहज ही प्रश्न करता है कि वह सदाचारी क्यों बने? आज हमारे जो सामाजिक रूप हैं और मनुष्य के कार्यकलाप पर जिस भौतिकतावादी दर्शन का प्रभुत्व है, वे उत्तर देते हैं कि उसे सदाचारी बनने की आवश्यकता नहीं। अब वह जितना ही चतुर है, जितना ही प्रतिभा-संपन्न है, उतने ही साहस के साथ इस नई नैतिकता को अपने आचरण में उतारता है और इस निनैतिकता के चक्कर में

मानव-जाति के सारे सपने और अरमान भी मुड़कर और सिकुड़कर रह जाते हैं।''

अपनी इस अनुभूति के कारण जे.पी. ने कहा, ''अनेक वर्षों तक मैंने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की देवी के मंदिर में उपासना की है। यह दर्शन मुझे अन्य किसी भी दर्शन की अपेक्षा बौद्धिक रूप से अधिक तुष्टिकर प्रतीत होता था। परंतु जहां दर्शन की मेरी मुख्य जिज्ञासा अतृप्त रही है, वहां मेरे सामने यह प्रत्यक्ष हो गया है कि भौतिकवाद, चाहे वह किसी प्रकार का हो, मनुष्य को सच्चे अर्थ में मानवीय बनने के साधनों से ही वंचित कर देता है। भौतिकवादी सभ्यता से मनुष्य को अच्छा बनने के लिए कोई युक्ति-संगत प्रेरणा नहीं मिलती। संभव है, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के राज्य में भय मनुष्य को अनुगत होने की प्रेरणा देता हो और दल भगवान् का स्थान लेता हो, लेकिन जब भगवान् ही बुरा हो जाता है, तो फिर बुरा होना ही एक सार्वजनिक नियम बन जाता है।''

जे.पी. के उपर्युक्त चिंतन का अर्थ यह नहीं कि वे इस परिस्थिति के कारण निराश थे। उलटे वे इस दयनीय दशा को एक चुनौती मानते थे। उन्होंने तरुण शांति सैनिकों से बात करते हुए कहा था—''लोकतंत्र की जड़ें निरंतर खोखली होती जा रही हैं। जो सन् 1952 के चुनाव में नैतिकता थी, वह आज नहीं रही, और जो शेष बची है, वह भविष्य में रहनेवाली नहीं है। जब नैतिकता ही नहीं रहेगी, तो लोकतंत्र की स्थिति क्या होगी? यह हम सबके लिए चुनौती है।''

नवनिर्माण की सूक्ष्म दृष्टि

जे.पी. भारत के नवनिर्माण के लिए केवल शासन पर निर्भर रहना गलत मानते थे। उनका कथन है—''मैं नहीं जानता कि इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण है, जहां केवल राज्य के प्रयासों से किसी देश का विकास हो गया हो। यह बात लोकतंत्री और अधिनायकतंत्री, दोनों प्रकार के राज्यों के विषय में सही है। किसी राष्ट्र का निर्माण-कार्य जनता की व्यापक भागीदारी के बिना असंभव है। मैं इस बात पर अधिक-से-अधिक बल देना चाहूंगा, क्योंकि मेरी दृष्टि में इस देश की वर्तमान परिस्थिति का यह गूढ़ तत्त्व है। देश के नेता यह स्वप्न देखना छोड़ दें कि केवल राजनीतिक सत्ता से ही काम हो जाएगा।''

जे.पी. ने अपने देश की बिगड़ती हुई चिंताजनक स्थिति का मर्म जानकर ही स्पष्ट शब्दों में मार्गदर्शन किया था। उन्होंने कहा था, ''आधुनिक उद्योगवाद और उसके द्वारा पैदा की गई आर्थिकवाद की भावनाओं ने, जो प्रत्येक मानवीय मूल्य को लाभ और हानि से और तथाकथित आर्थिक-प्रगति के पैमानों से तौलती है, मानवीय समाज को विघटित कर डाला है और मानव को अपने ही मानव बंधुओं के बीच पराया बना दिया है। आज की सभ्यता की समस्या सामाजिक एकीकरण की समस्या है, समस्या मनुष्य को मनुष्य के संपर्क में रखने की है। संक्षेप में, समस्या मानव-समुदाय का फिर से निर्माण करने की है।''

जे.पी. की नवनिर्माण-संबंधी सूक्ष्म दृष्टि से गांवों की मानवी-मूल्य-विहीन बनी अवस्था छिपी नहीं रह सकी। इस संबंध में जे.पी. ने कहा था, ''आज अपने गांव बालू के कणों के समान बिखरे हुए व्यक्तियों के आकृतिहीन समूहमात्र हैं। ऐसे गांवों के आधार पर सामुदायिक समाज की रचना

विराट् पुरुष

नहीं की जा सकती और न पंचायती राज की कोई योजना सफल हो सकती है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने ग्रामीण समाज में बिखराव के तत्त्व दाखिल किए। फिर स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जो संविधान बना, उसने भी गांधीजी की पंचायती लोकतंत्र की कल्पना को टुकड़ाकर व्यक्तिवादी लोकतंत्र की स्थापना की, जिससे गांव में व्यक्तिनिष्ठ राजनीति का प्रवेश हुआ और गांव की रही-सही एकता भी समाप्त हो गई। सत्ता के लिए प्रतियोगिता पर आधारित उस राजनीति ने गांव में बिखराव की प्रक्रिया और तेज कर दी है।'' जे.पी. हर बात पर कितना मूलभूत चिंतन करते थे। स्वार्थ से निर्लिप्त व्यक्ति द्वारा ही यह संभव था।

आजीवन कठोरतम तपस्या के कारण जे.पी. का शरीर क्षीण हो गया था, किंतु राष्ट्र के भविष्य के प्रति उनकी आकांक्षाएं अंतिम सांस तक आसमान छूती रहीं। 4 नवंबर, 1974 के दिन युवकों को लजानेवाली उनकी फुरती, साहस और बलिदान की तैयारी देखकर महान्-से-महान्, किंतु हृदयवान व्यक्ति उनके सम्मुख नतमस्तक हुए बिना न रहता। यह उनकी शारीरिक क्षमता का द्योतक नहीं, आंतरिक दृढ़ता और संवेदनशील हृदय के कोमलतम तत्त्व की पराकाष्ठा थी।

उन्होंने अपनी पकी हुई आयु में समग्र क्रांति का सूत्रपात किया था। कितना अडिग आत्मविश्वास और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की कितनी तीव्र आकांक्षा थी उनके हृदय में। दुर्भाग्य है कि उनका शरीर उनकी असीम आकांक्षाओं का साथ नहीं दे सका, किंतु उनके सपनों में समाई हुई उनकी देदीप्यमान प्रेरणा आज भी धधक रही है। यही प्रेरणा उनके सपनों को साकार करने के लिए भारत की तरुणायु में आकांक्षा, साहस और शक्ति का संचार करेगी। भारत का और भारत के माध्यम से संपूर्ण मानवता का भविष्य उज्ज्वल है। उसी उज्ज्वलता में जे.पी. की संवेदनशील प्रतिमा सदा-सर्वदा आलोकित होती रहेगी।



स्वभाव से ही योद्धा रामनाथ गोयनका

रामनाथजी का देश के स्वातंत्र्य संग्राम में अनोखा योगदान रहा है। वे बिहार के मुजफ्फरपुर में पढ़ते थे। उन्हीं दिनों गांधीजी ने बिहार में ही चंपारन जिले में किसानों के शोषण के खिलाफ अंग्रेजों से संघर्ष छेड़ा था। युवा-वर्ग मचल उठा था। उसी समय युवा रामनाथ गांधीजी के संपर्क में आए थे। तब से वे गांधीजी से आजीवन जुड़े रहे।

रामनाथजी मारवाड़ी परिवार से थे। व्यापार उनका पुश्तैनी व्यवसाय था। उसी सिलसिले में उन्हें कलकत्ते तथा मद्रास जाना पड़ा। एक ओर व्यवसाय और दूसरी ओर स्वातंत्र्य संग्राम। दोनों में मेल संभव नहीं था। ऐसी स्थिति में गांधीजी से आया संपर्क अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ। इसी मनःस्थिति में वे गांधीजी से मार्गदर्शन पाने पहुंचे। व्यक्ति की क्षमता को पहचानना गांधीजी की विशेषता थी। उस विशेषता का स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए उपयोग करने में गांधीजी सिद्धहस्त थे।

स्वातंत्र्य संग्राम की सफलता के लिए प्रचारतंत्र की नितांत आवश्यकता थी। अखबार चलाने के लिए व्यावसायिक क्षमता चाहिए थी। उसके लिए गांधीजी ने रामनाथजी का उपयोग करना उपयुक्त माना। रामनाथजी को मद्रास से अखबार चलाने की सलाह दी। रामनाथजी ने गांधीजी की सलाह के अनुसार अखबार चलाने के लिए कदम बढ़ाया। 'इंडियन एक्सप्रेस' का देशव्यापी जाल रामनाथजी की अद्वितीय क्षमता एवं राष्ट्रभक्ति का ज्वलंत उदाहरण है।

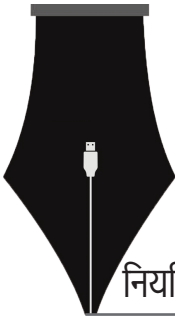
मूलतः व्यापारी होते हुए भी रामनाथजी स्वभाव से योद्धा थे। स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए अंग्रेजी साम्राज्य से लोहा लेकर ही वे शांत नहीं हुए। आजादी पाने के बाद भी उनकी लड़ाकू वृत्ति जीवन के अंत तक बनी रही। कांग्रेसी होते हुए भी कांग्रेसी सरकार द्वारा होनेवाले अनुचित कार्यों का विरोध करने में उन्होंने कोई कसर बाकी नहीं रखी।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की तानाशाही वृत्ति का डटकर मुकाबला करने में उन्हें संकोच नहीं हुआ। जयप्रकाश नारायणजी की 'समग्र क्रांति' के आंदोलन के रामनाथजी ही आधारस्तंभ रहे हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। इमरजेंसी के काल में इंडियन एक्सप्रेस को दबाने के लिए श्रीमती इंदिराजी ने अनेक प्रयास किए। इमरजेंसी के प्रारंभिक काल में भूमिगत होकर में काम करता रहा। उस अवस्था में रामनाथजी से मिले बिना काम नहीं चलता था। इंडियन एक्सप्रेस

विराट् पुरुष

को तरह-तरह की धमकियां मिल रही थीं। एक रात हम लोग साथ में थे। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी इंडियन एक्सप्रेस के खिलाफ हाथ धोकर पड़ी थीं। अतः रामनाथजी ने मुझसे कहा, “इंदिरा गांधी समझती है कि वह इंडियन एक्सप्रेस को खरीद लेगी, किंतु वह नहीं जानती कि रामनाथ बिकाऊ चीज नहीं है। यदि वह मेरे अखबार को बंद करेगी, उससे रामनाथ की लड़ाई ठप्प नहीं होगी। मेरी असली ताकत मेरे गमछे और लोटे में है, जिसे लेकर हम राजस्थान से चले थे। हम उन्हें सबक सिखाए बिना नहीं रुकेंगे।” ऐसे थे दुर्दम्य वृत्ति के शिरोमणि श्री रामनाथजी।

□



नियमित पत्र-लेखन के माध्यम से नानाजी राष्ट्रीय

हित के विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किया

करते थे। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री से लेकर सहयोगियों व

रिश्तेदारों से भी इन विषयों पर चर्चा किया करते थे।

उन्होंने कुछ ज्वलंत विषयों पर युवाओं के नाम पत्रों

की एक शृंखला भी लिखी।



युवाओं का आह्वान

1

24 दिसंबर, 2004

लोकतंत्र के खिलाफ है फिजूलखर्ची

मैं यह पत्र गहरे दुःख और क्षोभ के साथ, परंतु पूरी जिम्मेदारी के भाव से लिख रहा हूँ। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हमारा संघर्ष काफी यातनापूर्ण था और बहुत लंबे काल तक चलता रहा। इसके लिए देश के लाखों नौजवानों ने अपने प्राणों की आहुति दी। परंतु इस सबके बावजूद इसकी परिणति खंडित भारत के रूप में हुई।

हमने संसदीय लोकतंत्र को चुना और मानव अधिकार के मूल तत्वों को अपने संविधान में शामिल किया। इसी संविधान ने केंद्र तथा राज्यों में विधायिका की व्यवस्था दी, जो देश भर में एक संवेदनशील तथा उत्तरदायी शासन सुनिश्चित कर सके। दुर्भाग्य से इसकी परिणति एक ऐसे राजनीतिक नेतृत्व के रूप में हुई, जिसने लोकतंत्र की मूल भावना से ही धोखा किया। यह राजशाही के संस्थानों की याद दिलाता है। स्थिति शायद उससे भी बुरी बनी है।

हमारे एक तिहाई से ज्यादा देशवासी अत्यंत गरीबी से जूझ रहे हैं। वे अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित हैं। लगभग आठ करोड़ युवक-युवतियां बेरोजगारी की यातनाएं सहने के लिए मजबूर हैं। वहीं दूसरी ओर हमारे राजनीतिक नेतागण, विशेषकर हमारे चुने हुए प्रतिनिधि अधिकाधिक धनवान बनते जा रहे हैं। इसने निश्चित रूप से हमारे लोकतंत्र की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाया है।

इस सबके ऊपर विडंबना यह है कि ऋण के बोझ तले दबती सरकार जहां बजट घाटे को नियंत्रित करने में नाकाम है, वहीं जनता के तथाकथित प्रतिनिधि बेशर्मी से अपनी सुख-सुविधाओं का बोझ देश पर लादते चले जा रहे हैं। चूंकि विभिन्न राज्य सरकारों की राजस्व व गैर-राजस्व आय विभिन्न उत्तरदायित्वों की पूर्ति में चुक जाती है, इसलिए उन्हें विकास कार्यों के लिए आंतरिक

युवाओं के नाम विभिन्न ज्वलंत समस्याओं को लेकर लिखी एक पत्र-शृंखला। कुछ मूल पत्रों में तिथि नहीं दी गई है। बारह पत्रों की यह शृंखला 2004-2005 में लिखी गई।

व बाहरी कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। इस तरह सरकारों के लिए विकास की प्राथमिकता दूसरे पायदान पर आती है। वर्ष 2003-04 में केंद्र सरकार का आंतरिक व विदेशी कर्ज क्रमशः 11,34,020.35 करोड़ रुपए था। वहीं इस राशि पर केवल ब्याज के रूप में वर्ष 2003-04 में 1,24,554.92 करोड़ रुपए की मोटी रकम खर्च की गई थी।

संसद् सदस्यों के वेतन और भत्तों के लिए 1954 में लागू किए गए कानून में 2002 तक 25 संशोधन किए जा चुके हैं। जाहिर है, इनका एकमात्र उद्देश्य तथा भावना सांसदों के वेतन, भत्तों, पेंशन व अन्य सुविधाओं में बढ़ोतरी करना ही था। कभी भी इस कानून की समीक्षा का प्रयास नहीं किया गया। न ही सरकारी कर्मचारियों के वेतन निर्धारण के लिए वेतन आयोगों द्वारा हर दस वर्ष में अपनाई जानेवाली नीति की तरह मध्यम व दीर्घकालिक दृष्टि से निर्णय किया गया। इसकी निरंतरता में तदर्थवाद की झलक ही मिलती है, जिसका सीधा लाभ इन संसद् सदस्यों को ही मिलता है। कोई भी परिवर्तन (बेशक, उत्तरोत्तर वृद्धि) करने के लिए केवल संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त समिति की अनुशंसा की जरूरत होती है। बिना किसी अपवाद के इस मामले में संसद् की अनुमति महज औपचारिकता होती है। आम आदमी की समस्याओं और जनकल्याण से जुड़े मामलों पर विभिन्न राजनीतिक मतों में भले ही कभी आम राय न बनती हो, परंतु यह एक ऐसा विषय है, जिस पर सभी राजनीतिक दल, चाहे वामपंथी हों, दक्षिणपंथी या मध्यमार्गी, सभी एक सुर में बोलते नजर आते हैं। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि पिछले 50 सालों में सांसदों के वेतन और भत्ते 90 गुना बढ़ गए हैं। यह लोकतंत्र का मजाक नहीं तो और क्या है?

यह न केवल आर्थिक व्यवहार के नियमों का उल्लंघन है, बल्कि प्रशासनिक विधान की भी अवहेलना है। किसी भी ऐसी आवश्यकता, जिसके लिए सरकारी खजाने से धन जाता हो, उसकी जांच व अनुमति का काम ऐसी इकाई को करना चाहिए, जिस पर इन निर्णयों का सीधा प्रभाव न पड़ता हो। नियम बदलने के अधिकारों से लैस कुछ सौ लोग इनका इस्तेमाल अपने निजी लाभ के लिए भी करने में नहीं हिचकते। दुनिया में कहीं भी संसदीय लोकतंत्र के अपहरण की इतनी धिनौनी मिसाल शायद ही कहीं मिलेगी।

आंकड़ों पर नजर डालें तो मालूम पड़ता है कि सरकार हर महीने सांसदों को वेतन व भत्तों के रूप में लगभग 36,000 रुपए देती है, जिसमें से केवल 12,000 रुपए का वेतन ही आयकर के दायरे में आता है। इसे भी सरकारी बचत योजनाओं में थोड़े से निवेश से बचाया जा सकता है। सांसद दिल्ली में रहने के लिए नाममात्र का लाइसेंस शुल्क अदा करते हैं, जो इन आवासों की बाजार किराया दरों का नगण्य अंश है। यदि मुफ्त आवास, फोन कॉल्स (एसटीडी कॉल सहित) मोबाइल फोन, मुफ्त बिजली, पानी चिकित्सा सुविधा, निशुल्क उच्चतम श्रेणी की हवाई तथा रेल यात्रा का आर्थिक मूल्य जोड़ें तो एक सांसद पर मासिक खर्च कम-से-कम तीन लाख रुपए होता है। मोटे तौर पर यह एक भारतीय की सालाना प्रतिव्यक्ति आय का 150 गुना है। इसके अलावा कई अन्य प्रत्यक्ष खर्च भी हैं।

राज्य सरकारें भी चूंकि केंद्र का ही प्रतिबिंब हैं, अतः यदि राज्यों द्वारा वर्तमान व भूतपूर्व

विराट् पुरुष

विधायकों के वेतन, भत्ते, पेंशन व अन्य सुविधाओं पर खर्च की जानेवाली राशि जोड़ें तो भारतीय लोकतंत्र की कीमत का आंकड़ा बहुत ही विराट् होगा, सुरसा के मुंह से भी बड़ा, क्योंकि इस समय विभिन्न राज्यों की विधानसभाओं तथा विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या 5,269 है। इस तरह की फिजूलखर्ची लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धांत के खिलाफ है, जो आम आदमी के लिए शांति, सुख-समृद्धि और न्याय सुनिश्चित करनेवाली प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने की बात करता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राजशाही उस समय अलोकप्रियता तथा घृणा का केंद्र बन गई थी, जब राजा द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग प्रजा के लिए असहनीय हो गया था। शासकों ने राजस्व आय का बड़ा भाग अपने ऐशो-आराम और भोग-विलास के लिए खर्च करना शुरू कर दिया था, जबकि लोगों की परेशानियां वहीं-की-वहीं थीं।

साठ के दशक में भारत सरकार ने प्रिवि पर्स इस तर्क के साथ खत्म कर दिया था कि इसे जारी रखना औचित्यहीन है, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में राजा-राजकुमार लोक कल्याण के किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते हैं। लेकिन आज सांसदों, पूर्व सांसदों, पूर्व प्रधानमंत्रियों व पूर्व राष्ट्रपतियों और पूर्व उपराष्ट्रपतियों को मिलनेवाले भत्ते व सुख-सुविधाएं भी इसी प्रिवि पर्स का ही नया अवतार नजर आते हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि पिछले वर्ष मंत्रिपरिषद् व प्रधानमंत्री पर खर्च की गई धनराशि 122.52 करोड़ रुपए थी, जो लोकसभा के कुल खर्च का आधा और राज्यसभा पर खर्च होनेवाली राशि से 30.39 करोड़ रुपए ज्यादा था। इस पर यदि एसपीजी (विशेष सुरक्षा समूह) पर होनेवाले 79.46 करोड़ रुपए के खर्च को भी जोड़ा जाए तो यह लोकतंत्र हमारी मंत्रिपरिषद्, संसद और राष्ट्रपति कार्यालय को बेहद खर्चीले लोक संस्थान बना देता है।

मैं राष्ट्रपति को इस विवाद में नहीं घसीटना चाहता। अतः उनके व्यक्तिगत वेतन व सुविधाओं पर कुछ नहीं कहूंगा, परंतु मैं इस बात पर दुःखद आश्चर्य जरूर प्रकट करूंगा कि जब देश में एक ओर करोड़ों लोग बिना किसी छत के जीने को मजबूर हैं, ऐसे में राजप्रासादनुमा राष्ट्रपति भवन के रखरखाव पर इतना खर्च किया जाए। मैं इसमें कोई औचित्य नहीं देखता कि रहने के लिए एक व्यक्ति या परिवार को 350 कमरोंवाला घर दिया जाए।

उपरोक्त तथ्यों व स्थितियों ने लोगों के मन में संसद के प्रति सम्मान को कम करने में अपना योगदान दिया है। इस संदर्भ में इस बात पर भी जोर देना होगा कि संसद की व्यवस्था का निर्धारण करनेवाले संविधान के अनुच्छेद 79 से 123, जिसमें संसद का विशेषाधिकार भी शामिल है, ऐसी किसी व्यवस्था की बात नहीं करते जो इसके नियंत्रण व संतुलन को भीतर की बजाय बाहर से संचालित कर सके। दुःख है कि अभी यह काम होना बाकी है, अतः इस दिशा में कदम उठाने की जरूरत है। इसमें सांसदों को केवल लाभ उठानेवाला बनाने से रोकने के लिए एक आम बहस शुरू करने की जरूरत है। साथ ही इनके वेतन व भत्तों के संबंध में पड़ताल करने की भी आवश्यकता है, ताकि लोगों की नजरों में संसद की खोई गरिमा व प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया जा सके।

मेरी यह स्पष्ट धारणा है कि यदि इस तरह की दखलंदाजी पर रोक नहीं लगाई गई तो यह लोकतंत्र की चूलें हिला देगा और जनता के मन में इसके प्रति आस्था कम करेगा। अतः आप सभी बुद्धिजीवियों एवं विचारनायकों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि इस विषय पर गहराई से सोचें और इस मुद्दे को उचित मंच पर उठाएं। ताकि इस संबंध में एक निश्चित परंपरा और सांस्थानिक तंत्र स्थापित किया जा सके, जो वैधानिक हो।

परंतु निश्चय ही मैं अपनी बात को निराशा के बिंदु पर खत्म नहीं करना चाहता। दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा तैयार व लागू किए गए सामुदायिक व व्यक्तिगत प्रयासों से स्वावलंबन पर आधारित ग्रामीण विकास के चित्रकूट मॉडल ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि समुचित सांस्थानिक सहयोग दिया जाए तो हमारा ग्रामीण समुदाय अपनी आंतरिक समस्याओं से निजात पा सकता है। इतना ही नहीं, यह निरंतर विकास के नए सोपान चढ़ सकता है और समकालीन बाजार तथा नवीन तकनीकों का सहारा लेकर स्वरोजगार के नए अवसरों को भी बढ़ावा दे सकता है।

अब समय आ गया है कि विकास की ऐसी नीति अपनाएं, जिसमें जनसक्रियता सुनिश्चित हो और लोकहित के कर्तव्यों को पूरा करने के लिए ऐसा शासन तंत्र हो, जिसमें जिम्मेदारी का भाव समाहित हो। इससे हमें अपने लोगों की आंतरिक क्षमताओं तथा कुछ नया करने की उनकी ललक को बढ़ाने में मदद मिलेगी। इसी के द्वारा सामाजिक समानता एवं न्याय आधारित विकास प्राप्त किया जा सकता है। इससे लोकतंत्र पुष्ट हो सकेगा, जिसके सहारे विकास के ऊंचे सोपान न्यूनतम खर्च में चढ़ना भी संभव होगा।

मेरा निवेदन है कि गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारियों व सामाजिक बुराइयों को जड़ से खत्म करने के लिए देश कौन सा विकास मॉडल अपनाए, इस बारे में एक सार्थक आम बहस शुरू की जानी चाहिए। दीनदयाल शोध संस्थान ने एक ऐसा मॉडल विकसित किया है, जिससे आम लोगों की पहल और उनके पुरुषार्थ को बढ़ावा दिया जाता है। इसी भावना और उत्साह को लेकर यह संभव हुआ है कि आज चित्रकूट के आस-पास के 80 गांवों ने—

- शून्य बेरोजगारी
- शून्य गरीबी
- शून्य कुपोषण
- शून्य मुकदमेबाजी
- और साफ-सुथरे व हरे-भरे गांव—के सपने को सच कर दिखाया है। वह भी निर्धारित समय सीमा से पूर्व।

उल्लेखनीय है कि दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा चलाई जानेवाली योजनाओं में गरीब परिवारों, चाहे वे किसी भी जाति या संप्रदाय से क्यों न हों, की सक्रिय भूमिका से उन्हें स्वावलंबी बनाने के प्रयासों में दुर्लभ पूरकता भी हासिल कर ली है। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन लक्ष्यों को संस्थान ने निर्धारित समय सीमा से पहले ही पूरा कर लिया। संस्थान अब इस दशक के अंत तक इन लक्ष्यों को 500 गांवों में प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। और यह चमत्कार किसी

विराट् पुरुष

सरकारी एजेंसी ने नहीं किया है। इलाके के लोगों ने दीनदयाल शोध संस्थान के निस्स्वार्थी व उत्साही कार्यकर्ताओं के निकट सहयोग से इस महती लक्ष्य को पूरा किया है। संस्थान तो केवल प्रेरणा देने का काम करता है। वास्तविक ऊर्जा व क्षमता तो लोगों के भीतर है।

पुरानी पीढ़ी के कई उद्योगपतियों को याद होगा कि सन् 1977 में सक्रिय राजनीति से संन्यास लेते समय मैंने उनसे सामुदायिक विकास के कार्यों में सक्रिय भागीदारी देने का आग्रह किया था। मेरा हमेशा से मानना रहा है कि देश के उद्योगपतियों में विलक्षण प्रबंधकीय प्रतिभा और क्षमताएं हैं। औद्योगिक घरानों के उत्तरोत्तर प्रगति में उनके ये गुण परिलक्षित भी होते हैं। लेकिन सामाजिक व सामुदायिक गतिविधियों में उनका इस्तेमाल नहीं हो रहा है। 1977 में मैंने फिक्की के तत्कालीन अध्यक्ष श्री हरिशंकर सिंघानिया से अपने संगठन के माध्यम से उद्योगपतियों को सामुदायिक विकास गतिविधियों के लिए प्रेरित और संगठित करने का निवेदन किया था। उसके परिणामस्वरूप कई उद्योगपति अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं व प्रयासों के साथ इसके लिए आगे भी आए थे, परंतु दुर्भाग्य से यह प्रयास एक सामूहिक गति नहीं प्राप्त कर पाया। मैं एक बार पुनः सभी औद्योगिक व व्यापारिक संगठनों का आह्वान करता हूँ कि वे आगे आएँ और विकास के इस महायज्ञ में योगदान देने के लिए अपने सदस्यों को प्रेरित करें।

2

16 मई, 2005

लोकतंत्र में व्यक्तिवाद की जगह नहीं

गत 24 दिसंबर, 2004 के पत्र में मैंने लिखा था, “संसद के दोनों सदनों के सांसद मिलकर स्वयं अपना वेतन, भत्ता तथा पेंशन बढ़ा लेते हैं। जनप्रतिनिधियों द्वारा अपनाया गया यह तरीका न नैतिक है न ही प्रशासनिक नियमों के अनुकूल है।” सांसदों की इस स्वार्थसिद्धि को आम लोगों की नजर में ला देने के बाद लोकसभा स्पीकर माननीय सोमनाथजी चटर्जी ने पहल कर सांसदों के वेतन तथा भत्ते बढ़ाने के लिए एक स्वतंत्र व्यवस्था खड़ी करने के लिए प्रयास प्रारंभ किए हैं। अतः मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

किंतु इतने भर से भारत के भविष्य-निर्माण का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा। अभी-अभी कुछ ही दिन पूर्व शहीद भगत सिंह का लोकसभा परिसर में स्मारक बनाने के लिए आयोजित सांसदों के सम्मेलन में महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने विधायकों की खरीद-फरोख्त पर चिंता व्यक्त की है। इस खरीद-फरोख्त के घृणित आचरण से पार्टियों के बड़े-से-बड़े नेता स्वयं को अलिप्त नहीं कह सकते। सत्ता पाने या सत्ता में बने रहने के लिए चाहे जो किया जा रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है।

सन् 2020 तक देश को स्वावलंबी बनाने के राष्ट्रपति के सपने को राजनीतिक दलों के उपर्युक्त आचरण से नुकसान पहुंचने की संभावना से राष्ट्रपति को चिंता होने लगी है। अन्यथा

वे विधायकों की खरीद-फरोख्त के विषय की खुले शब्दों में आलोचना नहीं करते।

स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने अपने गौरवपूर्ण अतीत से संबंध-विच्छेद कर लिया है। अपने देश के लिए, अपनी प्रतिभा से, अपने जीवन-मूल्यों पर आधारित संविधान निर्माण करने में अपनी स्वतंत्र बुद्धि काम में ही नहीं लाई गयी। सवा सौ साल से अधिक हमें गुलामी में जकड़े रखनेवाले अंग्रेजों द्वारा प्रचलित संसदीय लोकतंत्र की द्वंद्वात्मक शासन प्रणाली हमने अपने लिए स्वीकार की। परिणामस्वरूप, स्वतंत्र भारत की राजनीति लोकतंत्र के विकास के स्थान पर व्यक्तिवाद की जननी बनी। आज हम देश में राजनीतिक दलों का चुना हुआ नेता देख नहीं पाते। हर नेता अपनी मरजी से जब चाहे नया दल बना लेता है। अतः इसे लोकतंत्र की नहीं, सामंतशाही की तिरस्कृत दिशा कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

नवस्वतंत्र भारत की राजसत्ता पर गांधीजी की कृपा से विराजमान नेतृत्व ने ऐसे लोगों को दरकिनार कर दिया, जिन्होंने कंधे-से-कंधा मिलाकर, सर्वस्व की बाजी लगाते हुए स्वातंत्र्य प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान किया था। नवस्वतंत्र भारत का भाग्योदय करने में उनकी प्रतिभाओं को नजरअंदाज किया गया। अपनी ही मनमानी की गई। आगे चलकर तो भ्रष्ट से भ्रष्ट राजनेताओं को केंद्रीय मंत्रिमंडल में स्थान देकर सत्ता हस्तगत करने में भी संकोच नहीं किया। दूसरी ओर, अन्य दल बिकाऊ विधायकों के आधार पर बेहतर शासन देने की बातें करने में हिचकिचाते नहीं, जबकि उन्हें संयोगवश जहां बहुमत प्राप्त है, वहां भी उन्हें पार्टी में मची गुटबाजी पर काबू पाना मुश्किल हो रहा है। ऐसी हालत में शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार मिटाकर जनहितकारी कामों को कर पाना उनके लिए कैसे संभव है? यह है स्वतंत्रता के गत 57 साल से चलती आ रही राजनीतिक यात्रा की कहानी।

स्वतंत्र भारत के राजनेताओं ने सामाजिक जीवन की महत्ता को नहीं समझा। सत्ता पाने के लिए उन्होंने समाज को जिस तरह से चाहा, नोचा-खसोटा है। कुछ नेता कालबाह्य जातिगत भावनाओं को उभारकर समाज को क्षत-विक्षत कर रहे हैं, तो अन्य नेता क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काकर सत्ता पाने के लिए देश की एकता को हानि पहुंचा रहे हैं। मजहब के आधार पर देश का विभाजन हुआ। इससे सबक लेकर देश के सभी नागरिकों में सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने के स्थान पर सत्ता के लालच में नागरिकों में मजहब के आधार पर अलगाव बढ़ाने में ही लगे हुए हैं।

भारतीय जीवन-दृष्टि किसी को मुसलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी के रूप में नहीं देखती, अपितु वह मानव को मानव मानकर व्यवहार करना सिखाती है। अन्यथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को साकार करनेवाली भारतीय संस्कृति अपने समाज में नहीं पनपती।

दुर्भाग्यवश, स्वतंत्रता प्राप्त होते ही सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक नेतागण भी अपना-अपना मूलभूत दायित्व छोड़कर राजनीति की ए बी सी डी न समझते हुए भी सत्ता-संघर्ष में कूद पड़े हैं। फलस्वरूप भारतीय जीवन की कर्तव्य-पालन की परंपरा जीवन से ओझल होकर, अधिकार-लालसा का व्यक्तिवादी जीवन समाज में गहराता जा रहा है।

विराट् पुरुष

वस्तुतः विश्व में कहीं भी अनुकरणीय लोकतंत्र का नमूना दिखाई नहीं देता। विकसित कहे जानेवाले पश्चिमी देशों का चरित्र लोकतांत्रिक विकास के अनुकूल है ही नहीं। दुनिया भर के अविकसित एवं पिछड़े देशों को लूटकर उन्होंने अपना वैभव खड़ा किया है। यूरोप के नागरिकों ने अमरीका के विशाल भूखंडों पर, वहां के मूल निवासियों का सफाया कर अपना अधिकार जमा लिया है। उनका लोकतंत्र चुनाव प्रक्रिया तक ही सीमित है। उन्हें लोकतंत्र के पूर्ण विकसित रूप की आवश्यकता अनुभव ही नहीं होती। कारण, उनमें मानवीयता की भावना अभी विकसित होना शेष है। वे अभी तक उपभोग के उपासक बने रहने की ही अवस्था में हैं। उपभोग और अधिकाधिक उपभोग करना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। उपभोगमय जीवन का स्तर ऊंचे से ऊंचा उठाने के लिए अन्य देशों का शोषण करनेवाली उनकी प्रवृत्ति अभी भी कायम है। दुनिया भर का विरोध होते हुए भी अमरीका द्वारा इराक पर हमला करना उसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है, जिसकी नजर परायों की धन-संपदा पर कभी नहीं रही। प्रभु राम ने किष्किंधा के राजा बाली को मृत्युदंड दिया, किंतु उसके राज्य पर उसी के भाई सुग्रीव को बिटाया। सोने की लंका पर विजय पाकर वहां का सिंहासन रावण के बंधु विभीषण को सौंपा।

भारत अपने प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर वैभव के शिखर पर विराजमान हुआ था। वैभव के शिखर पर पहुंचकर भी वह ऐशो-आराम के मोह में नहीं फंसा। मानव मात्र के समुचित विकास के लिए प्रयत्नशील रहा। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की आकांक्षा उसी का निचोड़ है।

इस आकांक्षा को ध्यान में रखकर ही हमारे स्वातंत्र्य संग्राम के अग्रणियों ने बार-बार दोहराया था कि हमारा स्वातंत्र्य संग्राम केवल अपनी राजसत्ता वापस लौटा देने के लिए नहीं, अपितु विश्व भर में सह-अस्तित्व का स्नेहमय, सहयोगपूर्ण तथा प्रगतिशील जीवन का अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करने के लिए है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र भारत की दिशा क्या होनी चाहिए थी।

अपने परंपरागत चरित्र के अनुसार अपने लोकतंत्र का विकास करना हमारा दायित्व था। लोकतांत्रिक रचना के लिए चुनाव-प्रक्रिया अनिवार्य है, किंतु चुनाव-प्रक्रिया स्वयं में लोकतंत्र नहीं है, लोकतंत्र के द्वार तक पहुंचानेवाली विधि मात्र है। लोकतंत्र तो चुनाव के बाद ही प्रारंभ होता है।

निर्वाचित जनप्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र के सभी नागरिकों के सक्रिय सहयोग से समाज ही युगानुकूल नवरचना करें, यह अपेक्षित है। कारण, समाज ही शासन की मूलभूत शक्ति है। समाज सह-अस्तित्व से प्रेरित और सुसंगठित न रहा तो शासन सुशासन कदापि नहीं बन सकता। यह तथ्य नजर से ओझल हुआ तो लोकतंत्र की सफलता असंभव है।

भारत स्वतंत्र हुआ। सन् 1952 में स्वीकृत संविधान के अनुसार चुनाव हुए। नवस्वतंत्र भारत की पहली सरकार बनी। इस सरकार का प्राथमिक दायित्व था—स्वतंत्रता को स्वाधीनता में परिणत करना। यह स्वाधीनता जनप्रतिनिधियों द्वारा गठित मंत्रिमंडल तक ही सीमित रहनी नहीं चाहिए थी, अपितु देश की प्रत्येक आबादी स्वाधीन बनाने की दिशा में गतिशील होनी चाहिए थी, तभी हम अपने देश में लोकतंत्र का शुभारंभ मान सकते थे।

जब तक देश के छह लाख गांव स्वावलंबी और स्वाभिमानी नहीं बनते, तब तक स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं होता। स्वतंत्रता के 57 वर्ष बीतने के बाद भी न देश के गांव स्वाधीन बन पाए हैं, न देश ही सर्वथा स्वाधीन हो पाया है। इस दुरवस्था के कारण देश का कोई नेता चिंतित होता हुआ दिखाई नहीं देता।

नेता कहलानेवाले महानुभाव प्रभावी वक्ता हो सकते हैं। तर्कयुक्त बहस करने में भी निपुण बन सकते हैं। संसद् में बहस करने में निष्णात सिद्ध होकर पुरस्कार भी पा सकते हैं, किंतु क्या उनकी ये योग्यताएं भारत के दुर्दशाग्रस्त गांवों को स्वावलंबी बनाने में काम आ रही हैं?

अपने देश की राजधानी नई दिल्ली मानव जीवन की सभी सुविधाओं से संपन्न नगरी है। चौड़ी-चौड़ी और साफ-सुथरी सड़कों का जाल नगर भर में फैला है। परिवहन की सुविधा के लिए अनेक फ्लाईओवर बने हैं और बनते जा रहे हैं। अब तो आधुनिक मेट्रो रेल नागरिकों के आकर्षण का केंद्र बनी है। ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं दिल्ली की शान बढ़ा रही हैं। जगह-जगह हरे-भरे लॉन और रंग-बिरंगे फूलों के उद्यान दिल्ली को मनोहारी बना रहे हैं। दुनिया के विकसित राष्ट्रों की राजधानियों से हमारे देश की राजधानी खूबसूरती में प्रतिस्पर्धा कर रही है।

किंतु प्रश्न उपस्थित होता है कि मंदिर का निर्माण कलश से प्रारंभ होता है या नींव से? भारत के छह लाख गांव देश की नींव के प्रतीक हैं। गत 57 वर्ष की स्वतंत्रता के बाद भी इन गांवों की दशा दयनीय बनी हुई है। यदि हमारे गांवों की यही दशा बनी रही तो कलश रूपी राजधानी नई दिल्ली का भविष्य क्या होगा?

ग्रामीण अंचल के निवासी अन्नदाता कहे जानेवाले किसान भुखमरी के शिकार बन रहे हैं। अभाव की असह्य पीड़ा के कारण वे आत्महत्या कर लेने के लिए विवश हैं। देश के करोड़ों बेकारों व गरीबों की मानसिकता पर उपर्युक्त दयनीय दशा का क्या असर हो रहा है? देश में निरंतर बढ़ रही लूट-खसोट, खून-खराबा और डकैतियां किस ओर इशारा कर रही हैं?

स्वतंत्रता पाकर सालों तक उपेक्षा सहकर और अब अराजकता की मार के कारण देश के नागरिक भविष्य-निर्माण के लिए नौजवानों की ओर आशा भरी नजरों से देख रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि भारत की नई पीढ़ी देश के सामान्य जनों को निराश होने नहीं देगी।

3

21 जून, 2005

समृद्धि का मूल स्रोत ग्रामीण अंचल

चारों ओर स्वार्थसिद्धि के गहराते वातावरण में भी हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। देश की इस हतोत्साहित अवस्था में भी हमारे वैज्ञानिक स्वप्रेरणा से, उपलब्ध साधनों के सहारे राष्ट्रीय सुरक्षा को सबल बनाने में जुटे हैं। वे ऐसी खोज करने में सफल सिद्ध हुए हैं, जिससे देश की सुरक्षा अधिक सुदृढ़ हुई है।

विराट पुरुष

हमारी सेना ने उपर्युक्त वातावरण में भी देश पर हुए आक्रमणों में अदम्य साहस, अडिग आत्मविश्वास, अद्वितीय पराक्रम एवं अनोखे रणकौशल से शत्रुओं को परास्त कर अपनी विजय पताका फहराई है। कारगिल में अचानक और महाघातक आक्रमण को जिस धैर्य, साहस, पराक्रम और रणकौशल से परास्त किया, वह शौर्य का बेजोड़ नमूना है। सन् 1962 में चीन का आक्रमण हुआ था। उसमें हमारी सेना की विफलता नहीं, देश के नेतृत्व की गफलत हमें धोखा दे गई। बंगलादेश की आजादी के संघर्ष में शत्रु के 93,000 सैनिकों को बंदी बनाना हमारी सेना का अद्भुत करिश्मा था।

किंतु स्वतंत्र होने के बावजूद हमने कुटिल अंग्रेजों के पिछलग्गू बन तत्त्वदर्शी भारत को उपभोगवाद का शिकार बना दिया। 'कौन बनेगा करोड़पति' का लक्ष्य देश की नई पीढ़ी के सामने रखा। उन्हें मानवीयता से वंचित किया। देशभक्ति की भावना जीवन से मिटा दी गई।

परिणामस्वरूप, देश की स्थल-सेना, नौ-सेना तथा वायु-सेना में लगभग 14,000 युवा अफसरों के स्थान रिक्त पड़े हैं। अनेक आकर्षण प्रस्तुत करने के बाद भी तीन-चार पीढ़ियों से सेना में योगदान देनेवाले परिवारों के नवयुवक भी अब सेना में शरीक होना नहीं चाहते। वे अधिकतम धन पाने के पीछे पड़े हैं। यही स्थिति वैज्ञानिक क्षेत्र की भी बनी है। देशभक्ति की प्रेरणा प्रदान करनेवाला व्यक्तित्व खोजने पर भी मिलना मुश्किल हो गया है।

यदि युवा पीढ़ी ने इस धनलोलुप-वृत्ति की दासता का निवारण करने की दिशा में कदम नहीं बढ़ाया तो देश का भविष्य बनना कैसे संभव होगा? लाभप्रद पदों के मोह जाल के वशीभूत नेतागण अपनी-अपनी पार्टी में मची गुटबाजी घटा नहीं सकते, वे नई पीढ़ी में देशभक्ति की उमंग कैसे जगा पाएंगे?

प्रचलित राजनीति देश को गुमराह कर रही है। उसके पचड़े में पड़ना उचित नहीं है। राजनीति को ठीक राह पर लाने का काम समाज का है। कारण, समाज ही राष्ट्र की मूलभूत शक्ति है। समाज के द्वारा सरकारों का निर्माण होता है। सरकारें, समाज नहीं बनाया करतीं। देश के वर्तमान नेताओं ने इस तथ्य को विस्मृत कर रखा है।

पचास साल बाद देश का शिखर नेतृत्व अब अनुभव करने लगा है कि प्रशिक्षित अफसरों का मार्गदर्शन अप्रशिक्षित नेता नहीं कर सकते। अतः नेताओं का प्रशिक्षण आवश्यक है। इस मामूली बात को समझने के लिए उन्हें पचास साल लग गए। वस्तुतः स्वतंत्र भारत के नेतागण अंधी-गली में पहुंच गए हैं। उन्हें देश के भविष्य का मार्ग सूझ नहीं रहा है।

संसार के विकसित कहे जानेवाले देशों का दिखाई देनेवाला विकास टिकाऊ नहीं है। शहरों में केंद्रित उनकी अर्थव्यवस्था उनके लिए मुसीबत बन रही है। प्राकृतिक संसाधनों की खदान ग्रामीण अंचल में काम करने के लिए उन्हें अब लोगों का मिलना असंभव हो रहा है।

प्रगति की उपर्युक्त गलत दिशा बदलने के लिए अपनी युवा पीढ़ी को ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत होना होगा। मैं अपने गत 28 सालों के अनुभवों के आधार पर कह सकता हूं कि ग्रामीण क्षेत्र के निवासी आज भी मानवीयता से जुड़े हुए हैं। वे दूसरों की पीड़ा से व्यथित होकर उनकी सहायता

के लिए आगे आते हैं। अतः धनलोलुपता की वृत्ति के स्थान पर देशभक्ति की भावना ग्रामवासियों से प्रचलित करना अधिक सुगम है।

देश की समृद्धि का मूलभूत आधार ग्रामीण अंचल ही है। मानव जीवन की सभी आवश्यकताएं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती हैं। प्राकृतिक संसाधन केवल ग्रामीण अंचल में ही उपलब्ध होते हैं—शहरों में नहीं। शहरी आबादी हो या ग्रामीण, सभी मानवों के लिए उदर-भरण की व्यवस्था अनिवार्य है। उदर-भरण के सभी पदार्थ कृषि उत्पादन से प्राप्त होते हैं और कृषि उत्पादन केवल ग्रामीण अंचल में ही संभव है।

मानव सृजनशील प्राणी है। वह अन्य प्राणियों के समान प्राकृतिक अवस्था में अपना जीवन नहीं बिताता। वह रहने के लिए सुविधाजनक आवास बना लेता है। जाड़े और गरमी में अनुकूल वस्त्र धारण करता है। अनाज पकाकर खाता है। भोजन पकाने के लिए विविध उपकरणों का निर्माण करता है। आवागमन के एक से एक बढ़िया साधन निर्माण करता है। इन सब वस्तुओं के निर्माण का आधार होता है—वनजन्य पदार्थ तथा भूगर्भजन्य पदार्थ। वे भी ग्रामीण अंचल से ही प्राप्त होते हैं।

मानव ने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए पशु-पालन को भी अपनाया है। पशु-पालन का कार्य विशाल पैमाने पर ग्रामीण अंचल में ही संभव है। पशु-खाद्य भी ग्रामीण अंचल से ही उपलब्ध होते हैं। इसका अर्थ है कि देश और समाज की समृद्धि का मूल स्रोत ग्रामीण अंचल ही है। अतः समाज के स्थाई अस्तित्व एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए ग्रामीण विकास को ही आधार बनाना अपरिहार्य है। दुर्भाग्य से, स्वतंत्र भारत में इस मूलभूत स्रोत की सर्वाधिक उपेक्षा की गई है।

जब हम गुलामी में जकड़े हुए थे, पश्चिमी देशों में आधुनिक औद्योगिक क्रांति हुई थी। फलस्वरूप, उन देशों में विशालकाय कारखाने अस्तित्व में आए थे। बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा था। उसे बेचने के लिए उन्हें बड़े बाजारों की आवश्यकता थी। भारत जैसा विशाल देश भी उन्हीं के शासन के अधीन था। भारत में कृषि कार्य के साथ-साथ गांव-गांव में समान स्तर पर सब प्रकार के कुटीर उद्योगों का जाल फैला हुआ था। सभी लोगों की आवश्यकताएं स्थानीय आधार पर ही पूरी होती थीं।

साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए हमें गुमराह किया। उन्होंने चालाकी से प्रचारित किया कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। उसे उसी में जुटा रहना चाहिए। भारत में फैले देशव्यापी कुटीर उद्योगों का उन्होंने सफाया कर डाला और अपने उत्पादन को बेचने के लिए भारत को विशाल मंडी के रूप में परिणत कर दिया। दुर्भाग्य से हमारा नेतृत्व अंग्रेजों के इस दुष्प्रचार का शिकार बना। अभी भी हम इसी भ्रम में हैं कि भारत केवल कृषि प्रधान देश है।

हमें समझना चाहिए कि वही देश सब दृष्टियों से स्वावलंबी अर्थात् स्वाधीन बन सकता है, जो कृषि एवं औद्योगिक विकास समान रूप से कर पाता है। अपने देश में सब प्रकार के प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं। फलस्वरूप, हमारा देश दोनों प्रकार का विकास समान स्तर पर पहले भी कर चुका था और अब भी कर सकता है। ऐसा सौभाग्य विश्व में कम ही देशों को प्राप्त है।

विराट् पुरुष

पश्चिमी देशों के विकास की दिशा मानवीयता रहित है। वह मानव जाति के सह-अस्तित्व के प्रतिकूल है। वे देश मानव मात्र के सुखमय जीवन का विचार ही नहीं करते। स्वयं का जीवन अधिकाधिक सुखमय बनाने के लिए अन्य देशों का शोषण करना उनका परंपरागत स्वभाव है। अधिकाधिक समृद्धि के लिए वे संपूर्ण विश्व को अपने उत्पादन का बाजार बनाना चाहते हैं। वे एक से एक विध्वंसकारी हथियार बनाकर नवस्वतंत्र देशों को बेचकर धन कमा रहे हैं। इसका अर्थ क्या है? वे विश्व-शांति के उपासक नहीं हैं। ये विकसित कहे जानेवाले देश विश्व भर में अपने वर्चस्व का विस्तार करने में लगे हुए हैं।

वे समझ नहीं पा रहे हैं कि उनकी प्रगति की दिशा अंततोगत्वा उनके लिए भी आत्मघाती सिद्ध होगी। उनकी औद्योगिक प्रगति आज उनकी समृद्धि का आधार दिखाई देती है। वे उत्पादन के लिए एक से एक बढ़कर स्वचालित यंत्रों का आविष्कार कर रहे हैं। कम-से-कम हाथों द्वारा अधिक-से-अधिक उत्पादन करने की दिशा में वे बढ़ रहे हैं। मानव श्रम के स्थान पर उन्होंने यंत्र-मानवों का उपयोग करना श्रेयस्कर माना है। परिणामस्वरूप, इन विकसित कहे जानेवाले देशों में अब बेकारी की समस्या सिर उठा रही है। उनकी अपनी उत्पादन विधि, बेकारी की समस्या को बेकाबू बनानेवाली है। इस आशंका से वे अन्य ग्रहों पर आबादी बसाने की संभावनाएं खोज रहे हैं। पूंजीप्रधान प्रथा की समृद्धि की भूख इतनी अधिक होती है, जिसकी कोई सीमा नहीं होती। फलस्वरूप, वह सामाजिक जीवन के विनाश का कारण बनती है।

उपर्युक्त पूंजीपति प्रथा के विकल्प के रूप में 1917 में रूस में साम्यवादी क्रांति हुई थी। उस क्रांति ने श्रमिकों की तानाशाही प्रस्थापित करने का लक्ष्य बनाया था। कुछ सालों तक उसका विश्व भर में बोलबाला होता रहा। उसने वर्ग-संघर्ष के नाम पर मानव मानव में शत्रुता को जन्म दिया। मानवजाति के सह-अस्तित्व के मूल सिद्धांत के प्रतिकूल कोई व्यवस्था अधिक समय तक टिक नहीं सकती, यह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का अनुभवसिद्ध निष्कर्ष है। अतः इने-गिने सालों में ही यह साम्यवादी विकल्प बेकार सिद्ध हुआ है।

स्वतंत्र भारत में उपर्युक्त दोनों मानवीयता रहित व्यवस्थाओं को मिलाकर मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रयोग किया गया। उससे राहत मिलनेवाली नहीं थी। अब उदारवादी अर्थव्यवस्था का आलाप छेड़ा गया है। वह समाज में विषमता की खाई और अधिक चौड़ी कर रहा है, जो सह-अस्तित्व के सिद्धांत के विपरीत है। अतः इसकी विफलता भी अटल है।

जो व्यवस्था समाज में सह-अस्तित्व के अनुकूल नहीं होगी, वह असंख्य समस्याओं की जननी बनेगी। जो देश आज आर्थिक समृद्धि के शिखर पर आरुढ़ दिखाई दे रहे हैं, वे इस तथ्य को नजरअंदाज कर रहे हैं।

सौभाग्य से, भारत के युवाओं को अपने देश के साथ-साथ अविकसित एवं विकासमान देशों के लिए प्रगति का दोषमुक्त नमूना प्रस्तुत करने का सुअवसर उपलब्ध है। ग्रामीण अंचल किसी भी देश के समुचित उन्नति का मूलभूत स्रोत है। उसी को प्रगति की सुदृढ़ नींव मानकर स्वाभिमानपूर्ण व स्वावलंबी जीवन खड़ा किया जा सकता है। वर्तमान काल में उसका अनुकरणीय

नमूना विश्व में कहीं भी उपलब्ध नहीं है, न उस ओर किसी का ध्यान ही है। भारत का युवा-वर्ग इस अभाव को दूर कर केवल अपना ही जीवन सार्थक नहीं बनाएगा, अपितु मानव-मात्र के लिए प्रगति का आदर्श मार्ग प्रशस्त करेगा।

4

28 जुलाई, 2005

विकास की राह बनेंगे विवादमुक्त गांव

गुलामी के पूर्व हमारी न्याय व्यवस्था बहुत सरल, तत्काल निर्णायक एवं संतोषप्रद हुआ करती थी। वह 'पंचमुखी परमेश्वर' के नाम से जानी जाती थी। फलस्वरूप ग्रामीण जीवन सदभावनापूर्ण सहयोगात्मक और सामंजस्यपूर्ण था। मुसलिम हुकूमतों के काल में शासकों ने शहरों एवं कस्बों में न्याय-व्यवस्था में कुछ परिवर्तन अवश्य किए थे, किंतु ग्रामीण न्याय-व्यवस्था पूर्ववत् चलती रही।

सन् 1765 के बक्सर युद्ध में प्राप्त विजय के बाद अंग्रेजों ने अपनी शासन प्रणाली लागू करना प्रारंभ किया। राजस्व वसूली तथा न्याय-व्यवस्था पर अपना शिकंजा जमाना शुरू किया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा को मिलाकर विशाल भू-भाग को जिलों की इकाइयों में बांटा गया। हर जिले के लिए अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त किए गए। वे राजस्व वसूली के साथ जिला मजिस्ट्रेट का भी काम करने लगे। आगे चलकर दीवानी और फौजदारी अदालतों की जिला स्तर पर स्थापना हुई। सभी कचहरियों में अंग्रेजी भाषा प्रचलित की गई। वकीलों की आवश्यकता जरूरी हुई। 1828 से लार्ड विलियम बैंटिक के जमाने से वकीलों का व्यवसाय नियमित रूप से चल पड़ा। वही सिलसिला अबाधित गति से आज भी चल रहा है। अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व स्वतंत्र भारत में भी बना हुआ है।

सुदैव से मेरा जन्म छोटे से ग्राम में हुआ और मेरा जीवन-कार्य भी ग्रामीण अंचल ही बना हुआ है। फलस्वरूप, मेरा जिला कचहरियों में जाना-आना होता रहा है। जिला कचहरियों में 95 प्रतिशत से भी अधिक भीड़ ग्रामवासियों की ही रहती है। वे अपना-अपना मुकदमा लेकर वकीलों को घेरे रहते हैं।

वकील वर्ग सुशिक्षित, कानूनों का जानकार, वाद-विवाद में पटु तथा नेतृत्व में अग्रणी है। महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद आदि अनेक वकीलों ने स्वातंत्र्य संग्राम का नेतृत्व किया था। आजादी पाने के बाद भी यह वर्ग राजनीति में प्रमुखता प्राप्त किए हुए है।

ग्रामवासी आपस में मुकदमेबाजी के द्वारा स्वयं को बरबाद कर रहे हैं, यह देखते हुए भी वकील वर्ग उन्हें समझाता नहीं कि वे इस मुकदमेबाजी की बरबादी से स्वयं को बचा लें, अपितु उनके मुकदमेबाजी में ही वह अधिक रुचि रखता है। कारण, वही उसने आजीविका का साधन बना रखा है। ग्रामीणों की दयनीय दशा जानते हुए भी वह उनसे अधिक मेहनताना वसूलने में लगा रहता है। ग्रामवासी कर्जदार होते हुए भी हजारों वकीलों के सुखमय जीवन का बोझ ढोते

विराट् पुरुष

आ रहे हैं। यह वकील वर्ग 1828 से गरीब ग्रामीण आबादी का सतत शोषण करता आ रहा है। इस गंभीर समस्या की ओर हमारे नेतृत्व ने अपनी आंखें मूंद रखी हैं। यदि यही स्थिति बनी रही तो सरकारों द्वारा बनाई गई ग्रामविकास की योजनाएं क्या कभी देश की सत्तर प्रतिशत से अधिक ग्रामीण आबादी को खुशहाल बना पाएंगी?

देश की लगभग तीन-चौथाई आबादी की परवाह न करनेवाली राजनीति में बने रहना मुझे असह्य हुआ और मैं ग्रामोदय की दिशा में चल पड़ा। ग्रामविकास के काम की मुझे जानकारी नहीं थी। उस दिशा में मैंने कभी काम किया ही नहीं था। अतः ग्रामवासियों के बीच रहकर उनकी समस्याएं समझना तथा आवश्यकताओं को पूर्ण करना जरूरी था। अतः मैंने अपनी गतिविधियों का केंद्र ग्रामों को बनाया। गांव-गांव घूमकर मैं ग्रामवासियों से विचार-विनिमय करने लगा। गांवों में कृषि ही प्रमुख व्यवसाय है। ग्रामवासी दिन में अपने-अपने खेतों में काम करने जाते हैं। उनसे विचार-विनिमय करने का समय रात में ही संभव होता है। अतः मुझे ज्यादातर रातें गांवों में ही बितानी पड़ती थीं।

एक दिन एक वृद्ध ग्रामवासी ने मुझसे कहा, “आप बेकार परेशान हो रहे हैं। आप समझ नहीं पाते कि जिन्हें भगवान ने ही कंगाल बनाया है, उन्हें क्या इनसान खुशहाल बना सकता है? आप इस काम में मत पड़िए।” ग्रामवासियों को अपने भाग्य को कोसते हुए निराशाग्रस्त होकर बैठे देख मैं बहुत दुःखी हुआ, किंतु हताश नहीं। मैं ग्रामोदय के मार्ग की खोज में लगा रहा।

मई का महीना था। चारों ओर सूखे का माहौल था। गोंडा से लगभग 17 कि.मी. पर मुझे एक हरी-भरी बगिया नजर आई। मैं उसमें पहुंचा। वह एक माली की बगिया थी। वह माली अपनी लगभग एक एकड़ जमीन से साल भर में विभिन्न प्रकार की सब्जियों की अनेक फसलें उगाता था। अपनी ताजी सब्जियां गोण्डा की सब्जी मंडी में रोज बेचता था। अपनी कमाई में से उसने गोण्डा सब्जी मंडी में एक छोटा सा मकान बनाकर किराए पर चढ़ाया था। वह खुशहाली की जिंदगी बिता रहा था। उसकी जीवन-गाथा ने मुझे बहुत उत्साहित किया।

दूसरे दिन मैं उस गांव में पहुंचा, जहां के बूढ़े किसान ने मुझे बेकार परेशानी से बचने के लिए कहा था। मैंने उस बूढ़े किसान से कहा, “बाबा, मैं कल एक अचरज देखकर आया हूं। एक एकड़ भूस्वामित्ववाला बनारसी प्रसाद खुशहाली की जिंदगी जी रहा है।” संयोगवश वह बूढ़ा बनारसी प्रसाद से पुराना परिचित था। उस बूढ़े ने मुझसे कहा, “नानाजी, आप शहरी लोग हम ग्रामीणों की हालत समझ नहीं पाते। उस माली के पिता ने अपनी ससुराल से पक्के कुएं सहित वह जमीन पाई थी। वह माली सिंचाई की सुविधा पाकर खुशहाल हो गया है। यदि हमें भी सिंचाई के साधन मिलें तो हम भी उसी प्रकार से खुशहाली की जिंदगी पा सकते हैं।” उस बूढ़े किसान ने दीनदयाल शोध संस्थान को ‘ग्रामोदय’ का मार्ग दिखाया। गरीब किसानों के लिए सिंचाई के साधन खोजने में शोध संस्थान जुट गया।

गोंडा जिले में हिमालय से निकली बारहों माह बहनेवाली नदियां हैं। वह जिला पानी पर तैरता है। जिले में पचास हजार ट्यूबवैल्स लगाने पर भी भूगर्भ जलस्तर घटेगा नहीं। इसकी जानकारी

पाकर दीनदयाल शोध संस्थान ने पांच एकड़ या उससे छोटे जोतवाले बीस हजार किसानों के खेतों में ट्यूबवैल्स लगाने का संकल्प लिया। जनता पार्टी की सरकार थी। बैंकों से गरीब किसानों को सात हजार रुपयों तक कर्ज पाने की मंजूरी प्राप्त कराई गई। दो साल में सत्ताईस हजार पांच सौ सोलह नलकूप लग गए। जमीन में हजार फुट तक पत्थर का नामोनिशान नहीं है। 98 प्रतिशत से अधिक किसानों ने बैंकों का कर्ज वापस कर दिया।

किंतु चित्रकूट इलाके की परिस्थिति एकदम भिन्न है। इसका अधिकांश इलाका विंध्याचल पहाड़ियों से घिरा है। वर्षा का पानी बह जाता है। अनेक गांवों में पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं होता। गांव के सभी ग्रामवासी सामूहिक प्रयास करें, तभी बरसात का पानी रोककर साल भर के लिए पानी का संचय किया जा सकता है। लेकिन गांवों में मुकदमेबाजी और पार्टीबाजी के कारण सामूहिक प्रयास संभव नहीं होते।

सरकार के द्वारा चलाई गई 'राजीव गांधी जलप्रबंधन योजना' जैसी उपयोगी योजनाएं व्यावहारिक धरातल पर साकार नहीं होतीं। कारण, राजनेता और नौकरशाही इस योजना को सफल बनाने में तनिक भी रुचि नहीं रखते। दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट इलाके में इस योजना का सदुपयोग करने का निश्चय किया। गांव-गांव में ग्रामवासियों की बैठकें कीं, उन्हें यह योजना समझाई। ग्रामवासियों को मिलकर काम करने के लिए राजी किया। प्रयोग सफल हुए। परिणामस्वरूप, ऐसे गांवों में जहां पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं था, वहां भी सबके खेतों की सिंचाई संभव हुई। निराशाग्रस्त किसानों के जीवन में सिंचाई के प्रबंध के कारण खुशहाली के दिन दिखाई देने लगे। वर्षा के भरोसे जहां एक फसल भी ठीक से उगाना अनिश्चित था, वहां सिंचाई के प्रबंध के कारण सभी किसान आराम से साल में दो फसलें उगाने लगे हैं। सभी ग्रामवासियों द्वारा मिलकर काम करने का लाभ ग्रामवासियों को दिखाई देने लगा है।

हर गांव के ग्रामवासियों के मुकदमे कचहरियों में चल रहे थे। आपसी अनबन के कारण सबका मिलकर काम करना कठिन था। दीनदयाल शोध संस्थान के 'समाजशिल्पी दंपतियों' ने गांव के बुजुर्गों द्वारा ग्रामवासियों को समझाया कि मुकदमों में लगे रहने से जनजीवन में तरक्की संभव नहीं है। अतः आपस में मिल-बैठकर हम आपसी विवादों को सुलझा लें। एक बार जब सभी विवाद सुलझा लिये जाएंगे, तब उन सिंचाई परियोजनाओं पर मिलकर काम करना संभव होगा, जिनसे सभी ग्रामवासियों को लाभ होगा।

गांव के लोगों को बुजुर्गों की सलाह जंच गई। गांवों में होड़ लग गई कि हम अपने गांव को विवादमुक्त बनाएंगे। परिणामस्वरूप, अभी तक चित्रकूट के चारों ओर के 80 गांव विवादमुक्त हुए हैं। गांव के लोगों ने सर्वसम्मति से तय किया है कि हम अपना विवाद लेकर अब कचहरी में नहीं जाएंगे, आपस में ही मिल-बैठकर सुलझा लेंगे। गांवों में फैली मुकदमेबाजी की सालों से चली आ रही महामारी से मुक्ति पाने का मार्ग सुलभ हो गया है। सन् 2010 तक चित्रकूट के चारों ओर के 500 गांव इसी रूप में विकसित होंगे।

ग्राम विकास में जुटें युवा

साधारण से, लेकिन शिक्षित कार्यकर्ताओं (युवक-युवतियों) ने स्थानीय ग्रामवासियों से स्वावलंबन के आधार पर सामूहिक प्रयासों द्वारा ग्रामों के चतुर्दिक् विकास का कार्य कर दिखाया है। चित्रकूट क्षेत्र के अति पिछड़े और उपेक्षित गांवों के निवासी खुशहाली के दिन देखने लगे हैं। इस अनुभव से स्पष्ट है कि अगर स्वतंत्रता पाते ही युवाओं को छह लाख गांवों के विकास के लिए प्रेरित किया जाता तो आज हमारे दुर्दशाग्रस्त गांव देश के भविष्य-निर्माण में आधारस्तंभ के रूप में काम आते। इस मूलभूत कार्य की सर्वथा उपेक्षा की गई है। जिसके निम्न परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं—

- देश के करोड़ों नागरिकों को दरिद्रता की असह्य यातनाएं सहनी पड़ रही हैं। असंख्य युवजन बेरोजगार, जिसके कारण कुछ अपराध जगत् की ओर आकर्षित हो जाते हैं, देश की इस मूलतः सकारात्मक युवा-शक्ति को दिशा देने की आवश्यकता है।
- राजनेताओं का ग्रामों से संबंध टूट गया है। कांग्रेस जैसा ऐतिहासिक और देशव्यापी दल भी अपना अखिल भारतीय अस्तित्व खो बैठा है।
- जातीय, मजहबी एवं क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काकर राजनीतिक दल अधिक बलशाली बन रहे हैं। ऐसे संकुचित मानसिकतावाले दलों के सहयोग के बिना राष्ट्रीय सरकार का गठन असंभव हुआ है। इस कारण, मिली-जुली केंद्रीय सरकारें राष्ट्रीय हित में काम करने में असमर्थ हुई हैं। यह अवस्था देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बांटने की संभावना बढ़ा रही है। इस खतरनाक अवस्था से देश को बचाने का प्रयास करने के बजाय चोटी के नेता अपना व्यक्तिगत वर्चस्व प्रस्थापित करने के लिए आपस में ही लड़ रहे हैं। यह देखकर केवल आम लोग ही नहीं, इन नेताओं के अनुयायी भी निराश हो रहे हैं।

अपना देश और समाज बहुत पुराना है। अनेक बार वह अधोगति का शिकार बना था। ऐसी अवस्था में नई पीढ़ी ने ही उसे उन्नति की राह पर ला खड़ा किया था। आज फिर से नई पीढ़ी को ही वह दायित्व निभाना होगा।

स्वतंत्र भारत में अपनाई गई शिक्षा-पद्धति नई-पीढ़ी को देशभक्ति और समाज-निष्ठा से पूर्णतः वंचित कर रही है। सुशिक्षित कहलानेवाले परिवारों में भी जन्म पानेवाली संतान सामाजिक दायित्व की प्रेरणा नहीं पाती। सभी प्रकार के उच्चस्तरीय लोगों की जीवन-शैली से स्वार्थसिद्धि के ही पाठ पढ़ने को मिल रहे हैं। अतः नवशिक्षित वर्ग देश और समाज की उन्नति का विचार तक नहीं करता।

वर्तमान नेतृत्व नहीं, बढ़ रही दुर्दशा ही नई पीढ़ी को अपना दायित्व समझाने का काम कर

रही है। जनजीवन की विपदा देखकर और बेकारी की निरंतर बढ़ रही विभीषिका से त्रस्त होकर युवा-वर्ग बहुत बेचैन है। वह नई राह की खोज में हैं। संपर्क करने पर उसे दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य की दिशा पसंद आ रही है। वह समझने लगा है कि ग्रामीण विकास के बिना आम लोगों का जीवन सुधर नहीं सकता। फलस्वरूप, नवविवाहित होकर भी पति-पत्नी के उच्च शिक्षा प्राप्त जोड़े ग्रामीण अंचल में काम करने के लिए राजी हो रहे हैं।

अनंत काल से चली आ रही अपनी अखंड परंपरा बहुत समृद्धशाली है। उसमें से अनेक बातें आज भी राष्ट्र पुनर्रचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर हमें सोचना चाहिए था कि सदियों तक गुलामी में रहने के बावजूद अपना समाज टिका क्यों रहा? हमारी सभ्यता और संस्कृति नष्ट क्यों नहीं हुई? बुरे-से-बुरे दिनों में भी स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा बनी कैसे रही? राजसत्ता से वंचित होकर भी हम फिर स्वतंत्र कैसे हुए? इन रहस्यों को जानने का प्रयास किया होता तो राष्ट्र-नवरचना का कार्य योग्य दिशा में गतिशील होता।

उसी समय सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारकों की, राष्ट्र-नवनिर्माण की दिशा निर्धारित करने के लिए, सामूहिक विचार गोष्ठियां आयोजित की जातीं तो देशोन्नति में सबका सहयोग संभव होता। इस अनिवार्य कार्य की पूर्णतः अवहेलना की गई और राजसत्ता को ही कल्पवृक्ष माना गया। राष्ट्र-जीवन के अन्य सभी महत्वपूर्ण पहलू भुला दिए गए।

आध्यात्मिक अधिष्ठान के बिना जनजीवन स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता। प्रत्येक मानव में शरीर, मन और बुद्धि के साथ आत्मा अभिन्न रूप से जुड़ी रहती है। वह ही मानव में संवेदनशीलता, सहिष्णुता, नैतिकता, विवेकशीलता, प्रामाणिकता, कर्तव्य-परायणता, सदाशयता, स्नेहशीलता, परस्पर-पूरकता एवं सहअस्तित्व के मानवीय गुणों की प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रक्रिया को ही आध्यात्मिकता कहते हैं। इस सर्वाधिक महत्व के कार्य को सभी ने नजरअंदाज किया है। पूजा-पाठ करना मात्र आध्यात्मिकता नहीं है। उपर्युक्त गुणों के बिना जनजीवन शांतिदायक, सुखमय और उन्नतिशील बन नहीं सकता।

राजसत्ता में उपर्युक्त गुणों का सृजन करने की क्षमता ही नहीं है। केवल राजसत्ता कलह का कारण बनती है। वह नवस्वतंत्र देश का चतुर्दिक् विकास कर ही नहीं सकती। वह अकेले विषमता का कारण बनती है। उसी को सर्वस्व मानने के कारण असंख्य बलिदान देकर प्राप्त स्वतंत्रता भ्रष्टाचार की वेदी पर बलि चढ़ गई है।

स्वतंत्र भारत में केवल भ्रष्टाचार ही पनप रहा है। वह इतना प्रबल हो गया है कि उसने केंद्रीय मंत्रिमंडल पर भी अपना प्रभाव जमा लिया है। आए दिन ऊंचे-से-ऊंचे प्रशासकों के यहां से करोड़ों की संपत्ति पकड़ी जा रही है। स्टैंप पेपर घोटाले ने तो देश भर को अपने जाल में फंसा लिया, किंतु शासन को उसकी भनक तक नहीं लगी। ऐसी है हमारी शासन-व्यवस्था। हमारी न्याय-व्यवस्था भ्रष्टाचार में लिप्त लोगों को सजा देने में इतना विलंब करती है कि किसी भ्रष्टाचारी को सजा मिलने की संभावना ही नजर नहीं आती। बिना घूस के नागरिकों को सरकारी दफ्तरों

विराट् पुरुष

से अपने छोटे-से-छोटे काम करवाना भी संभव नहीं रहा। अर्धशताब्दी की राजनीति ने हमें इस अवस्था में ला पटका है। भ्रष्टाचार की इस देशव्यापी महामारी से मुक्ति दिलानेवाला कोई नेता, दल या संगठन दिखाई नहीं देता। नई पीढ़ी के अलावा यह आवश्यक काम कौन करेगा?

पिछले कुछ समय के घटनाक्रम से मेरा यह विश्वास दृढ़ हो चला है कि राजनीति के भरोसे देश का, विशेषकर गांवों का विकास नहीं हो सकता। इसके लिए समाज को ही आगे आना होगा और समाज को ऊर्जा देने का काम सिर्फ युवा-वर्ग ही कर सकता है। मैं देश की तरुणाई का पुनः आह्वान करता हूँ कि वह अपना उत्तरदायित्व समझे और गांडीव उठाए।

6

एकात्म रूप में विकसित हो राष्ट्र

विदेशी शासकों के प्रति आक्रोश और संघर्ष अधिकाधिक उग्र बनाने के लिए व्यापक जन-आंदोलन करना आवश्यक था। शौर्यपूर्ण गीतों की रचना करना और प्रभावी ढंग से गाना तथा जोशीले भाषणों से नौजवानों में उत्साह, त्याग और बलिदान की भावनाएं जगाना जरूरी था। विदेशी शासकों के दमनकारी कदमों में अवरोध निर्माण करने के लिए संचार माध्यमों में खराबी उत्पन्न करना भी युक्तिसंगत था। ये सब कार्य स्वराज्य प्राप्ति तक ही सीमित होने चाहिए थे।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद 'निर्माण युग' प्रारंभ होना चाहिए था। राष्ट्र नवरचना में हर नागरिक को सहयोगी बनाना आवश्यक था। देश सदियों तक गुलामी में जकड़ा हुआ था। स्वतंत्र देश के नागरिकों के कर्तव्य की जानकारी उपलब्ध कराना नेतृत्व का दायित्व था। स्वावलंबन का स्वभाव विस्मृत हुआ था। सहअस्तित्व एवं सामाजिक दायित्व की भावना लुप्त हुई थी। आबादियों में परस्पर सहयोग की आदत शेष नहीं थी। पारतंत्र्य के कारण नागरिक सत्ताभिमुखी बने थे।

स्वराज्य पाते ही देश के नागरिकों में गुलामी के कारण आई इन खराबियों को दूर कर सहअस्तित्व, परस्पर-पूरकता एवं स्वावलंबन का स्वभाव विकसित करने के कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी। दुर्भाग्य से आजादी के गत उनसठ सालों में इस अनिवार्य कार्य की घोर उपेक्षा की गई और अपनी ही सरकार को विदेशी सरकार जैसा मानकर स्वातंत्र्य संग्राम के काल के विध्वंसात्मक कार्यक्रमों को जारी रखा गया है। कारण, स्वतंत्र भारत के राजनेताओं का लक्ष्य राष्ट्रोन्नति न होकर सत्ता प्राप्ति मात्र बन गया है।

राजसत्ता के लोभ में हमने अपनी मातृभूमि का विभाजन तक स्वीकार किया। सत्य और अहिंसा के पुजारियों ने लाखों निरीह लोगों की हत्याएं होने दीं। असंख्य परिवारों को परंपरागत घरों से उजड़ते हुए शरणार्थी बनने के लिए विवश किया।

सत्ता पाने के लिए अपने ही समाज का विघटन करने में संकोच नहीं किया। इसका प्रतिफल सभी दलों को भुगतना पड़ रहा है। हर एक दल टूट-फूट का शिकार बना है। इन दलों के चोटी

के नेता भी एक-दूसरे को अपराधी घोषित कर रहे हैं। यह बना है स्वतंत्र भारत की राजनीति का चरित्र।

अब चुनाव में लालू वाद, मुलायम वाद, नीतिश कुमार वाद, चौटाला वाद, मायावती वाद, क्षेत्रीयवाद आदि सत्ता प्राप्ति के प्रभावी साधन बने हैं। हिंदुत्व का अभिमान रखनेवालों के पास हिंदुओं में बढ़ रहे इस बिखराव को रोकने तथा उसमें एकात्मता निर्माण करने का कोई व्यावहारिक उपक्रम दिखाई नहीं देता। मुसलिम-तुष्टीकरण के खिलाफ हिंदू रथ-यात्राएं निकाली जा रही हैं। फलस्वरूप, परोक्ष रूप से मुसलिम वोट-बैंक की ही कीमत और अधिक बढ़ाने का काम हो रहा है।

1947 के पूर्व नौजवानों में देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने की प्रबल आकांक्षाएं थीं, किंतु स्वतंत्र भारत के नेतृत्व के आचरण के कारण स्वार्थसिद्धि की वृत्ति सर्वव्यापी बन गई है। स्वतंत्र भारत में सामाजिक और राजनीतिक अवस्था में ही खराबी नहीं आई है, अपितु आर्थिक स्थिति भी बहुत बिगड़ गई है। जोर-शोर से प्रचार किया जा रहा है कि भारत विश्व की एक महाशक्ति बनने की ओर बढ़ रहा है। अमरीका के राष्ट्रपति भी ऐसा ही प्रमाण-पत्र दे रहे हैं, किंतु देश में अनेक स्थानों पर किसान दारिद्र्य से तंग आकर आत्महत्याएं करने लगे हैं। क्या इन दोनों बातों में कोई मेल है?

स्वतंत्रता पाने के बाद हमने अपने देश की वास्तविकता समझने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमरीका और रूस विश्व की महानतम शक्तियों के रूप में उभरे थे। स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने इन दोनों की प्रगति की दिशा को अपनाना श्रेयस्कर समझा। उसे मिश्रित अर्थव्यवस्था का नाम दिया। इन दोनों महाशक्तियों में से रूस अपनी ही नीतियों का शिकार बन प्रतिस्पर्धा में विफल रहा।

अपनाई गई अर्थव्यवस्था भारत की वस्तुस्थिति के आधार पर खड़ी नहीं हुई थी। हमारे पास जनशक्ति का भरपूर भंडार था। अमरीका में पूंजीगत शक्ति का आधिक्य था। अतः पूंजी आधारित अर्थव्यवस्था हमारे लिए अनुकूल नहीं हो सकती थी। वैसे भी पूंजी आधारित अर्थव्यवस्था मानवीयता के प्रतिकूल होती है। इसमें इने-गिने लोग ही तरक्की कर पाते हैं। उनकी संपत्ति बेतहाशा बढ़ती है। इसके बावजूद आजकल विश्व में यही हवा बह रही है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि साम्यवादी कहलानेवाले चीन में भी अरबोंपति अस्तित्व में आए हैं, जबकि चीन के देहाती क्षेत्रों में बेकारों एवं गरीबों की संख्या बेकाबू हो रही है। स्वयं अमरीका में अरबोंपतियों की संख्या अब 371 हुई है। समाज में बढ़ रही यह बेहिसाब विषमता धीरे-धीरे वहां भी असंतोष के स्वर उठा रही है।

भारत में भी अरबोंपतियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। वर्ष 2004 में भारत में अरबोंपतियों की संख्या 12 थी, जो वर्ष 2005 के अंत तक 23 अर्थात् दुगुनी हो गई है। हमारी आर्थिक प्रगति कुछ ही लोगों के लिए वरदान सिद्ध हो रही है। शेष समाज बेकारी और गरीबी से जूझ रहा है। क्या यह वस्तुस्थिति भारत के महाशक्ति बनने के संकेत दे रही है?

विराट् पुरुष

उपर्युक्त विवरण किसी को दोष देने के हेतु से अंकित नहीं किया है। भारत का चतुर्दिक् विकास करने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में उपर्युक्त परिस्थिति प्रस्तुत है। मानव के नवजात शिशु का विकास एकात्म रूप में होता है। एक-एक अवयव का अलग-अलग विकास नहीं होता। सभी अंग एक-दूसरे के लिए पूरक अर्थात् एकात्म रूप में विकसित होते हैं। उसी को बच्चे का स्वास्थ्यपूर्ण विकास माना जाता है। राष्ट्र-जीवन का विकास भी एकात्म रूप में ही होना चाहिए। इसी मर्म की अनुभूति कर स्व. दीनदयालजी ने 'एकात्म मानव दर्शन' की खोज की थी। देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक, आदि का समन्वित विकास का युगानुकूल मार्ग उन्होंने प्रस्तुत किया था। इसकी महत्ता उनके राजनीतिक एवं गैर-राजनीतिक साथी समझ नहीं पाए। अन्यथा स्वतंत्र भारत की यह अवस्था नहीं होती।

7

औद्योगीकरण से मुक्त हो कृषि

आदि काल से ही भारत में लोकतांत्रिक जीवन प्रणाली प्रचलित थी। वह केवल शासन व्यवस्था तक सीमित न होकर सामाजिक जीवन के हर अंग में व्याप्त थी। बहुसंख्य समाज कृषि-कार्य में लगा रहा। अतः अन्नदाता किसान लोकतंत्र का आधारस्तंभ था। उसने अपना स्वावलंबन अंग्रेजों के शासन काल में भी बनाए रखा।

किंतु 1947 में प्राप्त स्वतंत्रता के बाद हमारी अपनी सरकारों ने लोकतंत्र के प्रहरी किसानों के स्वावलंबन पर भी कुटाराघात किया। पश्चिम का पूंजीवाद और रूस-चीन का साम्यवाद समान रूप से लोकतंत्र के प्रतिकूल हैं। भारत की सरकारें इन्हीं के झूलों पर झूल रही हैं। लोकतंत्र के मूलभूत आधार को समझने का हमारे शासकों ने प्रयास ही नहीं किया। वे केवल सत्ता-संघर्ष में ही लगे हुए हैं।

पश्चिमी प्रभाव में आकर औद्योगीकरण की धुन में हमारी सरकारों ने खेती का भी अधिकाधिक मशीनीकरण करना श्रेयस्कर समझा। वे बड़े-बड़े किसानों से घिरे रहते हैं। उन्हीं के लिए कृषि के फायदेमंद तौर-तरीके अपनाते हैं। बड़े-बड़े किसानों को मशीनों के आधार पर कृषि-कार्य करना अधिक सुविधाजनक होता है। वही भारत की सरकारों की कृषि-नीति बन गई तथा भारत की कृषि का मशीनीकरण तेजी से बढ़ता गया।

मशीनीकरण के साथ खाद की आवश्यकता पूर्ण करनी थी। औद्योगीकरण के प्रेमी देश हर बात के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण कर कदम बढ़ाते हैं। उन्होंने खेती की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए कृषि-भूमि का रासायनिक विश्लेषण किया और रासायनिक खादों का आविष्कार कर उसका प्रचलन किया।

इन रासायनिक खादों का तत्कालीन लाभ अवश्य दिखाई देता है, जैसे शराबी को प्रारंभ में

अधिक स्फूर्ति अनुभव होती है। किंतु रासायनिक खादों से फसलों पर कई प्रकार की नई बीमारियों का प्रकोप बढ़ता है। इन बीमारियों के निराकरण के लिए रासायनिक कीटनाशकों का उत्पादन किया जाने लगा। इस प्रकार औद्योगिक देशों में रासायनिक कृषि-पद्धति प्रचलित हुई।

कृषि-मशीनों का, रासायनिक खादों का तथा रासायनिक कीटनाशकों का उत्पादन पूंजीपतियों के विशालकाय कारखानों में होता है। परिणामस्वरूप, किसानों को अपने स्वावलंबन का बलिदान कर कृषि-उपकरणों के लिए पूंजीपतियों पर निर्भर रहने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यह कृषि-पद्धति किसानों के प्रतिकूल तथा पूंजीपतियों के अनुकूल है। पूंजीपतियों को असंख्य किसानों का सहज में शोषण करने की सुविधा उपलब्ध हुई है। अमरीका में इसका दुष्परिणाम दिखाई नहीं पड़ता है। कारण, वहां कुल आबादी के मुश्किल से चार-पांच प्रतिशत लोग ही कृषि-कार्य में संलग्न हैं, किंतु भारत में कुल आबादी की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर करती है। परिणामस्वरूप, कृषि का औद्योगीकरण भारत के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहा है।

पश्चिम के संपन्न देशों ने औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी है। वे उसी आधार पर अधिकतम समृद्ध हो रहे हैं। उन्होंने कृषि-कार्य को भी औद्योगिक प्रक्रिया माना था। इस कारण, उन्हें कृषि-कार्य की विशेषता समझ में नहीं आई थी। अपने देश में कृषि-कार्य आदि काल से होता आया है। दीर्घ काल के अनुभवों के फलस्वरूप हमारी कृषि-पद्धति प्राकृतिक आधार पर विकसित हुई थी। कृषि-उपज का विकास जैविक प्रक्रिया है। उसका रासायनिक विश्लेषण तो किया जा सकता है, किंतु रासायनिक आधार पर कृषि-कार्य करना अप्राकृतिक है। इस तथ्य को पश्चिमी वैज्ञानिक समझ नहीं पाए थे।

कृषि-कार्य रासायनिक आधार पर करने के निम्न दुष्परिणाम अब उजागर हो रहे हैं—

- यह पद्धति लोकतंत्र के प्रतिकूल और पूंजीपतियों के अनुकूल है।
- इससे किसानों का स्वावलंबन समाप्त होता है और उन्हें पूंजीपतियों का हमेशा के लिए मुखापेक्षी बना रहना पड़ता है।
- रासायनिक खाद कृषि-भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते नहीं, अपितु उर्वरा शक्ति का शोषण कर भूमि को कमजोर बना डालते हैं। फलस्वरूप, रासायनिक खादों की मात्रा प्रति फसल बढ़ानी पड़ती है। अंत में जमीन की उपजाऊ शक्ति नष्ट होती है।
- रासायनिक खादों और कीटनाशकों के उपयोग के कारण कृषि-उपज में विषैले तत्वों का प्रवेश होता है, जो मानव के लिए अनेकानेक रोगों का कारण बनता है।
- रासायनिक तत्वों का भूमि में ही नहीं, अपितु भूगर्भ-जल में भी प्रवेश होकर पेयजल प्रदूषित होता है।

उपर्युक्त दुष्परिणामों के फलस्वरूप उद्योग आधारित संपन्न देश अब अपनी कृषि-नीति बदलने के लिए मजबूर हुए हैं। उन देशों में जैविक कृषि-उपज को अधिक दाम देकर खरीदना प्रारंभ हुआ है, किंतु आधुनिकता के नाम पर पश्चिमी देशों का अधानुकरण करनेवाले हमारे

विराट् पुरुष

नेतागण अब असमंजस में पड़े हैं, किंतु क्या वे बड़े-बड़े किसानों और पूंजीपतियों के प्रभाव से स्वयं को मुक्त करा पाएंगे?

भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व में अपनी अनोखी विशेषता रखती है। वह मानव में कृतज्ञता का भाव अंकुरित व पल्लवित करती है। फलस्वरूप, भारतीय परंपरा सभी उपकारक तत्वों को पूज्य मानती है। वह हिमालय को देवता, गंगा को गंगा-माता, भूमि को भूमाता और गाय को गो-माता के रूप में अनुभव करती है। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति प्रकृति का स्वार्थसिद्धि के लिए शोषण करना नहीं सिखाती। अपितु स्वयं को प्रकृति की संतान मानकर प्रकृति का शोषण नहीं—दोहन करती है, मानो बच्चा मां का दूध पीकर स्वयं को बलवान बनाते हुए मां को भी सुख पहुंचाता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार किसान की कृषि-भूमि के प्रति पूज्य भाव होने के कारण उसका व्यवहार कृषि-भूमि के प्रति संतानवत् रहता है। कृषि-भूमि से प्राप्त धन-धान्य के कारण वह उसकी उर्वरा शक्ति सदा-सर्वदा कायम रखने के लिए जी-जान से जुटा रहता रहा है।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त उपभोग-प्रवण लोग अपनी देशी गायों की महत्ता समझ नहीं पाए। वे गाय को एक दूध देनेवाला प्राणी मात्र मानने लगे। ठंडे देशों की गायें अधिक दूध देती हैं। इस कारण, हमारे नेताओं का उन गायों के प्रति आकर्षण बढ़ा। उन्होंने होलस्टिन, स्विस् ब्राउन और जर्सी नस्ल के विदेशी सांडों का वीर्य आयात कर अपने देशी गायों का कृत्रिम गर्भाधान करना प्रारंभ किया। वह अभियान व्यापक स्तर पर चलाया। इस कारण अपने देश की गायों की मूल नस्ल मिलना कठिन हो गया है। उपर्युक्त अभियान के कारण अपने देश का कितना नुकसान हुआ, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

देशी गायें भारत की अर्थव्यवस्था की आधारशिला रही हैं। गाय और कृषि एक-दूसरे से अभिन्न हैं। गायों से मानव को दूध अवश्य मिलता है, किंतु जैविक कृषि का मूल आधार गोवंश ही है। यह विशेषता हमारे आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों को ज्ञात नहीं है। देशी गायों द्वारा प्राप्त बछड़े केवल जैविक कृषि-कार्य के आधार ही नहीं, अपितु यातायात में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है। व्यापक स्तर पर बने रेलमार्ग तथा रोडवेज के विशाल विस्तार के बावजूद देश का लगभग पचास प्रतिशत यातायात आज भी बैलों द्वारा ही होता है।

गोवंश खेती के सभी कार्य संपन्न करते हुए आवश्यक मात्रा में जैविक खाद भी उपलब्ध कराता है। उसके लिए किसान को अतिरिक्त धन खर्च करना नहीं पड़ता। किसानों को स्वावलंबी बनाने में गोवंश आधारभूत साधन है। खेती के उपकरण गांव के ही बढ़ई और लौहार बना देते रहे हैं। इस कारण किसान को किसी का मुखापेक्षी बनना नहीं पड़ता था। इस प्रकार, किसान लोकतंत्र का सर्वप्रमुख आधार था।

देशी गायों का मूत्र (गोमूत्र) फसलों की बीमारियों का निराकरण करने में समर्थ है। यदि फसलों पर अधिक प्रबल कीटाणुओं का आक्रमण हुआ तो गोमूत्र में कड़वे नीम की पत्तियां दस दिन सड़ाने के बाद वह मिश्रण पानी में तीन प्रतिशत मिलाकर उसका छिड़काव किया तो घातक

से घातक रोगों के कीटाणुओं का सफाया होता है। इसके अतिरिक्त फसलों पर बौने के एक माह बाद से फसल में फूल आने तक पानी में दो प्रतिशत शुद्ध गोमूत्र मिलाकर पंद्रह-बीस दिन में एक बार छिड़काव किया गया तो फसल का विकास अधिक गति से होता है, फसल अधिक सतेज और तगड़ी बनती है तथा अधिक उपज प्रदान करती है। ये सब प्रयोगसिद्ध तथ्य हैं। ये गुण देशी गायों के मूत्र में ही पाए जाते हैं। विदेशी सांडों के वीर्य से संकरित गायों के बछड़े अपने देश की जलवायु में न खेती के काम आ पाते हैं, न यातायात के। पश्चिमी देशों में बछड़ों का मांस लोकप्रिय है। अपने देश में उसे अपनाना संभव नहीं है।

हमारी परंपरा में हर किसान गोपालक रहा है। भारत में गऊ के बिना किसान ढूंढ़ने से भी नहीं मिलता था। हर किसान के यहां दूध, दही, मट्ठा आदि उपलब्ध होता था। फलस्वरूप, देश में कुपोषण की समस्या का नामोनिशान नहीं था। हमारे देश में दूध बेचने की प्रथा थी ही नहीं। गोवंश धन-धान्य उत्पादन का आधार था। गोवंश का उदर-भरण उन पदार्थों से होता है, जो मानव के लिए अखाद्य हैं। बूढ़ी गाय और बैल काम लायक न रहने पर भी किसान के लिए बोझ नहीं बनते थे। प्रति बूढ़ी गाय या बैल केवल चारा-पानी पाकर रोज कम-से-कम 13 कि.ग्रा. गोबर देते हैं। इस गोबर का बायो-गैस संयंत्र में उपयोग करने पर ऊर्जा प्रदान करनेवाली गैस तथा उत्तम खाद प्राप्त होती है। मरने पर चमड़ा, हड्डियां, सींग और खुर के अलग से दाम मिलते हैं। हड्डियों का चूरा जैविक खाद की शक्ति बढ़ाता है। जैविक खाद से खेती की प्रति एकड़ उपज भी आधुनिक कृषि से अधिक होती थी, इसके प्रमाण इतिहास में मौजूद हैं। अब विश्व में जैविक कृषि पद्धति अपनाना प्रारंभ हुआ है। अपने देश के युवाओं को जैविक कृषि का विश्व के लिए अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करने का अनोखा मौका मिला है।

8

अब भी जारी 'फूट डालो और राज करो'

स्वतंत्र भारत के संविधान पर अंग्रेजों की शासन-प्रणाली छाई हुई है। अंग्रेजों का प्रशासनिक ढांचा, जो गुलामी में हम पर लादा गया था, उसे उसी रूप में हमने अपने लिए कायम रखा है।

स्वतंत्र भारत का शासन विभेदकारी 'पार्टी डेमोक्रेसी' के नाम पर चलाया जा रहा है। यदि वस्तुस्थिति को समझें तो हमें अनुभव होगा कि स्वतंत्र भारत की राजनीति गुलामी के काल में अंग्रेजी शासन की नीति के समान 'डिवाइड ऐंड रूल' यानी 'फूट डालो और राज करो' की ही कार्बन-कॉपी है।

आजादी के 58 साल में अपवादस्वरूप केवल एक ही देशभक्तिपूर्ण कार्य हुआ है। वह है स्व. सरदार पटेल द्वारा 500 से अधिक देशी रियासतों का भारत में विलीनीकरण। इसके अतिरिक्त 1947 के बाद अपना समाज जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयवाद, संप्रदायवाद तथा पार्टीवाद

विराट् पुरुष

के कारण अधिकाधिक बिखरता जा रहा है। पार्टी आधारित शासन डेमोक्रेसी की विडंबना मात्र है। वह लोकाभिमुखी न होकर गुलामी के काल जैसी सत्ताभिमुखी है।

देश स्वतंत्र होने के बाद सभी पार्टियाँ आम लोगों को स्वावलंबी व कर्तव्यवान बनाने का काम नहीं करतीं। वे उन्हें हर आवश्यकता पूर्ति के लिए सरकार पर निर्भर रहने के लिए ही उकसाती हैं। रचनात्मक कार्य करने के स्थान पर गुलामी के दिनों जैसी ही आंदोलन, प्रदर्शन, धरने हड़ताल और तोड़-फोड़ तक करने के लिए लोगों को भड़काती है। मानो देश के नवनिर्माण का दायित्व केवल सरकार का है, विरोधी दलों और सामान्य जनो का नहीं है। फलस्वरूप, स्वतंत्र भारत में देशभक्ति एवं सामाजिक कर्तव्य की भावना जगाने का मूलभूत कार्य कोई नहीं कर रहा है। इस कारण समाज में देशभक्ति की भावना लुप्त हो गई है। क्या यह स्वतंत्र भारत का अपेक्षित वातावरण है?

स्वतंत्रता संग्राम में कठोरतम यातनाएं सहनेवाले स्व. जयप्रकाशजी ही एक ऐसे अग्रिम पंक्ति के नेता रहे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत में अपने लिए कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया। अंतिम सांस तक वे देश और समाज की उन्नति के लिए लड़ते रहे। पार्टी डेमोक्रेसी भारत के लिए घातक बनेगी, यह उनका सुविचारित मत था।

उन्होंने अपने इतिहास तथा दुनिया भर की शासन-प्रणालियों का गहन अध्ययन कर भारत के लिए 'पार्टीलेस डेमोक्रेसी' को उपयुक्त माना था। उनके इस सुझाव को किसी भी नेता या पार्टी तथा मीडिया ने पसंद नहीं किया। सभी ने 'पार्टीलेस डेमोक्रेसी' की कल्पना को अव्यावहारिक करार दिया। फलस्वरूप, जयप्रकाशजी राजनीतिक क्षेत्र में अनेक वर्षों तक उपेक्षा के शिकार बने रहे, किंतु वे अपनी बात पर अडिग रहे। लगभग छह दशकों का अनुभव जयप्रकाशजी के विचार की महत्ता अनुभव कराता है।

पार्टी आधारित डेमोक्रेसी के कारण नेतागण देश को सुशासन देने के स्थान पर सत्ता-संघर्ष में ही उलझे हुए हैं। सत्ता पाने के लिए विधि-निषेध की उन्हें परवाह नहीं है। 'आयाराम-गयाराम' का मार्ग अपनाने में उन्हें संकोच नहीं है। क्षेत्रीयता, जातीयता व सांप्रदायिकता के गटजोड़ से सिद्धांतहीन सरकारें बनाई जा रही हैं। राजनीति में अखिल भारतीय जीवन-दृष्टि की अवहेलना हो रही है। केवल सत्ता पाने का लक्ष्य ही सर्वोपरि बना है।

1969 में सत्ता में बने रहने के लिए प्रधानमंत्री इंदिराजी ने अपनी ही पार्टी कांग्रेस को खंडित किया था। जब सत्ता पाना ही नेताओं तथा पार्टियों का लक्ष्य बना है तो सभी पार्टियाँ हर स्तर पर गुटबाजी की शिकार बनी हैं। राजनीति आदर्श-विहीन बनी है। केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारें अस्थिर होने लगी हैं। भ्रष्टाचार अनियंत्रित हो गया है। अराजकता देशव्यापी बनी है। शासन से जनता का भरोसा उठ गया है।

स्वतंत्रता के 58 साल में किसी भी पार्टी की सरकार ने छह लाख गांवों में रहनेवाली लगभग तीन-चौथाई आबादी की ओर देखा तक नहीं है। यह है हमारा प्रचलित लोकतंत्र। बेकारी और गरीबी की यातनाओं से त्रस्त होकर देश के अनेक भागों में लोग आत्महत्याएं कर रहे हैं, किंतु

देश के व्यक्तिवादी व सत्ताप्रेमी नेता अपनी सत्ता कायम रखने या पाने के लिए करोड़ों रुपयों के वारे-न्यारे कर रहे हैं। उन्हें देश और समाज की दुर्दशा की तनिक भी परवाह नहीं है। यह है पार्टी डेमोक्रेसी की दिशा और दशा।

गुजरात में श्री चिमनभाई पटेल की सरकार के भ्रष्टाचारी व अधिनायकवादी तौर-तरीकों से तंग आकर क्रुद्ध युवाओं ने सरकार के खिलाफ 'नवनिर्माण' आंदोलन प्रारंभ किया था। प्रांत भर के युवजनों ने एकजुट होकर अपने आंदोलन को दुर्दमनीय बनाया था। परिणामस्वरूप, चिमनभाई पटेल की सरकार का टिकना असंभव हुआ था। गुजरात में युवा-शक्ति के स्वप्रेरित उभार से जयप्रकाशजी का युवा-शक्ति पर विश्वास द्विगुणित हुआ। उन्होंने 'समग्र-क्रांति' द्वारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन प्रारंभ करने के लिए यही समय उपयुक्त समझा।

1974 में बिहार के भ्रष्ट शासन के खिलाफ उन्होंने अपना स्वास्थ्य खराब होते हुए भी 'समग्र-क्रांति' अभियान की शुरुआत की। जयप्रकाशजी की किडनी काम करने से इनकार कर चुकी थी। हर हफ्ते उन्हें डायलिसिस करवाना अनिवार्य हुआ था। अधिक आयु के कारण कमजोरी भी बढ़ रही थी। फिर भी देश की गंभीर हालत ने उन्हें बेचैन कर दिया था। वे अपनी बीमारी व कमजोरी की परवाह किए बिना गांव-गांव का दौरा करने लगे। युवक-युवतियां तपस्वी जयप्रकाशजी की व्याकुलता और हिम्मत देखकर 'समग्र-क्रांति' में जी-जान से जुटने लगे। बिहार के विद्यालयों से युवक-युवतियां टोलियां बनाकर गांव-गांव में 'समग्र-क्रांति' के जुलूस निकालने लगे थे। विद्यार्थी परिषद् के युवकों ने भी इसमें योगदान दिया। बिहार की संपूर्ण युवा-शक्ति 'समग्र-क्रांति' अभियान में उमड़ पड़ी।

जयप्रकाशजी ने 14 नवंबर, 1974 को पटना में विधान सभा भवन पर प्रदर्शन की घोषणा की। सरकार ने जगह-जगह बैरिकेड खड़े कर प्रदर्शनकारी विधानसभा भवन न पहुंचें, इसका जोरदार बंदोबस्त किया था। किंतु उभरती युवा-शक्ति के जोश का तूफान इतना प्रबल था कि सारे बैरिकेड बेकार सिद्ध हुए। हजारों की संख्या में युवक-युवतियां जयप्रकाशजी के नेतृत्व में विधानसभा भवन की ओर बढ़ रहे थे। इनमें किसी भी राजनीतिक पार्टी या नेता का योगदान नहीं था। पुलिस के अश्रुगैस और लाठीचार्ज के बावजूद जुलूस तितर-बितर न होकर आगे ही बढ़ता गया। युवक-युवतियों के सर फटकर लहलुहान होते देख जयप्रकाशजी स्वयं आगे बढ़े। उन पर भी लाठी प्रहार करने में पुलिस ने संकोच नहीं किया। थके-मांदे जयप्रकाशजी घायल अवश्य हुए, किंतु प्रभु कृपा से उनके प्राण बच गए।

जवानों के इस विशाल हुजूम में से किसी एक ने भी पुलिस पर पथराव नहीं किया। तोड़-फोड़ की एक भी घटना नहीं घटी। यह थी तपस्वी जयप्रकाशजी के व्यक्तित्व की महिमा।

पटना में जयप्रकाशजी पर हुए लाठी-प्रहार की निंदा देश भर में प्रतिध्वनित हुई। जयप्रकाशजी के साहसी साथी स्व. रामनाथ गोयनकाजी हर कदम पर 'समग्र-क्रांति' का साथ दे रहे थे। 'समग्र-क्रांति' के वे आधारस्तंभ ही थे। उनके द्वारा प्रस्थापित 'इंडियन एक्सप्रेस' के देशव्यापी

विराट् पुरुष

समूह ने 'समग्र-क्रांति' की लहर देश भर में फैलाई। देश भर की युवा-शक्ति ने 'समग्र-क्रांति' का आह्वान स्वीकार किया था। श्रीमान चंद्रशेखर ने जयप्रकाशजी के अभियान की दुर्दमनीयता का अनुभव किया था। उन्होंने जयप्रकाशजी से टकराव न लेने की प्रधानमंत्री को सलाह दी थी, लेकिन इंदिराजी किसी की भी परवाह करने के मूढ़ में नहीं थीं।

दिनांक 12 जून, 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इंदिराजी की लोकसभा सदस्यता निरस्त की थी, किंतु इंदिराजी गैर-कानूनी ढंग से गद्दी पर बनी रहने पर उतारू थीं। इंदिरा गांधी ने जयप्रकाशजी के नेतृत्व में जन सैलाब की प्रबलता देख 25 जून, 1975 को आधी रात में देश पर 'इमरजेंसी' लादी। देश के विरोधी दलों के (कम्युनिस्टों को छोड़कर) सभी नेताओं, कार्यकर्ताओं और युवाओं को रातोंरात जेलों में ठूस दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगाया। मीडिया के मुंह पर ताला ठोक दिया। अपने विरुद्ध उठनेवाली आवाज को बंद कर दिया। किंतु स्व. रामनाथजी गोयनका का इंडियन एक्सप्रेस समूह अपनी जिद पर अड़ा रहा।

इंदिराजी की तानाशाही के सामने संपूर्ण देश डेढ़ साल चुपचाप दिखाई पड़ा। इंदिराजी ने समझा कि अब उनके विरुद्ध खड़ा होने की कोई हिमाकत नहीं कर सकता। इसी मुगालते में इंदिराजी ने 1977 के प्रारंभ में आम चुनाव करने की घोषणा कर दी। जयप्रकाशजी की शारीरिक अवस्था ठीक नहीं थी। लेकिन अपनी लक्ष्य-पूर्ति पर अडिग रहने का दुर्दम्य साहस उनमें कायम था। उन्होंने देश भर के चुनाव का नेतृत्व किया। फलस्वरूप, 1977 के आम चुनाव में इंदिराजी का अहंकार मटियामेट हुआ और देश तानाशाही से मुक्त हुआ।

मोरारजीभाई देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी। लेकिन राजनेताओं की आंखें खुल नहीं पाईं। वे पूर्ववत् व्यक्तिगत सत्ताधीश बनने के आपसी संघर्ष में जुट गए। इन नेताओं में से कोई भी जसलोक अस्पताल में मृत्यु-शैया पर पड़े जयप्रकाशजी को देखने तक नहीं पहुंचा। जयप्रकाशजी ने अंतिम सांस ली।

अपने देश का इतिहास बता रहा है कि देश की तरुणाई ने ही हर समय देश को महान् संकटों से बचाकर उन्नति के मार्ग पर गतिशील बनाया था। 1947 में स्वतंत्रता पाने के बाद भी देश के वयोवृद्ध नेताओं ने देश को विकट संकट में ला पटका है। युवाओं को ही फिर से देश को उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ाना होगा।

9

समाज की अवधारणा के प्रतिकूल सत्तापिपासु दल

सन् 1977 के आम चुनाव में श्रीमती इंदिराजी की तानाशाही से देश मुक्त हुआ। पार्टी डेमोक्रेसी पूर्ववत् चलने लगी। श्री मोरारजी भाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी। इस क्रांतिकारी परिवर्तन के प्रणेता जयप्रकाशजी के प्रति सत्ता को पूजनेवालों के मन में कृतज्ञता का

अपेक्षित भाव दिखाई नहीं दिया। आपातकाल का संकट झेलने के बावजूद वे सत्तासुख भोगने में ही कृतार्थता अनुभव करने लगे। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में आवश्यक परिवर्तन करने की किसी को चिंता नहीं हुई।

दीनदयाल शोध संस्थान ने 1977 की 25 सितंबर को स्व. दीनदयालजी की जयंती पर गोंडा जिले में 'जयप्रभा ग्राम' की स्थापना की। जयप्रकाशजी के 'समग्र-क्रांति' अभियान को आगे बढ़ाए बिना भारत का भविष्य उज्ज्वल बनाना संभव नहीं है, यह दीनदयाल शोध संस्थान की धारणा थी, दीनदयालजी द्वारा प्रणीत 'एकात्म मानव दर्शन' की अवधारणा एवं जे.पी. की 'समग्र-क्रांति' की अवधारणा में विशेष अंतर नहीं था। दीनदयालजी ने एक और पहलू उसमें जोड़ा था। वह था—अपनी गतिशील संस्कृति को यथास्थितिवादियों के चंगुल से छुड़ाकर पूर्ववत् गतिमान बनाना। अतः दीनदयाल शोध संस्थान देश के ग्रामीण अंचल में जयप्रकाशजी एवं दीनदयालजी की अवधारणाओं को साकार करने के प्रयोगों में जुट गया।

सत्ता-प्राप्ति की आकांक्षा से प्रेरित विभिन्न पार्टियों से बनी जनता पार्टी का अस्तित्व टिकाए रखने की चिंता की अपेक्षा स्वयं सत्ता में शीर्ष पद पाने की ही प्रवृत्ति अधिक प्रबल थी। 1978 के अप्रैल माह के प्रारंभ में मैंने प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई से सविनय अनुरोध किया था कि वे अब प्रधानमंत्रित्व का दायित्व स्वयं छोड़कर अपने पसंद के किसी योग्य युवा नेता को सौंप दें। इससे उनकी कीर्ति सदा-सर्वदा बनी रहेगी। मेरे इस प्रस्ताव से मोरारजी भाई नाराज हुए। वे प्रधानमंत्री पद से हटना नहीं चाहते थे। मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक कहा कि जनता पार्टी की सरकार अब आपके नेतृत्व में अधिक दिन टिक नहीं पाएगी। मेरे इस कथन से वे और अधिक क्रुद्ध हुए। मेरे इस प्रस्ताव का पत्र उन्होंने फाड़कर फेंक दिया। मेरे इस प्रस्ताव से मेरे पुराने जनसंघी साथी भी नाराज हुए। उन्होंने श्री कंवरलाल गुप्ता को मेरे पास भेजा। मैं अपना प्रस्ताव वापस लूं, इसका उन्होंने आग्रह किया।

मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में कहा, "आप लोग बहुत बड़े नेता हैं। आपको अपने पैरों तले से खिसकती जमीन दिखाई नहीं देती। श्रीमती इंदिराजी ने आपकी पार्टी की कमजोरी पहचान ली है। आपकी पार्टी में संजय गांधी ने जबरदस्त संध लगाई है। अतः मोरारजी भाई के नेतृत्व में आपकी सरकार अधिक समय तक चलनेवाली नहीं है।" मेरी बात पर उन्होंने भरोसा नहीं किया। अतः जो होना था, हो गया। चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री पद की लालसा में श्रीमती इंदिराजी के झंसे में आए। मोरारजी भाई की सरकार को धराशायी किया। सब भौंचक्के रह गए। चापलूस अधिकारियों तथा स्वार्थी साथियों की सलाह से देश की हुकूमत चलानेवालों की यही दुर्गति होती है।

सत्ता से वंचित होते ही जनता पार्टी का बिखरना अवश्यंभावी था। भारतीय जनसंघ के कुछ नेताओं ने 'भारतीय जनता पार्टी' के नाम से कार्य करने का निर्णय लिया। 1980 में मुंबई में 'भारतीय जनता पार्टी' का प्रथम अधिवेशन हुआ। उसमें दीनदयालजी के 'एकात्ममानव दर्शन' को तिलांजली दी गई। गांधीवादी समाजवाद का दर्शन अपनाया गया। इस पर संघ-नेतृत्व ने

विराट् पुरुष

कोई आपत्ति नहीं की। परिणामस्वरूप 'भारतीय जनता पार्टी' अन्य दलों के समान एक और सत्ता-पिपासु पार्टी अस्तित्व में आई।

11 फरवरी, 1968 की प्रातः मुगलसराय स्टेशन की रेल पटरियों से सटा पड़ा दीनदयालजी का शव पाया गया। संयोगवश, परमपूज्य गुरुजी उस समय बनारस में ही थे। वे पोस्टमार्टम के स्थान पर दीनदयालजी के शव का अंतिम-दर्शन करने पहुंचे। प.पू. गुरुजी दीनदयालजी को बहुत मानते थे। उनके मुंह से अनायास शब्द निकल पड़े, "तुम तो नहीं रहे, तुम्हारे 'एकात्म मानव दर्शन' का क्या होगा?" प.पू. गुरुजी के ये शब्द मेरे अंतःकरण को सतत चुभते रहते हैं।

संघ कार्य से लगभग प्रारंभ से जुड़े मा. बाबासाहेब आपटे परमपूज्य डॉक्टरजी के साथ छाया के समान जुड़े हुए थे। प.पू. डॉक्टरजी की आकांक्षाओं को साकार करना मा. आपटेजी का जीवन-व्रत था। अपने देशव्यापी समाज को अपना परिवार मानकर तदनुसार संघ स्वयंसेवक अपनी जीवन-रचना करें, यह प.पू. डॉक्टरजी की आकांक्षा थी। संघ-कार्य की इस विशेषता को मा. आपटेजी ने आत्मसात् कर लिया था।

1946 की 16 अगस्त को मुसलिम लीग ने कलकत्ते से अपना 'डायरेक्ट एक्शन' प्रारंभ कर हिंदुओं का कत्लेआम किया था। देश भर में हिंदू-मुसलिम दंगे भड़क उठे थे। संयोगवश, उन्हीं दिनों मा. आपटेजी अपने प्रवास के कार्यक्रम के अनुसार गोरखपुर पहुंचे थे। मैं उस समय गोरखपुर विभाग का संघ-प्रचारक था।

गोरखपुर में संघ की शाखाएं बहुत अच्छी थीं। नगर की 6 शाखाओं में एक हजार से अधिक दैनिक उपस्थिति रहती थी। अधिकांश संख्या तरुणों की ही होती थी।

गोरखपुर में मुसलिम आबादी काफी थी। अतः गोरखपुर में दंगे की आशंका से लोग भयभीत थे। शहर के पढ़े-लिखे और प्रतिष्ठित लोग 40-50 की संख्या में मा. आपटेजी से मिलने आए थे। उन सबने मा. आपटेजी से आग्रह किया था कि वे संघ द्वारा हिंदुओं की रक्षा करने का दायित्व संभालें। मा. आपटेजी ने इन लोगों से कहा, "आपकी यह अपेक्षा स्वाभाविक है। किंतु संघ यह दायित्व स्वीकार नहीं कर सकता।" इस पर गोरखपुर के सबसे बड़े वकील श्री हरिहर प्रसाद दुबे ने खड़े होकर कहा, "यदि आपका संघ यह दायित्व स्वीकार नहीं करेगा तो आपके हिंदू-संगठन की आवश्यकता ही क्या है?" इसी अर्थ के तर्क अन्य लोगों ने भी प्रकट किए।

मा. आपटेजी ने इन लोगों से प्रार्थना की, "आप कृपया शांति से संघ की भूमिका समझने का प्रयास करें। संघ-निर्माता प. पू. डॉक्टरजी ने सब प्रकार के अनुभवों के बाद संघ की नीति-निर्धारित की है। अभी तक हिंदुओं की सुरक्षा एवं उत्थान का दायित्व कोई-न-कोई संस्था निभाने के लिए सामने आती रही। समाज स्वयं असंगठित और निर्बल बना रहता था। संस्थाएं तो आती-जाती रहती हैं। समाज स्थायी तत्त्व है। यदि वह स्वयं समर्थ और स्वावलंबी न बना और किसी न किसी के आश्रय का मुखापेक्षी बना रहा तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ेगा। संघ हिंदू समाज को समर्थ एवं स्वावलंबी बनाना चाहता है। संघ हिंदू समाज के संरक्षण का श्रेय लेकर वाहवाही लूटना नहीं चाहता। आप सब हिंदुओं के नाते समाज की सुरक्षा करने के लिए

स्वयं सिद्ध हों, तो संघ के स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक के नाते नहीं, अपितु हिंदू होने के नाते हर प्रकार के संकट में सबसे आगे दिखाई देंगे।''

मा. आपटेजी के विचारों से सब सहमत हुए। सबने तय किया कि वे नगर के सभी मोहल्लों में मा. आपटेजी की सलाह के अनुसार सिद्धता करेंगे। फलस्वरूप, गोरखपुर दंगे से पूर्णतः बच गया था। संघ की इस घटना ने मेरे अंतःकरण पर संघ के मर्म की अमिट छाप छोड़ी है। मा. आपटेजी संघ-कार्य को संकुचित दायरे में जकड़ना नहीं चाहते थे। प.पू. डॉक्टरजी की आकांक्षा के अनुसार संपूर्ण समाज को अपना परिवार मानने की अवधारणा को व्यावहारिक धरातल पर साकार करना ही संघ का एकमेव कार्य मानते थे।

राजनीतिक पार्टी बनाने से संघ परोक्ष रूप से ही क्यों न हो, एक पार्टी बने बिना नहीं रहेगा। यह प.पू. डॉक्टरजी की अवधारणा के पूर्णतः प्रतिकूल है। परोक्ष रूप से भी दलगत राजनीति में पड़ने से संघ संपूर्ण समाज का रूप खो बैठेगा। अतः वे अपनी अंतिम सांस तक संघ को दलगत राजनीति से पूर्णतः अलिप्त रखने का आग्रह करते रहे हैं। 50 साल के अनुभव के बाद यह सिद्ध हुआ है कि मा. आपटेजी का चिंतन वास्तविकता की कसौटी पर खरा उतरा है।

10

फिर कायम हो एकात्मता की परंपरा

विशाल भारत प्राकृतिक विविधताओं से भरा पड़ा है। एक ही समय अपने देश में उष्ण, शीत व मध्यम जलवायु विद्यमान रहती है। विभिन्न अंचलों में बहुविध प्रकार की वन-संपदा उपलब्ध है। अनेक प्रकार के खनिज द्रव्यों से भारत का भूगर्भ संपन्न है। खाद्यान्नों एवं फलों-फूलों के कई प्रकारों का देश में उत्पादन होता है। रहन-सहन में और रूप-रंग में भी बहुत अंतर है। बोलियों और लिपियों की विविधताएं भारत की अपनी ही विशेषता हैं।

इतनी विविधताओं के बावजूद हजारों सालों से देशवासियों में एकात्मता की अखंड परंपरा चली आ रही है। यह हमारे पूर्वजों की कठोर साधना का अनोखा प्रतिफल है। कुंभ मेलों, चारों धामों की यात्राओं और अमरनाथ के दर्शन जैसे असंख्य देशव्यापी श्रद्धा-केंद्रों का जाल सामाजिक एकात्मता का प्रतीक है।

काल के प्रबल प्रवाह, नेतृत्व की ढलती क्षमता, अनेक विदेशी आक्रमणों व गुलामी के कारण इनमें अंतर्निहित एकात्मता की भावना पर लगातार प्रहार होते रहे हैं। चराचर में आत्म-तत्त्व के बोध की जीवन-दृष्टि भी कमजोर पड़ती गई है। फलस्वरूप, समाज में विघटन, अशांति, अनाचार और आपसी कलह बढ़ता जा रहा है।

विकसित कहे जानेवाले संपन्न देशों में आत्म-तत्त्व का बोध दुर्लभ है। उन्होंने उपभोग पूर्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य माना था। उपभोगवादी वृत्ति व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं में ही

विराट् पुरुष

समाधान मानती है। वह मानव की प्राकृतिक विशेषता अर्थात् मानवीयता को उभरने नहीं देती। उन देशों में कौटुंबिक जीवन में आत्म-तत्त्व की भावना पाना कठिन है। पति-पत्नी के आजीवन साथ-साथ रहने की वहां अवधारणा ही नहीं है। ऐसी स्थिति में वहां की नई पीढ़ी में व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि ही पनपना स्वाभाविक है।

उन देशों के उपभोग प्रधान जीवन का प्रभाव स्वतंत्र भारत में तेजी से बढ़ रहा है। उससे पं. दीनदयालजी चिंतित हुए थे। उपभोग का प्रबंध करना शरीरधारी मानव की प्राकृतिक आवश्यकता है, किंतु मानव का जन्म केवल उपभोग पूर्ति के लिए नहीं हुआ है। वह जन्म से ही संवेदनशील होता है। अन्यो के सुख-दुःख में वह सहभागी होता है। दुखियों का दुःख दूर करने पर उसे अनोखा सुख मिलता है। इस दिशा में गतिशील होने में ही मानव जीवन की सार्थकता निहित है। इस संवेदना के अभाव में वह पशु-तुल्य बन जाता है।

लेकिन दुर्भाग्यवश अपना देश भी उपभोग प्रधान देशों के संवेदनहीन मार्ग पर चल पड़ा है। इससे भारत भारत न रहकर, उपभोग-प्रवण देशों का अनुगामी बन रहा है। इससे विश्व से मानवीयता ही मिटने का खतरा खड़ा हुआ है।

इस खतरे को भांपकर स्व. दीनदयालजी ने 'एकात्म मानव दर्शन' का उपाय प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस दर्शन को देश के अनेक प्रतिष्ठित विचारकों के सम्मुख रखा था। उनसे विस्तृत विचार-विनिमय किया था। स्व. श्री राजगोपालाचारी ने भी इसे सराहा था। प.पू. गुरुजी ने इसे 'सामाजिक संजीवनी' कहा था। भारतीय जनसंघ के विजयवाड़ा अधिवेशन में इसे सर्वसम्मति से स्वीकृत किया था, किंतु दीनदयालजी की हत्या के बाद उनके 'एकात्म मानव दर्शन' को भी सबने तिलांजलि दे डाली है।

'एकात्म मानव दर्शन' भारतीय जीवन दर्शन का ही नया नामकरण माना जा सकता है। भारतीय जीवन दर्शन मानव मानव में भेद नहीं करता। अन्यथा चराचर में आत्म-तत्त्व अनुभव करने की संभावना ही नहीं होती। वह हर एक नागरिक को मानव मानकर ही व्यवहार करता है। किसी से भी उसकी उपासना पद्धति, भाषा, क्षेत्रीयता, जातियता या ऊंच-नीचता के आधार पर भेदभाव को अमानवीय मानता है। भारतीय जीवन दर्शन की अपनी ही आर्थिक जीवन-दृष्टि है। अन्य देशों में व्यक्तिगत समृद्धि के लिए ही काम करने की प्रेरणा मिलती है। व्यक्तिगत समृद्धि के लिए ही वहां व्यावसायिक-संगठन खड़े होते हैं।

किंतु भारत में बिलकुल अलग ही आर्थिक जीवन-दृष्टि रही है। यहां जातियां व्यवसाय के आधार पर अवश्य संगठित हुई थी। हर एक जाति का लक्ष्य संपूर्ण समाज की एक न एक आवश्यकता पूर्ण करना था। व्यक्तिगत समृद्धि के लिए जातियों का गठन नहीं हुआ था। हर व्यक्ति संपूर्ण समाज को अपना व्यापक परिवार मानकर उसे सुखी और समृद्ध बनाने के लिए अपना जीवन लगाता था। उसी में उसका कुटुंब भी पला करता था। संत कबीर का जीवन उसी का एक नमूना था। भारत में ऐसे संत लगभग हर जाति में हुए हैं। इस विशेषता के कारण ही भारत में 'वर्ग-संघर्ष' की कल्पना उद्भव ही नहीं हुई थी। 'वर्ग-संघर्ष' समाज में विद्वेष, विघटन

और कलह पैदा करता है। वह एकात्मता के पूर्णतः विपरीत है। इस वस्तुस्थिति का बोध न होने के कारण जो व्यक्ति समाज में एकात्मता का प्रतिपादन करता है, वही व्यक्ति 'वर्ग-संघर्ष' मूलक यूनियनबाजी की भी वकालत करता है। ऐसे परस्पर विरोधी कार्य 'भारतीयता' के नाम पर स्वतंत्र भारत में चलाए जा रहे हैं।

भारत की औद्योगिक नीति एकात्मता के आधार पर चला करती थी। उद्योग के तीन अंग हैं—पूंजी, श्रम और प्रबंध। उद्योग की सफलता इन तीनों अंगों की परस्पर-पूरकता पर निर्भर करती है। उद्योग का लक्ष्य समाज की आवश्यकता पूर्ण करना था। बचत पर तीनों अंगों का समान अधिकार होता था। उद्योगों की इकाई परिवार होती थी। परिणामस्वरूप, समाज में न विषमता की भीषणता उपस्थित होती थी, न बेकारी की संभावना। स्वतंत्र भारत को उसी आधार पर औद्योगिक नीति विकसित करनी चाहिए थी।

जयप्रकाशजी की 'समग्र-क्रांति' और दीनदयालजी के 'एकात्म मानव दर्शन' का एक ही लक्ष्य है—भारतीय सामाजिक जीवन-दृष्टि को पुनर्प्रस्थापित करना। प.पू. गुरुजी के आशीर्वाद से दीनदयाल शोध संस्थान का जन्म हुआ था। उन्हीं के करकमलों से इसका उद्घाटन हुआ था। उद्घाटन समारोह को पांडिचेरी के अरविंद आश्रम की पूज्य माताजी ने अपना शुभाशीर्वाद भेजा था। दीनदयाल शोध संस्थान 'एकात्म मानव दर्शन' को व्यावहारिक धरातल पर साकार करने के लिए कृतसंकल्पित है। संस्थान ने इस कार्य को अनेक ग्रामीण अंचलों में प्रयोगात्मक रूप में आजमाकर देखा है। इन प्रयोगों के अनुभवों के निचोड़ को चित्रकूट क्षेत्र में अधिक विकसित किया जा रहा है। इन अनुभवों ने 'एकात्म मानव दर्शन' की व्यावहारिकता को रेखांकित किया है।

11

हिंदू-मुसलिम के रूप में समाज को बांटना गलत

लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली से हम अनभिज्ञ नहीं थे। ढाई हजार साल पूर्व भी अपने यहां गणतंत्र के रूप में लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली प्रचलित थी।

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमें देश के लिए अपने गत अनुभवों के आधार पर शासन-प्रणाली स्वयं निर्मित करनी चाहिए थी। भूतकाल में हम केवल स्वतंत्र ही नहीं थे, अपितु सर्वाधिक सभ्य राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित थे। मानव मात्र के सुखमय जीवन-निर्माण करनेवाली संस्कृति के हम अधिष्ठाता थे। कौटुंबिक अवधारणा के आधार पर हमारी शासन-व्यवस्था प्रचलित थी। अपनी गतिशील सामाजिक जीवन-दृष्टि के आधार पर स्वतंत्र भारत की शासन-व्यवस्था हम स्वयं निर्माण कर सकते थे।

किंतु स्वतंत्र हुए भारत के नेतृत्व ने अमानवीय सभ्यता के अधीन संपन्न देशों में प्रचलित

विराट् पुरुष

शासन-व्यवस्था को 'रेडिमेड' व्यवस्था के नाते अपना लिया। दुर्भाग्य से अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करने की बुद्धि समय पर काम नहीं आई। भारत को डेढ़ सौ साल गुलाम बनाकर उसका सब प्रकार से सतत शोषण करनेवाले अंग्रेजों की शासन-प्रणाली जैसी थी—उसी को हमने अपनाया। उसी से देश और समाज का भविष्य-निर्माण करने की हम अपेक्षा कर रहे हैं।

चतुराई से भारत का विभाजन करनेवाले ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ लॉर्ड माउंटबैटन को ही हमने स्वयं स्वतंत्र भारत का प्रथम 'गवर्नर जनरल' बनाया। अंग्रेजों की हुकूमत उखाड़ने के लिए फ्रांसी के कंदों पर झूलनेवाले युवा देशभक्तों की भावनाओं की यह घोर अवमानना थी।

गत 60 वर्षों में हम संसार में सबसे बड़े लोकतंत्र का डंका पीट रहे हैं। किंतु क्या लोकतंत्र की तनिक भी भावना हम कार्यान्वित कर पा रहे हैं? लोकतंत्र में समाज के सभी नागरिकों को स्वतंत्रता की अनुभूति होनी चाहिए। तभी नागरिक देश की उन्नति के लिए जुट सकते हैं। उन्हें अपने देश का उज्ज्वल भविष्य-निर्माण करने की चिंता होती है। तभी वह राष्ट्र उन्नति कर सकता है, किंतु इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, देश के नागरिक हर बात के लिए शासन की ओर टकटकी लगाए हुए हैं, जैसे गुलामी के काल में होता रहा है। वे स्वयं अपनी और अपने देश की उन्नति का मार्ग अपना नहीं रहे हैं। क्या इसे हम लोकतंत्र मानेंगे? जिसमें देश के नागरिक स्वावलंबी नहीं होंगे, उस देश में स्वाभिमान क्या कभी आ सकेगा? स्वाभिमान स्वावलंबन के बिना संभव नहीं है। स्वतंत्र देश का नागरिक स्वयं स्वावलंबी हो, तभी देश की स्वतंत्रता सार्थक है। अन्यथा स्वतंत्रता और गुलामी में कोई अंतर नहीं रह जाता।

देश में 543 निर्वाचित सांसद हैं, इनमें 321 ग्रामीण क्षेत्र से चुनकर आते हैं। 138 सांसद ऐसे चुनाव क्षेत्र से निर्वाचित होते हैं, जिनमें शहरी और ग्रामीण अंचल से मिले-जुले क्षेत्र आते हैं और केवल 84 सांसद शुद्ध शहरी क्षेत्र से निर्वाचित होते हैं। इसका अर्थ है, सांसदों की अधिकांश संख्या ग्रामीण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। वह ग्रामीण क्षेत्र आजादी के 60 साल के बाद भी बेकारी और भुखमरी से त्रस्त है और शहर दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक गुलजार होते जा रहे हैं। क्या यह लोकतंत्र का रूप है?

वस्तुतः स्वतंत्र भारत में राजशाही चल रही है। देश में सभी पार्टियां राजशाही का अवलंबन किए हुए हैं। नेहरू से लेकर श्रीमती सोनिया गांधी तक सभी शासक अपनी-अपनी मनमानी चलाते रहे हैं। उनका केंद्र हमेशा दिल्ली या प्रदेश की राजधानियां रही हैं। अतः देश का सारा ऐश्वर्य इन राजधानियों में समाता गया है। सांसद भी शासकों के अनुसार ही आचरण करते हैं। सभी सांसद दिल्ली और विधायक शहरों में अपने निवास-स्थान बना रहे हैं। अपनी संतान को शहरों में पब्लिक स्कूल में पढ़ा रहे हैं। उन्हें अपने विधायकों के सहयोग से निर्वाचन क्षेत्र के नागरिकों की चिंता करनी चाहिए। इसी के लिए उनको वेतन और भत्ता मिलता है, लेकिन उन्हें यह बात समझाने का आज तक किसी भी पार्टी के नेता ने प्रयास नहीं किया है। अन्यथा देश में गरीबी और भुखमरी की दुर्दशा उत्पन्न ही नहीं होती। सभी नागरिक स्वावलंबी, कर्तृत्ववान और प्रतिभाशाली सिद्ध होते। 60 साल में भारत संसार का अनुकरणीय लोकतंत्र बन जाता। इस

दिशा में सोचने के स्थान पर सभी नेता ऐन चुनाव के मौके पर प्रचार-प्रसार के माध्यम से लोगों को गुमराह कर रहे हैं। भीड़ जुटाने के लिए अब तो अभिनेताओं का भी उपयोग किया जा रहा है और पूंजीपतियों की थैलियां चुनाव में खुलकर काम आ रही हैं। वास्तविकता में यह लोकतंत्र का उपहास है। इस स्थिति के लिए सभी दलों के नेता जिम्मेदार हैं।

राजनेतागण देश में एकात्मता के स्थान पर वोट पाने की राजनीति के लिए कहीं जाति, कहीं मजहब, कहीं क्षेत्रीयता और कहीं भाषा के नाम पर लोगों को विखंडित कर रहे हैं। अंग्रेजी शासन के पूर्व हमारे यहां मुसलिम आक्रमणकारियों का शासन था। उस समय देश में हिंदू-मुसलिम भावना थी, किंतु अब समय बदल गया है। सभी लोग भारत के नागरिक बने हैं। अब हिंदू-मुसलिम के रूप में समाज को बांटना गलत है। हम सभी लोग भारतीय हैं। अपने को भारतीय कहने में किसी को भी ऐतराज नहीं है। इसी भावना को आज महत्व दिया जाना चाहिए। इसी कारण, 'एकात्म मानव दर्शन' को प्रचलित करने की आवश्यकता है। उसके बिना देश को अभिन्न बनाए रखना असंभव है।

12

बहुसंख्यक आमजन की अनदेखी

युगों-युगों से अपना भारतीय समाज विश्व में विराजमान है। उस पर अनेक विदेशियों ने आक्रमण करने के प्रयास किए। लेकिन कुछ आक्रमण सफल होने के कारण हमें गुलामी भी सहनी पड़ी, किंतु गुलामी के काल में भी हमने अपने समाज का अस्तित्व नहीं खोया। तभी हम फिर से स्वतंत्र हो पाए। अपने समाज की मूल प्रवृत्ति सकारात्मक रही है। इसीलिए उसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का लक्ष्य रखा। उसने प्रकृति को मातृवत् माना। अतः उसी की गोद में वह पलता रहा। इसी कारण ग्रामीण जीवन हमारा स्वभाव बना। प्रकृति ही मानव का लालन-पालन करती है। प्रकृति को भोग-भूमि मानकर उसका शोषण नहीं करता, अपितु मातृवत् मानकर दोहन करता है। इसी कारण हम ग्रामों में मिल-जुलकर रहते आए।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद गांधीजी ने नेहरूजी को अपना एकमेव उत्तराधिकारी नियुक्त किया। लेकिन नेहरूजी ने गांधीजी का कहना नहीं माना। वे दुनिया के तथाकथित आधुनिक आर्थिक लाभ के मार्ग पर चल पड़े। नेहरूजी द्वारा प्रतिपादित आधुनिक मार्ग का क्या दुष्परिणाम होता है, यह श्रीमान भारत डोगरा ने निम्न शब्दों में कहा है—

“आज के विकसित देशों में से अधिकांश ने आरंभ में औपनिवेशिक लूट से अपनी समृद्धि की नींव रखी। तरह-तरह की अमानवीय क्रूरता से उन्होंने एशिया व अफ्रीका के महाद्वीपों के अतिरिक्त अमरीका व ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों को लूटा। लाखों लोगों को निर्दयता से मार दिया गया, लाखों को घायल किया गया व लाखों को गुलाम बनाया गया। इतना ही नहीं, जब ये

विराट् पुरुष

देश औपचारिक तौर पर आजाद हो गए, तब भी विकसित देशों ने ऐसी वित्तीय व व्यापारिक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था बनाने की कोशिश की, जिसमें पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था के स्थान पर एक नया उपनिवेशवादी शोषण चलता रहे। इस तरह के शोषण से विश्व के एक अपेक्षाकृत काफी छोटे भाग में अधिकतम सुख-सुविधाएं एकत्र हो पाईं। अब इस जीवन शैली की आदत हो जाने के कारण इसे बनाए रखने के लिए वे बहुत अधिक पर्यावरण विनाश भी कर रहे हैं।''

अमरीका में विश्व के 4 से 5 प्रतिशत लोग रहते हैं। लेकिन उसने अपनी सुख-सुविधाओं के लिए जो साधन खड़े किए हैं, उनसे ग्रीन हाउस गैसों व अन्य हानिकारक गैसों वातावरण में बढ़ रही हैं। जिससे संसार का तापमान बढ़ रहा है और ओजोन परत क्षतिग्रस्त हो रही है। परिणामस्वरूप, मानव 'ग्लोबल वार्मिंग' से आक्रांत है।

आजादी के 60 वर्षों में भारत की दशा क्या हुई है? नेहरूजी के दर्शन से प्रभावित लोग केवल धनार्जन के पीछे पड़े हैं। कतिपय लोग करोड़पति बने हैं। भारत के अंदर ही इन करोड़पति लोगों का एक छोटा अमरीका बनाया जा रहा है। यह वर्ग भी अमरीका की ही भांति कम जनसंख्या होने पर भी देश के अधिकतम संसाधनों का उपभोग करता है, देश के बहुसंख्यक जन के शोषण पर फलता-फूलता है। दुर्भाग्य से देश की शासन व प्रशासन व्यवस्था भी इस वर्ग द्वारा ही बनाई, बिगाड़ी व संचालित की जाती है। इसीलिए सरकार की आर्थिक व प्रशासनिक नीतियों में देश के ही बहुसंख्यक आमजन को स्थान नहीं मिल पाता।

अपने देश में ऐसी स्थिति का होना दुर्भाग्यजनक है। परंतु इस दुर्भाग्यजनक स्थिति के निर्माता भी हम स्वयं ही हैं। आखिर, देश की राजनीतिक सत्ता के बनिस्बत सामाजिक सत्ता को मजबूत, सजग और सचेत बनाए रखने में हम ही तो विफल सिद्ध हुए हैं। ऐसे में किसी दूसरे को दोष दें तो कैसे? इसीलिए आज के इस विकट माहौल में राजनीति को कोसने या दोष देने की बजाय देश की सामाजिक सत्ता को खड़ा करना और उसे सत्ता-राजनीति से मुक्त रखना ही इसका एकमात्र समाधान है। आज जब जीवन के हरेक क्षेत्र में सत्ता-राजनीति हावी है, उससे परे सामाजिक-सत्ता की कल्पना भी हास्यास्पद जान पड़ती है, परंतु यह एक अनिवार्य आवश्यकता है। इससे ही हमारा समाज, प्रकृति और यह जगत् सुरक्षित रह सकते हैं।



1

14 जून, 1969

चि. सौ. स्नेहाशीष प्रिय हंसिका,

मैं परसों केरल प्रदेश में आया हूँ। यहां मुसलिम लीग की मांग के अनुसार मुसलिम बहुल जिले का 'मलापुरम' नाम से निर्माण किया गया है। गत 2 जून से कालीकट में अपना सत्याग्रह चल रहा है। आज से सरकार ने मलापुरम जिले का कार्य प्रारंभ कर दिया है। अतः अपना सत्याग्रह मलापुरम जिला केंद्र अर्थात् मलापुरम जिला कलेक्टरेट के गेट पर था। मैं स्वयं वहां उपस्थित रहा। मैसूर, तमिलनाडू एवं केरल ऐसी तीन टोलियां सत्याग्रह के लिए थीं। प्रदर्शनकारियों की संख्या दो हजार के लगभग रही और सत्याग्रह के स्थान पर दस हजार से अधिक जनता सत्याग्रह को देखने के लिए उपस्थित थी। मैं 22 तारीख तक केरल में ही विभिन्न जिला स्थानों पर जाकर सत्याग्रह को अधिक गति देने का प्रयत्न करूंगा।

23, 24 मेरट रहूंगा एवं 25 को लखनऊ पहुंचूंगा। मैं चाहूंगा कि तुम तुरंत मेरा यह पत्र पाते ही सविस्तार उत्तर देना। चि.प्रि. अरविंद भाई के स्वास्थ्य के बारे में लिखना। पत्र लिखने में थोड़ा भी विलंब न करना।

2

06 जून, 1979

श्रीमान मोरारजी भाई देसाई,
प्रधानमंत्री,

भारत में विशेषतः ग्रामीण क्षेत्र में लगातार बच्चे होने से माताओं के स्वास्थ्य की दयनीय दशा, बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षण तथा उनके समुचित विकास की समस्याओं के कारण देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर प्रतिकूल परिणाम होता जा रहा है। इस चिंताजनक परिस्थिति को ध्यान में लेकर दीनदयाल शोध संस्थान ने अपने देश में तथा विदेशों में संतति नियमन के विषय को लेकर जो अभी तक प्रयोग किए गए हैं, उनका गहराई से अध्ययन किया गया है। फलस्वरूप इस समस्या के निराकरण के लिए, विशेषतः अशिक्षितों तथा भारत के ग्रामीण अंचलों में संतति नियमन की सेवाएं लोकप्रिय बनाने का अभिनव कार्यक्रम तैयार किया गया। व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से संतति नियमन के ज्ञान तथा उपयोगिता को सहज रूप में प्रचारित-प्रसारित करना, संतति नियमन के प्राकृतिक उपाय तथा सरल साधनों को लोकप्रिय

1 हंसिकाबेन मणियार को नानाजी पुत्री समान स्नेह करते थे।

2 संतति नियमन अभियान की विशेष योजना के संबंध में।

विराट् पुरुष

बनाना एवं उसके लिए लोगों में स्वप्रेरणा उदित करना, इस योजना की विशेषता है। इस कार्य के लिए ग्रामीण समुदाय में से ही उपयुक्त व्यक्तियों का महिला एवं पुरुष चयन कर उन्हें इस कार्य के लिए प्रशिक्षित करना और उन्हीं के द्वारा प्राकृतिक उपायों की जानकारी तथा आवश्यकतानुसार गोलियां एवं निरोधों को वितरित करना, यह इस योजना को कार्यान्वित करने का माध्यम होगा।

इसकी व्यवस्था इस ढंग से की जाएगी, जिससे प्रशिक्षित किए गए लोगों के लिए निश्चित किए गए क्षेत्र में संतति निर्माण आयु के सभी दंपतियों में इन बातों को अपनाने में उत्साह निर्माण हो सकेगा। फलस्वरूप लोग प्राकृतिक उपायों का अवलंबन करेंगे या आवश्यकतानुसार गोलियों तथा निरोधों का उपयोग करेंगे। यह कार्य लोग सहज और स्वयं प्रेरणा से करने के लिए अभ्यस्त हों, इसके लिए व्यक्तिगत संपर्क तथा व्यक्तिगत चर्चा को माध्यम बनाया जाएगा। इसके कारण इस योजना के अंतर्गत प्रशिक्षित किए गए लोगों द्वारा चलाए केंद्रों से संतति नियमन के साधन नाममात्र दाम पर लोग खरीदने लगेंगे। इससे प्रशिक्षित लोगों को थोड़ा-बहुत आर्थिक लाभ हो सकेगा।

इस पद्धति की चर्चा समाचार-पत्रों में कराकर अनेक लोगों की प्रतिक्रियाएं जानने का प्रयास किया गया है। देश तथा विदेशों के इस विषय के विशेषज्ञों की विचार-गोष्ठियां आयोजित कर इस पद्धति पर पर्याप्त विचार मंथन भी हुआ है। उन सब लोगों ने यह माना कि यह पद्धति सरल और विशेषतः भारत के ग्रामीण अंचलों में प्रभावी, लोकप्रिय तथा परिणामजनक सिद्ध हो सकेगी, जहां संतति नियमन का अभियान अभी तक सफलता प्राप्त नहीं कर सका।

अभी तक केंद्र तथा प्रादेशिक सरकारों ने नौकरशाही के द्वारा संतति नियमन के कार्यक्रमों को लालच और भय के माध्यम से ही लागू करने के प्रयास किए हैं। आपातकालीन अवधि में केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों ने अनिवार्यता के आधार पर ऑपरेशनों का अभियान चलाया था। फलस्वरूप अशिक्षित तथा ग्रामीण क्षेत्र में इस अभियान को लेकर आतंक और नफरत पैदा हो गई थी। इस पृष्ठभूमि में दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा प्रस्तुत पद्धति, जो स्वयंसेवी संस्था द्वारा लागू की जाएगी, विशेष लाभकारी तथा परिणामजनक सिद्ध हो सकती है। इन सब बातों का विचार कर शोध संस्थान ने एक संतति नियमन योजना निम्न शीर्षक से 'Community based distribution of contraceptives and propagation of Family Planning Education in rural areas of India' स्वास्थ्य मंत्रालय के विचार के लिए गत वर्ष प्रस्तुत की थी। मंत्रालय से प्रार्थना की गई थी कि वह इसे 'यूनाइटेड नेशंस फंड्स फॉर पॉपुलेशन एक्टिविटीज' (यूएनएफपीए) के पास आर्थिक सहायता के लिए अपनी संस्तुति के साथ भेजने की कृपा करे।

इस योजना पर स्वास्थ्य मंत्रालय के अधिकारियों तथा दीनदयाल शोध संस्थान के अधिकारियों की अनेक बैठकें हुईं तथा उनमें इस योजना की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता पर पर्याप्त चर्चा हुई। स्वास्थ्य मंत्रालय के अधिकारियों तथा तत्कालीन स्वास्थ्य राज्यमंत्री द्वारा पूर्ण विचार करने के बाद इस योजना को स्वास्थ्य मंत्रालय से मान्यता प्राप्त हुई। अनेक राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रालयों ने भी इसे बहुत उपयोगी माना तथा उन्होंने केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय को अपनी संस्तुतियां भेजीं। इस योजना पर आपने भी स्वयं की स्वीकृति प्रदान करने की कृपा की थी। इसकी सूचना स्वास्थ्य

मंत्रालय के उपसचिव द्वारा हमारे संस्थान के कार्यालय में भेजी गई। इन सब कार्यवाहियों के बाद यह योजना यूएनएफपीए के न्यूयॉर्क स्थित केंद्रीय कार्यालय को आर्थिक सहायता की स्वीकृति के लिए सरकार के द्वारा भेजी गई थी। उन्हीं दिनों यूएनएफपीए का एक विशेष अध्ययन मंडल अपने देश में आया था। उन्होंने भी दीनदयाल शोध संस्थान के कार्यालय में आकर इस विषय पर हम लोगों से विस्तृत चर्चा की। हमें ज्ञात हुआ है कि यूएनएफपीए के अधिकारियों तथा अन्य विशेषज्ञों ने इस योजना के विषय में निम्न प्रतिक्रिया व्यक्त की है—

“This is the single most important Family Planning proposal in the world, currently under consideration of any agency.” उसके बाद संस्थान के प्रधान सचिव डॉ. जे.के. जैन को यूएनएफपीए से मान्यता प्राप्त तथा संबंधित एक शोध संस्था द्वारा न्यूयॉर्क में आने के लिए निमंत्रण प्राप्त हुआ। डॉ. जैन वहां गए और वहां भी इस योजना पर विस्तृत चर्चा हुई तथा यूएनएफपीए के सभी अधिकारियों की बहुत ही अनुकूल तथा उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया प्राप्त हुई।

हमें अधिकृत सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि यह योजना भारत में कार्यान्वित करने के लिए यूएनएफपीए आवश्यक धन उपलब्ध कराने के लिए सिद्ध है। किंतु स्वास्थ्य मंत्रालय के एकाध अधिकारी न्यूयॉर्क गए थे। वहां उन्होंने स्वास्थ्य मंत्रालय में नए मंत्री आने के कारण भारत सरकार इस योजना को स्वीकृति देने के संबंध में पुनर्विचार कर रही है, ऐसा अनौपचारिक ढंग से मत व्यक्त किया। परिणामस्वरूप यूएनएफपीए के अधिकारियों द्वारा स्वास्थ्य मंत्रालय से पूछा गया है कि इस योजना के संबंध में भारत सरकार का अब तक क्या रुख है। फलस्वरूप यह योजना लगभग गत 6 माह से खटाई में पड़ी हुई है।

यही कारण है कि मैं आपको कष्ट देने के लिए विवश हो रहा हूं। ज्ञात हुआ है कि श्री रवि रेजी ने भी इस योजना पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। ऐसी स्थिति में तथा आपकी स्वीकृति के बाद भी स्वास्थ्य मंत्रालय के कुछ अधिकारी इस अभिनव योजना के कार्यान्वयन के लिए यूएनएफपीए से अधिक सहायता प्राप्त कराने के कार्य को टालने का प्रयास कर रहे हैं। यह आश्चर्य एवं चिंता का विषय है।

3

16 जुलाई, 1979

परमादरणीय श्री मोरारजी भाई,

कल आपने स्वयं प्रधानमंत्री पद से त्याग-पत्र देकर राष्ट्र के समक्ष सत्ता निर्लिप्तता और निष्काम राष्ट्र सेवा का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिससे आपके व्यक्तित्व की गरिमा बहुत बढ़ी है।

भारतीय राजनीति एवं सार्वजनिक वातावरण आज किस खतरनाक दिशा में आगे बढ़ रहे हैं,

विराट् पुरुष

उसे देखकर मेरे जैसे सामान्य कार्यकर्ता बहुत चिंतित और दुःखी है। सत्ताकांक्षा से अभिभूत होकर अनेक वरिष्ठ नेता जिस प्रकार सिद्धांतहीन एवं अनैतिक सौदेबाजी तथा जोड़-तोड़ में लग गए हैं और आपके व्यक्तित्व पर कीचड़ उछालने की कोशिश कर रहे हैं, उससे जनमानस में इस संपूर्ण राजनीतिक ढांचे एवं नेतृत्व के प्रति अनास्था पैदा हो रही है और कभी-कभी भय लगता है कि कहीं जन-असंतोष और अनास्था की यह बाढ़ लोकतांत्रिक ढांचे को ही बहा न ले जाए।

आज हम इतिहास के एक बहुत निर्णायक मोड़ पर खड़े हैं और इस अवसर पर राष्ट्र के सर्वाधिक वयोवृद्ध, अनुभवी एवं आदर्शनिष्ठ नेता होने के नाते आपकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण बन जाती है। मुझे लगता है कि राष्ट्र को निराशा और असंतोष के वर्तमान गर्त से बाहर निकालने के लिए आपकी ओर से कोई चमत्कारिक एवं साहसी कदम उठाना आवश्यक है। मेरी विनम्र सम्मति में जनअसंतोष के उमड़ते हुए ज्वार को शांत करने एवं जनमानस में एक नया आशावाद उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्र के सामने ऐसा नेतृत्व प्रस्तुत किया जाए, जो अपेक्षाकृत युवा एवं संतुलित हो।

मेरी विनम्र सम्मति से इस निर्णायक घड़ी में यदि जनता पार्टी का वयोवृद्ध नेतृत्व श्री चंद्रशेखर जैसे युवा नेता के कंधों पर नेतृत्व का दायित्व सौंपकर सरकार और दल का मार्गदर्शन करने का निश्चय प्रकट करें तो भारतीय राजनीति में निष्काम सेवा का एक नया अध्याय प्रारंभ हो सकेगा। यह कार्य केवल आप जैसा दृढ़वती, निर्लिप्त और समर्पित नेता ही कर सकता है।

अतः मेरा विनम्र निवेदन है कि आप यदि अविलंब जनता संसदीय दल की बैठक बुलाकर स्वयं आगे बढ़कर चंद्रशेखर को जनता संसदीय दल का नेतृत्व सौंपने और जनता पार्टी के अध्यक्ष पद का दायित्व संभालकर शासन तथा दल दोनों को अपना अनुभवी एवं तपस्वी नेतृत्व प्रदान करने का निश्चय प्रकट करें तो निश्चय ही यह राष्ट्र निराशा एवं असंतोष के वर्तमान गढ़े से बाहर निकल सकेगा। साथ ही भारतीय राजनीति में सत्ता-निर्लिप्तता और निष्काम सेवा का एक अध्युत्थ उदाहरण प्रस्तुत करने का गौरव भी आपको प्राप्त हो सकेगा तथा आपके महान् व्यक्तित्व पर कीचड़ उछालनेवाले सभी लोग पूर्णतया निष्प्रभ हो जाएंगे।

इतिहास के ऐसे महत्वपूर्ण मोड़ों पर जो नेतृत्व कुछ साहसी और चमत्कारिक पग उठाता है, वही इतिहास की आंखों में ऊंचा स्थान पाने का उत्तराधिकारी बनता है। सौभाग्य से ऐसा ही अवसर आज आपके सामने उपस्थित है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके जैसा अनुभवी और परिपक्व नेता, जिसने अपनी संपूर्ण आयु राष्ट्र की सेवा में ही लगाई है, अपने जीवन के संध्याकाल में भी इतिहास की इस चुनौती के सामने पराजय स्वीकार नहीं करेगा और संकट की इस घड़ी में राष्ट्र को सही नेतृत्व प्रदान करेगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके ऐसे किसी भी प्रयास में मेरी विनम्र सेवाएं सदैव आपको उपलब्ध रहेंगी।

अंत में मैं आपको यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि यह मेरा व्यक्तिगत मत है

और किसी भी अन्य सहयोगी से परामर्श किए बिना ही मैं अपने मन के भाव को आपके सामने प्रगट करने का साहस कर रहा हूँ।

4

17 जुलाई, 1979

परमादरणीय श्री मोरारजी भाई,

कल ही आपसे मिला था। मेरा पत्र पढ़कर आप नाराज हुए। मेरे विचार से आप सहमत नहीं थे। कल दिन भर अनेक मित्रों से भेंट हुई। उच्चतम न्यायालय के कई अधिवक्ता मिले। वरिष्ठ पत्रकारों से भी चर्चा हुई। आज समाचार-पत्रों में भी सबकुछ छपा है। आपके व्यक्तित्व पर आंच आ रही है। सब यही कह रहे हैं कि प्रधानमंत्री पद से जब आपने त्यागपत्र दिया है तो दल के नेता पद पर बने रहने में क्या अर्थ है? सदन के आधे से अधिक सदस्यों ने जब आप पर अविश्वास व्यक्त किया है तो फिर से उन्हीं लोगों के बीच सत्ता पाने का प्रयास क्यों? उसका उत्तर देना हमारे लिए कठिन हो रहा है। आपके बारे में ऐसी बातें सुनकर मन बहुत उदास और दुःखी हो रहा है। आपके नेता पद पर बने रहने में न सिद्धांतवादिता मानी जा रही है, न उपयुक्तता। संभव है, जन-मन की यह धारणा आप तक पहुंच न पाती होगी।

प्रिय रामकृष्ण हेगड़े ही नहीं, ऐसे आपके अनेक प्रशंसक और सालों से सहयोगी रहे हुए आपके साथी भी बहुत तीव्रता से अनुभव कर रहे हैं कि आप अपने स्थान पर अन्य योग्य व्यक्ति को दल के नेता के रूप में स्वयं पदासीन करें। इसी में आपकी उदारता, महानता और समय-सूचकता है। वर्तमान परिस्थिति में नेता पद पर बने रहने से क्षण-क्षण पर आपकी प्रतिमा धूमिल होती जा रही है। उस कारण मन अत्यधिक उद्धिग्न हो रहा है।

5

31 जुलाई, 1979

प्रिय बंधु,

मेरा यह पत्र देखकर आप संभवतः कुछ आश्चर्य कर सकते हैं, किंतु कार्य की महत्ता ने मुझे यह पत्र लिखने के लिए प्रेरित किया है। बंगलादेश को मान्यता देने में भारत सरकार द्वारा हो रहा विलंब देश के लिए अति घातक सिद्ध हो रहा है। इसके लिए जनसंघ एवं आप सब लोगों द्वारा किया गया अनुरोध एवं प्रार्थना निरर्थक सिद्ध हुई। अतः 1 अगस्त से हम लोगों को सत्याग्रह

4 दल के नेता पद से त्याग-पत्र देने का आग्रह।

5 बंगलादेश को मान्यता देने के प्रश्न पर पत्र।

विराट् पुरुष

करने के लिए विवश होना पड़ा है। सत्याग्रह के लिए देश भर में बहुत उत्साह है। सभी प्रदेशों से बहुत बड़ी संख्या में महिलाएं और पुरुष सत्याग्रही यहां आ रहे हैं।

12 अगस्त को लोकसभा के सामने अति विराट् प्रदर्शन करने का जनसंघ का संकल्प है। उसी प्रकार जैसे 1967 में 16 अगस्त को किया गया था। उसी का परिणाम था कि स्व. लाल बहादुर शास्त्री ने साहस का कदम उठाया और देश का गौरव बढ़ाया। इस प्रदर्शन का भी वही रूप और वही परिणाम निकले यह हम सबकी आकांक्षा है। उसके लिए हम सबको विशेष प्रयास करना पड़ेगा। अतः आपसे सानुरोध आग्रह कर रहा हूं कि आप स्वयं चारों ओर सैकड़ों लोगों को 12 अगस्त के प्रदर्शन में लाने के लिए जुट जाएं। और उन्हें यहां प्रदर्शन में ले आएँ। लोगों को लाने और ले जाने के लिए ट्रेनों और नियमित बसों के अतिरिक्त भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। आप उसकी भी व्यवस्था अवश्य करें। मुझे विश्वास है, परिस्थिति की गंभीरता पहचानकर सभी अड़चनों के होते हुए सैकड़ों प्रदर्शनकारियों को आप साथ में लाएंगे।

6

31 जुलाई, 1979

श्री एच.आर. खन्ना,
कानून मंत्री,

मान्यवर श्री खन्ना साहब,

केंद्रीय सरकार में आप कानून मंत्री पद पर विराजमान हुए हैं। इस मंत्रालय के लिए इतना अच्छा अन्य चयन हो नहीं सकता था। किंतु श्री चरण सिंहजी के मंत्रिमंडल में आपने मंत्रिपद स्वीकार किया है, इस खबर पर प्रथमतः मेरा भरोसा ही नहीं हो रहा था, किंतु यह खबर वास्तविक सिद्ध हुई। शायद इतने आश्चर्य की बात मेरे लिए अन्य नहीं हो सकती थी।

इस मंत्रिपद के कारण व्यक्तिगत रूप से आपकी प्रतिष्ठा तो बढ़ेगी नहीं। आपके कारण शायद मंत्रिमंडल प्रतिष्ठा पा जाए। आपका मेरा व्यक्तिगत संबंध बहुत कम है, किंतु न्यायाधीश के नाते आपकी प्रतिभा, निष्पक्षता, निर्भयता तथा अविचल न्यायप्रियता ने देश-विदेश में आपकी एक उज्ज्वल, प्रभावी एवं आदरणीय प्रतिमा खड़ी कर रखी है।

उस न्यायाधीश ने अपने जीवन के संध्याकाल में स्वयं के प्रति कैसा न्याय किया है, यह समझना बहुत कठिन हो रहा है। इसी कारण यह पत्र लिखने के लिए विवश हुआ हूं।

जिस सरकार में आपने मंत्रिपद स्वीकार किया है, उस सरकार का गठन असीम अवसरवादिता

6 पद स्वीकार करने पर आश्चर्य प्रकट करता पत्र।

तथा नग्न सत्तालोलुपता का सबूत है, यह सर्वविदित है। इसकी चर्चा आज सड़क पर घूमनेवाले साधारण से साधारण लोग भी कर रहे हैं। वर्तमान राजनीतिक गतिविधियों के कारण राजनेताओं के प्रति घोर घृणा वातावरण में व्याप्त है। संभवतः आप भी इन बातों से अपरिचित नहीं होंगे।

आपके आयोग ने ही श्री बीजू पटनायक को धृष्टता तथा सत्ता के दुरुपयोग के लिए दोषी करार दिया था। आज आप उन्हीं के साथ मंत्रिमंडल की कुरसी पर बैठ रहे हैं, यह देखकर मैं मन ही मन दुःखी हूँ। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह सत्ता, जो क्षणिक है, इतनी आकर्षक कैसे बन जाती है कि उसके लिए मानव अपने संपूर्ण जीवन की कमाई क्षणमात्र में गंवा बैठता है। ऐसी स्थिति में मेरे जैसा साधारण व्यक्ति समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए किसकी ओर आशा की नजर से देखे, यह समझना कठिन हो रहा है।

संभवतः मेरे इस पत्र के कारण आप दुःखी और नाराज होंगे। किंतु मैं विवश हूँ। यदि समाज में जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए आप समान व्यक्ति भी सहायक नहीं हो सके तो समाज का क्या होगा, इसी एक प्रश्न ने मुझे मजबूर किया है। इसी कारण मेरे द्वारा यह पत्र लिखने में दुःसाहस हुआ होगा तो कृपया क्षमा करें।

1

3 अगस्त, 1979

मान्यवर श्री खन्ना साहब,

आपने मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र देकर असामान्य साहस और अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत किया है। वर्तमान काल में राजनीतिक क्षेत्र में इतना कठोर निर्णय करने की क्षमता दिखानेवाला व्यक्ति नजर नहीं आता। ऐसे पेचीदा प्रसंग पर सामान्य राजनेता व्यक्तिगत हित या अहित की विवेचना में ही अनिर्णय की अवस्था में समय गंवाता बैठता है। सामयिक निर्णय लेने में वह असमर्थ सिद्ध होता है। कारण, उसके निर्णय व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए हुआ करते हैं।

आपके इस अंतिम निर्णय ने यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि आपने किसी व्यक्तिगत स्वार्थवश मंत्रिपद स्वीकार नहीं किया था। अपितु कानूनी योग्यता का लाभ देश के लिए हो, यही पावन कामना आपके मंत्रिपद स्वीकारने के पीछे थी। जैसे ही आपने अनुभव किया कि मंत्रिपद आपकी पावन कामना को साकार नहीं करेगा, किंतु आपकी योग्यता की आड़ में राजनीतिक षड्यंत्रकारी अपना खेल खेलने जा रहे हैं, आप बिना हिचकिचाहट के उससे अलिप्त हो गए हैं। यह बहुत बड़ी बात है। कारण, वर्तमान समय में बड़े आदर्शवादी कहलानेवाले लोग भी मंत्री या प्रधानमंत्री पद के लालच में अपमानित होते हुए भी समय से अलग होने का विवेक खो बैठते हैं।

1 पद के लालच से न बंधने के लिए साधुवाद।

विराट् पुरुष

आपका यह निर्णय समयानुकूल आदर्श प्रस्थापना में बहुत बड़ी सहायता पहुंचाएगा। इसी कारण इसे मैं एक ऐतिहासिक निर्णय मानता हूं। कृपया मेरा आदर सहित अभिनंदन स्वीकार करें।

8

16 अगस्त, 1979

मान्यवर श्री चौधरी साहब,

9 अगस्त को एक वक्तव्य में आपने कहा है कि मैं देश में घूम-घूमकर आपको गालियां दे रहा हूं। इस बात पर आपने कैसे विश्वास किया? आप मुझसे आयु में बहुत बड़े हैं। मैं आपको गालियां कैसे दे सकता हूं? वैसे भी मैं गालियों के वातावरण में पला नहीं हूं, न गालियां देना मेरा स्वभाव है।

गत 45 वर्षों से मैं सामाजिक कार्यों में संलग्न हूं। मेरी सामाजिक जिम्मेदारियां हैं। प्रामाणिकता, निस्स्वार्थता तथा निर्भयता के साथ मैं उन्हें निभाता आ रहा हूं। मुझसे गलतियां हुई होंगी किंतु द्वेषवश मैंने कभी कोई काम नहीं किया है। राजनीति के क्षेत्र में भी मैं सत्ता का अभिलाषी नहीं रहा, न पद का इच्छुक। जनहित में ही मैं कार्यरत रहा हूं। इसीलिए मैं इस पत्र द्वारा कुछ बातें स्पष्ट करना चाहता हूं, ताकि गलतफहमी की गुंजाइश न रहे।

संभव है, मेरी स्मरण-शक्ति कम पड़ रही हो, अतः मैं आपसे जानना चाहता हूं कि हम लोग कब मंत्रिमंडल बनाने की स्थिति में रहे और आपने उस समय कांग्रेस छोड़कर मुख्यमंत्री पद स्वीकार करने से इनकार किया?

चीन की तरक्की से प्रभावित होकर 1956 में स्व. श्री नेहरू ने अपने देश में सहकारी खेती अपनाने की नीति घोषित की थी। उसके खिलाफ जनसंघ ने देशव्यापी अभियान चलाया था। उस समय आपके स्टैनो श्री नानकचंद नामक थे। उन्होंने ही मुझे बताया था कि आप भी सहकारी खेती के खिलाफ हैं और जनसंघ के आंदोलन को पसंद करते हैं। उस समय मैं प्रथम बार आपसे मिला था। आपने मुझे उस समय 'विदर को-ऑपरेटिव फार्मिंग' नाम से छपी जानेवाली किताब की टाईप की हुई प्रति पढ़ने के लिए दी थी। यहां ही से मेरा आपसे संपर्क बढ़ा था। नागपुर कांग्रेस में स्व. श्री नेहरूजी की उपस्थिति में सहकारी खेती का आपने खुलकर तर्कबद्ध विरोध किया था। वहां से लखनऊ लौटने पर मैंने आपको हार्दिक बधाई दी थी और प्रथम बार आपसे कहा था कि आपका स्थान कांग्रेस में नहीं है। आप कांग्रेस छोड़कर हमारे साथ आ जाएं।

स्व. श्री संपूर्णानंदजी के मंत्रिमंडल से श्री चंद्रभानु गुप्ताजी ने अपने अन्य आठ साथियों के साथ त्याग-पत्र दिया था। मेरे स्व. संपूर्णानंदजी से अच्छे संबंध रहे हैं। वे यह भी जानते थे कि

8 श्री नानाजी देशमुख, संसद सदस्य एवं महामंत्री जनता पार्टी का चौधरी चरण सिंह, प्रधानमंत्री भारत सरकार को दिनांक 14 अगस्त, 1979 को लिखे गए पत्र का पाठ्य, जिसे 16 अगस्त, 1979 को प्रकाशनार्थ भेजा गया।

आपसे भी मेरे निकट के संबंध हैं। उसी समय आपने भी स्व. संपूर्णानंदजी के पास अपना त्याग-पत्र भेजा था। श्री बाबूजी ने (संपूर्णानंदजी ने) मुझे से कहा था, “तुम्हारे चौधरी साहब भी मुझे छोड़कर जाना चाहते हैं। क्या वे भी गुप्ताजी के साथ हो गए?” उस समय मैं आपके पास पहुंचा। आपसे मैंने अनुरोध किया था कि आप अपना त्याग-पत्र वापस कर लें। उस पर आपने कहा था, “भाई, त्याग-पत्र तो वापस ले लूंगा। मैं गुप्ता कंपनी के साथ हूँ, यह धारणा बनने देना मैं अपने लिए ठीक नहीं समझता। लेकिन मुझे यह बताओ कि आप मुझे मुख्यमंत्री कब बनाओगे?”

उस समय उत्तर प्रदेश विधान सभा में जनसंघ के केवल 18 विधायक थे। मैंने आपसे कहा था कि जब उत्तर प्रदेश विधान सभा में जनसंघ के 100 विधायक हो जाएंगे, आप उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बनेंगे।

1962 के आम चुनाव में जनसंघ के 49 विधायक चुनकर आए थे। स्व. डॉ. लोहियाजी के कारण गैर-कांग्रेसवाद जोर पकड़ रहा था। इसी आधार पर 1963 में लोकसभा के लिए हुए उपचुनावों में स्व. डॉ. राममनोहर लोहिया, श्री आचार्य कृपलानी और श्री मीनू मसानी विजयी हो गए थे। उस समय मैंने आपसे साग्रह अनुरोध किया था कि आप हमारे साथ आ जाएं। लोकतांत्रिक विरोधी दलों को मिलकर देश में एक वैकल्पिक शक्ति खड़ी करने में आपका बहुत बड़ा योगदान हो सकता है। तब आपने कहा था, “भाई, मेरी अवस्था ऐसी नहीं है कि मैं विरोधी दल खड़ा करने के लिए आवश्यक परिश्रम या दौड़-धूप कर सकूँ।”

1967 के आम चुनाव में जनसंघ के कार्यकर्ता अपने चुनाव-चिह्न पर 99 तथा एक जनसंघ कार्यकर्ता श्री अवस्थीजी निर्दलीय चुनाव-चिह्न पर लखनऊ छावनी से चुनकर आए थे। विधान सभा में जनसंघ के 100 विधायक हो गए थे। श्री गुप्ताजी ने सरकार बना ली थी। सब विरोधी दलों ने मिलकर संयुक्त विधायक दल का गठन कर लिया था। उस दल के नेता के रूप में हम लोगों ने श्री रामचंद्र विकल को स्वीकार किया था। श्री गुप्ताजी के पास हमसे केवल 13 विधायक अधिक थे। उस समय आपसे मिलकर मैंने कहा था कि जनसंघ के 100 विधायक हो गए हैं और आप चाहें तो इस समय मुख्यमंत्री हो सकते हैं। आपने आंकड़े जोड़कर देखा। आपके साथ अन्य 16 विधायक आने के लिए तैयार हुए और और आप श्री गुप्ताजी का 18 दिन का मंत्रिमंडल अपदस्थ कर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बन गए थे। अतः कृपया बताएं कि वह कौन सा प्रसंग था, जबकि आपने मुख्यमंत्री बनने के लिए कांग्रेस छोड़ने से इनकार किया था? 1960 में आपने मध्यावधि चुनाव कराए थे। उसके बाद श्री गुप्ताजी मुख्यमंत्री बने थे। कांग्रेस का विभाजन हुआ था। अतः गुप्ताजी की सरकार चलना संभव नहीं रहा। श्रीमती इंदिराजी प्रधानमंत्री थीं। अतः स्वाभाविक रूप से गुप्ताजी विरोधियों के साथ हुए। विरोधियों की सरकार बचाने का प्रसंग उपस्थित हुआ। उसके लिए नेता बदलने के प्रयास प्रारंभ हुए। आपको स्मरण होगा कि श्री गुप्ताजी हृदय रोग के कारण गंभीर रूप से बीमार थे। उस समय श्री राजनारायणजी आपके सबसे बड़े विरोधी थे। राजनारायणजी को समझाने का सर्वाधिक काम श्री गुप्ताजी ने ही किया। आप रात में श्री गुप्ताजी के यहां पहुंचे और गुप्ताजी की ही उदारता थी कि उन्होंने आपको नेता स्वीकार

विराट् पुरुष

किया। मुख्यमंत्री बनने में श्री गुप्ताजी ने आपका साथ दिया। किंतु दूसरे ही दिन आपने इंदिरा कांग्रेस के साथ मिलकर मंत्रिमंडल बनाया। शायद आपने 1970 की 18 फरवरी को यह मंत्रिमंडल बनाया और वह केवल 2 अक्टूबर, 1970 तक ही चल पाया। इस प्रकार दूसरी बार भी आप अति अल्पकाल के लिए ही मुख्यमंत्री बने रह पाए। इन प्रसंगों के अतिरिक्त और कौन सा प्रसंग है, जबकि आपको हमने मुख्यमंत्री बनने का निमंत्रण दिया था?

इस पत्र में इन बातों का उल्लेख करने के लिए मैं मजबूर हूँ। कारण, आपने अपने वक्तव्य में कहा है कि मैंने आध दर्जन बार आपसे मुख्यमंत्री बनने के लिए अनुरोध किया था और आप इनकार करते रहे। यदि आप ऐसे किसी प्रसंग की याद दिला सकें तो मैं अपनी याददाश्त को ठीक कर लूँ।

मैं निम्न बातें जनता के सम्मुख रख रहा हूँ। यदि इसमें कोई बात गलत हो तो बताएं। मैं उसके लिए आपसे सार्वजनिक रूप से क्षमा मांगकर प्रायश्चित्त करूंगा।

मेरे द्वारा रखी जानेवाली बातें—

- श्री चौधरी साहब केंद्रीय सरकार में गृहमंत्री रहे हैं। गृहमंत्री के नाते उन्होंने उस समय के प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई को पत्र लिखकर श्री बहुगुणाजी के खिलाफ भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगाए थे। आरोप इतने गंभीर थे कि वे देशद्रोह की परिधि में आते हैं। चौधरी साहब जैसे जिम्मेदार पुरुष, गृहमंत्री के पद पर आसीन होकर बिना जांच-पड़ताल के ऐसे आरोप अपने मंत्रिमंडल के सहयोगी पर नहीं लगा सकते। किंतु आज स्वयं प्रधानमंत्री बनकर उन्होंने बहुगुणाजी को वित्त मंत्री बनाकर उनके हाथ उन्होंने देश का पूरा खजाना सौंप दिया है। ऐसी हालत में क्या समझा जाए कि श्री चौधरी साहब ने उस समय द्वेषवश श्री बहुगुणाजी को मंत्रिमंडल से हटाने के लिए झूठे आरोप लगाए थे, या अपनी प्रधानमंत्री बनने की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए वे अपराधी बहुगुणाजी के अपराधों पर परदा डालकर उन्हें वित्त मंत्री बनाए हुए हैं? क्या यह प्रश्न उपस्थित करना गाली देना है या वस्तुस्थिति को लोगों के सामने रखना है? आपने प्रधानमंत्री बनने के बाद राष्ट्र के नाम एक संदेश दिया। उसमें आपने कहा है—

“जीवन-मूल्यों पर आधारित एकता खड़ी करनी होगी।” इससे मैं पूर्ण सहमत हूँ। किंतु गत दो सालों में जो हुआ है, उस पर नजर डालने से लगता है कि हमने जीवन-मूल्यों से ही खिलवाड़ किया है। यदि फिर से हमें जीवन-मूल्यों के आधार पर अपने समाज को सुसंगठित करना है तो गत कमियों को स्पष्ट रूप से जनता के सामने रखना होगा और ऐसी गलतियाँ फिर से किसी के द्वारा दोहराई न जाएँ, इसकी खबरदारी बरतनी होगी। अतः आपके संदेश के अनुसार भी मेरा काम गालियों की परिधि में नहीं आता अपितु सामयिक और अति आवश्यक बन जाता है।

- आपने मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र देने के कारणों पर दिनांक 22 दिसंबर, 1978 को लोकसभा में दिए अपने वक्तव्य में प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई पर भरपूर आरोप लगाए थे। उनका उल्लेख करने की जरूरत नहीं है। उसके पूर्व भी आपने मोरारजी भाई के मंत्रिमंडल को

भ्रष्ट लोगों का समूह आदि कह डाला था। किंतु आपने उन्हीं मोरारजी देसाई की सरकार में फिर से वित्तमंत्री पद स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं दिखाया। क्या संसदीय लोकतंत्र में ऐसा अन्य उदाहरण मिलेगा?

श्री मोरारजी देसाई के मंत्रिमंडल में वित्तमंत्री पद पर विराजमान होने के बाद आपने 31 मई, 1979 को पत्रकार वार्ता में कहा था—

“I am not a rival of Prime Minister Morarji Desai for either the party leadership or the post of Prime Minister, Mr Desai must and will remain the Prime Minister as long as he wishes. It was I who wanted Mr. Desai to be Prime minister and I will be the last person to do anything to remove him.”

आपका ही यह वक्तव्य लोगों को पढ़कर सुनाया था और पूछा था कि क्या लोकसभा में 22 दिसंबर, 1978 को दिए वक्तव्य से यह मेल खाता है?

फिर आपने दो माह के बाद ही 26 जुलाई, 1979 को अपने वक्तव्य में कहा है—

“All the failures and shortcomings of the Janata Government could be traced to one cause Mr Morarji Desai’s incapability to entertain any vision about the future of the country and his inordinate desire to stick to power.”

क्या यह 31 मई, 1979 को दिए वक्तव्य से मेल खाता है? क्या कोई व्यक्ति इस बात पर भरोसा कर सकता है कि चौधरी साहब जैसा व्यक्ति, जो भारत का प्रधानमंत्री बना है, वह एक ही व्यक्ति के बारे में एक साथ असंबद्ध बातें किसी विशेष उद्देश्य के बिना कह सकता है? क्या इस प्रकार से सार्वजनिक रूप से बातें करनेवाले को विश्वसनीय माना जा सकता है? यह कहने में कौन सी बात असत्य है, जिसे आपने गाली देना माना है?

■ श्रीमती इंदिरा गांधी को लोकसभा की सदस्यता से हटाया गया था। इसके बाद उनकी हालत खराब ही होती गई। वे लोकसभा में आना चाहती रहीं। तंजावुर में उपचुनाव होने को था। श्रीमती इंदिरा गांधी ने वहां से लड़ने का सोचा। किंतु वह साहस न कर सकीं। श्री देवराज अर्स उनसे अलग हो गए। लग रहा था कि इंदिराजी अब राजनैतिक क्षेत्र में प्रभावहीन होती जा रही हैं। उनके अपने पुराने साथी भी उन्हें छोड़ते जा रहे हैं। किंतु अचानक उनका महत्त्व बढ़ गया। वह इतना बढ़ा दिया गया कि केंद्रीय सरकार भी उनके इशारे पर नाचती दिखाई पड़ रही है।

यह कैसे हुआ? प्रधानमंत्री बनने की आकांक्षा पूर्ण करने के लिए आपने ब्यूह-रचना बनाई। मंत्रिमंडल में बने रहकर आपने अपने सब अनुयायियों को पार्टी छोड़ने के लिए प्रेरित किया। पूरा खेल जमने के बाद स्वयं मंत्रिमंडल छोड़ा और अपना प्रधानमंत्री बनने का खेल इंदिराजी के सहारे रचकर इंदिराजी को देश की राजनीति में पुनः प्रभावी बनाया। जबकि आपने ही 28 जून, 1978 को कहा था—“Many Emergency victims have come to me repeatedly and implored me that not only should Mrs Gandhi be arrested immediately but that

she should be kept in the same circumstances in which Lok Nayak Jaya Prakash Narayan was kept or in Tihar Jail, in the same circumstances in which Gayatri Devi and Vijaya Raje Sindhia were kept.

I have no doubt that if we in the Government could only persuade ourselves to accept and implement this suggestion there would be hundred of mothers of Emergency victims who would celebrate the occasion as befittingly as another Diwali or course, in any other country she would have by now been facing a trial on the lines of the historic 'Nuremburg Trial'".

क्या यह जनता इन बातों को समझ नहीं रही है? इन बातों को सिलसिलेवार जनता के सामने रखना क्या किसी को गाली देना है? या आपके संदेश के अनुसार जीवन-मूल्यों के आधार पर समाज खड़ा करने के लिए जनता को सहयोगी बनाना है?

जैसे ही आपको राष्ट्रपतिजी के यहां से प्रधानमंत्री बनने के नाते मंत्रिमंडल गठन करने का निमंत्रण मिला, आपका पहला वाक्य था—“मेरे जीवन की तमन्ना पूरी हुई।” क्या किसी तरह से प्रधानमंत्री बनना ही किसी के जीवन की आकांक्षा होनी चाहिए? या प्रधानमंत्री पद के माध्यम से हर नागरिक को खुशहाल सुशिक्षित और संपूर्ण राष्ट्र को अपने प्रयासों से संसार में महान् बना हुआ देखने की आकांक्षा होनी चाहिए? यह प्रश्न करना क्या गाली देना माना जाएगा?

चौधरी साहब, कृपया नाराज न हों। आप प्रधानमंत्री तो बन गए किंतु जिन तरीकों को आपने अपनाया है, उससे पूरे समाज में आपकी प्रतिष्ठा बहुत घट गई है। इस कारण मैं दुःखी हूं।

कृपया आप जरा विचार कीजिए। आपके इस व्यवहार से देश की युवा पीढ़ी पर क्या परिणाम होगा? वे क्या सीखेंगे? जीवन-मूल्य कैसे टिक पाएंगे? आपने राष्ट्र के नाम संदेश में अपनी उज्ज्वल परंपरा का उल्लेख किया है। आप स्व. महात्मा गांधी के आदर्शों की याद दिलाते रहे हैं। क्या आपका व्यवहार इन कसौटियों पर खरा उतर सकता है?

किंतु यह कदम यहां तक ही सीमित नहीं माना जा सकता। उसने अत्यधिक नुकसान पहुंचाया। आपकी अभिलाषा पूर्ति ने केंद्रीय सरकार को अस्थिरता की खाई में पटक दिया है। जिस लोकतंत्र की रक्षा के लिए वृद्धावस्था में पत्नी-वियोग से पीड़ित-रोगग्रस्त जयप्रकाशजी ने देशव्यापी आंदोलन का भार अकेले वहन कर अपने जीवन को खतरे में डाला था, वह लोकतंत्र भी खतरे में पड़ गया है। देश की एकता के लिए अपनी पैनी दूरदृष्टि, व्यवहार-कुशलता तथा प्रशासनिक क्षमता के धनी स्व. सरदार पटेल ने संपूर्ण राष्ट्र की एकता साकार की थी, वह एकता भी आज संकट में दिखाई पड़ रही है। कारण, जबकि सत्ता-लोलुपता क्षेत्रीयवाद को बल पहुंचा रही है, ऐसे समय केंद्रीय शासन की अस्थिरता विघटन की आग में घी का काम करेगी। आप जरा शांतचित्त से विचार करें कि आपकी गतिविधियों के कारण आज कितना व्यापक खतरा खड़ा हुआ है?

मैं मानता हूं, आर्थिक भ्रष्टाचार निंदनीय है और घोर अपराध है। किंतु बौद्धिक और राजनैतिक भ्रष्टाचार तो महाभयानक है। इसकी अन्य किसी भ्रष्टाचार के साथ तुलना ही

नहीं हो सकती। वह तो देश और समाज के अस्तित्व को ही नेस्तनाबूद करने का कारण बन सकता है।

चौधरी साहब, मैं आज भी विनम्र भाव से आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप पुनर्विचार करें। आपकी प्रधानमंत्री बनने की चिरवांछित आकांक्षा पूर्ण हुई। आप अच्छी तरह जानते हैं कि आपको वर्तमान सरकार 1967 में तथा 1970 में बनी दोनों अल्पजीवी सरकारों से अधिक खराब हालत में है। यह चल नहीं सकती। अतः आप अब देश की एकता के लिए, देश में लोकतंत्र की मजबूती के लिए, समाज में नैतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए सत्ता का मोह छोड़ें। देश में नया शासन—ऐसा शासन, जिसमें नई उमंगें उभर सकें, नवनिर्माण का युग प्रारंभ किया जा सके—जिस अपेक्षा से जनता ने हमें 1977 में सत्तारूढ़ किया था, उन अपेक्षाओं की पूर्ति का प्रयास कर सकें, देश की युवा पीढ़ी को राष्ट्रनिर्माण में जुटा सकें, इसके लिए आप नई सरकार के लिए हमारा साथ दें तो हुआ नुकसान अखरेगा नहीं और देश नई आशा, उमंग और विश्वास के साथ नए युग में पदार्पण कर सकेगा।

9

10 दिसंबर, 1979

श्रीमती इंदिरा बहन,

मैं यह पत्र राजनीतिज्ञ के नाते नहीं, एक सामान्य नागरिक के नाते लिख रहा हूँ। आपने उत्तर प्रदेश के रायबरेली तथा आंध्र प्रदेश के मेडक संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से अपने नामांकन-पत्र प्रस्तुत किए हैं।

यद्यपि हमारा कानून एक व्यक्ति को एक से अधिक निर्वाचन-क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर पाबंदी नहीं लगाता, किंतु वही कानून एक ही व्यक्ति को एक समय में लोकसभा में दो निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं देता। ऐसी स्थिति में आपका दो निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ना उचित नहीं है।

यह जानते हुए कि आप दोनों निर्वाचन-क्षेत्रों से लोकसभा में प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं, आपका दोनों क्षेत्रों के मतदाताओं से वोट मांगना नैतिक दृष्टि से भी आपत्तिजनक है। राजनीतिक क्षेत्र में नैतिकता की उपेक्षा और उपहास होता आ रहा है। आपका यह कदम इस दृष्टि से और भी घातक होगा। आप समान व्यक्ति के द्वारा भी, जो ग्यारह साल भारत के प्रधानमंत्री पद पर आसीन रही हों, दो निर्वाचन-क्षेत्रों से चुनाव लड़ना दोनों निर्वाचन क्षेत्रों के मतदाताओं को झूठे आश्वासन देना एवं गुमराह करना है। अतः नैतिकता तथा प्रामाणिकता का तकाजा है कि आप केवल एक ही निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ें।

डॉ. नीलम संजीव रेड्डी,
राष्ट्रपति, भारत

मुझे विश्वास है कि अपनी समस्त व्यस्तताओं के बावजूद आप भूले नहीं होंगे कि आज से ठीक दो वर्ष पूर्व 25 नवंबर, 1978 को आपने मेरे निमंत्रण पर उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में जयप्रभा ग्राम की ग्रामीण निर्धन जनता के बीच एक दिन बिताया था। इस अवसर पर आपने जिले के सर्वांगीण विकास हेतु दीनदयाल शोध संस्थान के ग्रामोदय प्रकल्प का उद्घाटन करते हुए आश्वासन दिया था, “इस प्रयोग को मैं बड़ी दिलचस्पी के साथ देखता रहूंगा” और यह आशा प्रकट की थी कि “इस तरह का आंदोलन देश के अन्य भागों में भी फैलेगा और वहां भी सुख-समृद्धि आएगी।” आपको स्मरण होगा कि आपकी उपस्थिति में ही मैंने घोषणा की थी कि गोंडा जिले के “हर खेत को पानी और हर हाथ को काम” देने का अपना संकल्प पूरा करने के लिए हम 1980 की बरसात के पहले ही इस जिले में बीस हजार नलकूप लगा देंगे।

इस प्रसंग को आज दो वर्ष पूरे हो रहे हैं। अतः मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इन दो वर्षों में ग्रामोदय प्रकल्प की प्रगति एवं अनुभवों से आपको अवगत कराऊँ।

मुझे स्मरण है कि उस समय हमारे अनेक शुभेच्छुओं को दो वर्ष की अल्पावधि में 20 हजार नलकूप लगाने का हमारा संकल्प बहुत ही अव्यावहारिक और असंभव सा लगा था। किंतु आज मुझे आपको यह सूचित करते हुए बहुत संतोष और हर्ष है कि हमने इस असंभव को न केवल संभव बना दिया है, अपितु दो वर्ष से भी कम अवधि में हम अपने पूर्व घोषित लक्ष्य को पार करके बहुत आगे पहुंच गए हैं। ग्रामानुसार नलकूप के जो आंकड़े मेरे पास आए हैं, उनके अनुसार 31 जुलाई, 1980 तक गोंडा जिले में 27,516 नलकूपों का निर्माण पूरा हो चुका है। जिले के कुल 2,814 ग्रामों में से 839 अर्थात् लगभग एक तिहाई ग्राम सिंचाई की दृष्टि से चरमस्थिति को पार कर गए हैं। इन ग्रामों में हर खेत को पानी देने का हमारा संकल्प पूरा हो गया है। इस जलक्रांति के फलस्वरूप गोंडा जिले में 2,24,002 एकड़ अतिरिक्त कृषिभूमि को सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो सकी है और 92,355 परिवार लाभान्वित हुए हैं।

यह असंभव सा दीखनेवाला कार्य हमारे हाथों कैसे पूरा हो गया, इसका जब मैं विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि राष्ट्र के प्रथम नागरिक के रूप में आपका गोंडा आगमन और वहां के निर्धन ग्रामीणों के साथ धरती पर बैठकर सादा भोजन करना हमारे इस संकल्प की पूर्ति में बहुत सहायक बना है। भारत के सर्वोच्च शासक की ओर से प्राप्त इस स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण गोंडा के उपेक्षित, उदास व निराश प्राणों में विलक्षण आशावाद व कर्मचेतना का संचार हुआ।

गोंडावासियों में प्रथम बार यह विश्वास जगा कि देश का सर्वोच्च नागरिक भी उनके भविष्य के प्रति चिंतित है। इस उत्साह और विश्वास के वातावरण में हमारे कार्यकर्ताओं को अपने प्रयासों की सफलता के लिए व्यापक जनसहयोग प्राप्त करना सुगम हो गया। इस एक अनुभव से मेरा यह विश्वास बना है कि यदि आपके इस उदाहरण का अनुकरण कर शासन के शीर्ष बिंदुओं पर आसीन अन्य व्यक्ति भी विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे रचनात्मक प्रयासों में इसी प्रकार रुचि लेते रहें तो देश के विकास की गति बहुत तेज हो सकती है।

सफलता का दूसरा कारण मुझे यह दिखाई देता है कि हमारे कार्यकर्ताओं ने नलकूप योजना को सफल बनाने की दृष्टि से छोटे-छोटे किसानों की आवश्यकता को समझने के साथ-साथ उनकी आर्थिक विवशताओं का सूक्ष्म अध्ययन किया और इन सीमाओं के भीतर ही स्थानीय साधनों के आधार पर उनका हल खोजने की कोशिश की। उदाहरणार्थ, गहन सर्वेक्षण के द्वारा हमारे कार्यकर्ताओं ने पाया कि गोंडा जिले में ऐसे किसान बहु संख्या में हैं, जिनके पास ढाई एकड़ से भी कम भूमि है। अतः ऐसे किसान यदि ऋण लेकर पंपसेट सहित नलकूप लगा लें तो अपने खेत से होनेवाली अल्प आमदनी में से उस ऋण की किश्तों की अदायगी कभी नहीं कर पाएंगे।

इस समस्या पर विचार करते-करते हमारे कार्यकर्ताओं को सूझा कि एक डीजल पंपसेट 20 एकड़ भूमि की सिंचाई करने में समर्थ है। अतः किसी एक खेत में पंपसेट लगाकर आसपास के कई छोटे खेतों की सिंचाई की जा सकती है। इसलिए हमारे कार्यकर्ताओं ने छोटे-छोटे खेतों के समूह बनाकर उनके बीच किसी एक खेत के स्वामी को अपने यहां नलकूप लगाने के लिए तैयार किया। इसके साथ ही हमने यह भी पता लगाया कि नलकूप में यदि लोहे के पाइप की जगह मोटे बांस का उपयोग किया जाए तो नलकूप की लागत एक तिहाई से कम अर्थात् लगभग 500 रुपए पड़ सकती है। सौभाग्य से इस काम के लिए उपयुक्त बांस गोंडा जिले में बहुतायत में उपलब्ध है। फिर क्या था, हमारे कार्यकर्ताओं ने एक ओर छोटे किसानों को बांस के नलकूप लगाने के लिए प्रेरित किया, दूसरी ओर ऐसी व्यवस्था बनाई, जिसमें ऐसे छोटे किसानों को पंपसेट किराए पर सरलता से उपलब्ध हो सके। इससे ग्रामीण युवकों के लिए रोजगार का मार्ग भी खुल गया। शोध संस्थान के प्रयत्नों के फलस्वरूप इस समय लगभग 7,000 पंपसेट गोंडा के कृषकों को किराए पर उपलब्ध हैं। इस प्रकार जन-सहयोग एवं कार्यकर्ताओं की सूझबूझ के संगम से कितनी जटिल समस्या का कितना सरल हल निकल आया! आठ-दस खेतों के बीच एक खेत में नलकूप, उस नलकूप में किराए का डीजल पंपसेट और सब खेतों की क्रम से सिंचाई व खर्च का खेतों का क्षेत्रफल के अनुसार आपस में बंटवारा। इस अतिरिक्त सिंचाई व्यवस्था के फलस्वरूप हमने 1,58,353 एकड़ भूमि पर वर्ष में दो फसलें व 41,331 एकड़ भूमि पर वर्ष में तीन फसलें उगाने की स्थिति उत्पन्न की है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस लघु सिंचाई योजना की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय उन ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ताओं को जाता है, जिन्होंने लगनपूर्वक इस समस्या का अध्ययन किया, सूझबूझ

विराट् पुरुष

के साथ उसका हल निकाला और फिर उस हल को गांव-गांव, खेत-खेत तक पहुंचाने के लिए अथक परिश्रम किया।

इस नलकूप योजना का विशेष विवरण आपके सामने रखना मैंने इस दृष्टि से भी आवश्यक समझा कि शायद हमारा यह प्रयोग व अनुभव देश के उन अभावग्रस्त इलाकों के लिए, जहां भूमि में उपलब्ध जल का अभी तक लाभ नहीं उठाया जा सका, दिशासूचक बन सकता है।

गोंडा जिले के आर्थिक विकास का दूसरा सूत्र है, 'हर हाथ को काम।' इस दृष्टि से हमने गोंडा जिले के सात विकास प्रखंडों का सघन सर्वेक्षण करके परंपरागत ग्रामीण दस्तकारों की ऋण, कच्चे माल, कार्यकुशलता में वृद्धि व विक्रय आदि से संबंधित समस्याओं के बारे में सर्वेक्षण के द्वारा पूर्ण जानकारी एकत्र की है। इन सात प्रखंडों में सात ग्रामीण क्रय-विक्रय एवं सेवा केंद्र इस समय काम कर रहे हैं। इन केंद्रों से उपेक्षित ग्रामीण कारीगरों को पुनर्वास की दृष्टि से आवश्यक सहायता प्राप्त हो रही है। गोंडा शहर के निकट हमने एक बहुधंधी प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना की है, जिसमें बेरोजगार युवक-युवतियों को आठ शिल्पों में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस केंद्र में प्रशिक्षण प्राप्त करनेवाले प्रथम जत्थे के 240 व्यक्तियों में से 204 युवक-युवतियां जीवकोपार्जन में लग चुके हैं। भारत सरकार की ट्राइसेम योजना के सफलतम क्रियान्वयनों में इसकी गणना की जा सकती है। इसके अतिरिक्त हमने मछली, मुरगी, सुअर पालन एवं डेरी आदि की योजनाओं का सूत्रपात कर दिया है। हमारी कोशिश है कि इन विभिन्न आर्थिक योजनाओं के फलस्वरूप पांच वर्ष पश्चात् गोंडा जिले में कोई भी ऐसा परिवार न रहने पाए, जिसकी वार्षिक आय 2,500 रुपए से कम हो। गोंडा जिले में इस समय लगभग 90 प्रतिशत परिवारों की वर्तमान वार्षिक औसत आय 500 रुपए से कम होने के कारण यह सपना बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है। किंतु अब तक की प्रगति से हमें विश्वास होता है कि शायद हम इस स्वप्न को भी साकार कर पाएं।

ग्रामोदय प्रकल्प की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि की ओर भी मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। हमने अनुभव किया कि गोंडा जिले के ग्रामीण अंचलों में पीने के पानी की समस्या बहुत गंभीर है। अधिकांश कुएं कच्चे और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़े हुए थे। इनके चारों ओर मुंडेर न होने के कारण आसपास की सब गंदगी बहकर उनमें जाती थी, जिसके कारण यह पेयजल रोगों का घर बना हुआ था। साथ ही ये कुएं आर्थिक एवं सामाजिक विषमता के भी प्रतीक बने हुए थे। ग्रामोदय प्रकल्प के अंतर्गत हमने इन कुओं के जीर्णोद्धार का बीड़ा उठाया। इसी जीर्णोद्धार कार्य में हमने सभी ग्रामवासियों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की। हमने अनुरोध किया कि गांव के कुएं की मरम्मत के लिए प्रत्येक घर श्रमदान के साथ-साथ गरीब से गरीब परिवार भी कम-से-कम दो ईंटों का योगदान तो अवश्य करे। इससे ग्रामवासियों में स्वावलंबन व परस्पर सहयोग का वातावरण उत्पन्न हुआ।

लंबे समय से चली आ रही छुआछूत की दीवारें अपने आप ढहने लगीं। मुझे स्मरण है कि कुछ गांवों में सब जातियों के लोगों ने मिलकर कुओं का पुनर्निर्माण किया है। हमारे इस अभियान के फलस्वरूप 3,320 कुओं का जीर्णोद्धार हुआ, 1,318 नए कुएं बने और 1,470 हैंडपंप लगाए गए, जिससे गोंडा जिले के अनेक गांवों के निवासियों को स्वच्छ व शुद्ध जल सरलता से प्राप्त होने लगा है।

इन उपलब्धियों का उल्लेख करने का अर्थ यह नहीं है कि हम बहुत कुछ कर चुके हैं और अब कुछ करना शेष नहीं है। वस्तुतः मेरी दृष्टि में अभी तो विकास-कार्य का आरंभ मात्र हुआ है। शिक्षा और स्वास्थ्य का विशाल क्षेत्र अभी अछूता पड़ा है। इस दिशा में अनेक योजनाएं हमारे पास हैं, पर साधन जुटाना अभी बाकी है। मैं आशा करता हूं कि निकट भविष्य में हम इन दिशाओं में भी कुछ प्रयास प्रारंभ कर सकेंगे।

वस्तुतः गोंडा प्रकल्प में इन दो वर्षों के अनुभव से मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का केंद्रबिंदु जिला बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक जिले की वर्तमान स्थिति व समस्याओं का अध्ययन करके उस जिले के ही मानवीय व प्राकृतिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग करते हुए जिले को विकास के पथ पर बढ़ाना होगा। किंतु इस कार्य को संपन्न करने के लिए योजना को एक जिले पर ही अपने संपूर्ण ध्यान व शक्तियों को केंद्रित करना होगा। मैं गोंडा जिले की समस्याओं में ज्यों-ज्यों गहरा उतर रहा हूं, मेरा ध्यान और शक्तियां अन्य क्षेत्रों से सिमटकर अपने आप उसी में खपती जा रही हैं। गोंडा जिले में दो वर्ष के परिश्रम का जो उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आया है, उससे मेरी यह आस्था दृढ़ हुई है कि देश के विकास का रास्ता भाषणबाजी तथा सत्ता और वोट की राजनीति नहीं, प्रत्यक्ष रचनात्मक कर्म है।

मुझे लगता है कि इन दो वर्षों में गोंडा में हमने जो अनुभव संचित किए हैं, उनका लाभ अन्य जिलों को पहुंचाने का समय आ गया है। इसलिए दीनदयाल शोध संस्थान ने प्रत्येक राज्य में सर्वांगीण विकास के नमूने के रूप में खड़ा करने के लिए एक-एक जिला अंगीकार करने का निश्चय किया है। उड़ीसा के सुंदरगढ़ जिले में, जहां की 52 प्रतिशत जनसंख्या वनवासियों की है, हमने कार्य आरंभ भी कर दिया है। किंतु राजनीति का स्तर जिस तेजी से गिर रहा है, उसे देखते हुए कभी-कभी मन में प्रश्न खड़ा होता है कि क्या हम सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण के गैर-राजनीतिक रचनात्मक प्रयत्नों को भी दलगत राजनीति से ऊपर उठकर नहीं देख सकेंगे? किंतु दूसरे ही क्षण मेरा मन कहता है कि मेरी यह आशंका निर्मूल सिद्ध होगी और हम शासन के सक्रिय सहयोग से आपके इस आशावाद को पूरा कर सकेंगे कि गोंडा प्रकल्प जैसा आंदोलन देश के अन्य भागों में भी फैले, ताकि वहां भी सुख-समृद्धि की लहर निर्माण हो।

मुझे विश्वास है कि ग्राम-पुनर्रचना के इन रचनात्मक प्रयासों के प्रति आपका स्नेह, सहयोग एवं प्रोत्साहन पहले के समान ही मिलता रहेगा।

संपादक महोदय,
दैनिक तरुण भारत,

आज प्रवास से आने पर दिनांक 30 जनवरी को प्रकाशित आपका संपादकीय पढ़ने को मिला। आपने अपने संवाददाताओं के द्वारा मेरे विचार जानने के स्थान पर अन्य सूत्रों द्वारा प्रकाशित वक्तव्य पर संपादकीय लिखना श्रेयस्कर समझा। यह अच्छा ही हुआ। इस कारण मुझे आपने आपके वाचकों के सम्मुख अपना मानस प्रकट करने का सुअवसर प्रदान किया है।

मैंने 8 नवंबर के अपने लेख में न श्री राजीव गांधी के हाथ मजबूत करने का शब्द प्रयोग किया था, न पुणे में अपनी बैठक में श्री राजीव गांधी का समर्थन करने की बात कही थी। अतः आपने अपने अग्रलेख में ‘‘श्री राजीव गांधी याना पाठिंबा देण्याच्या आपल्या—निवेदनाचा नानाजी पुण्यात ही पुनरुच्चार केला’’। यह वाक्य लिखा है, उसमें तथ्य नहीं है। आपकी जानकारी के लिए मेरे हस्ताक्षर से 8 नवंबर को जो लेख* प्रसारित किया गया था, उसकी प्रति इस संबंध में उपयोग में लाए गए वाक्य को रेखांकित कर भेज रहा हूं। उसमें पूर्ण सहानुभूति एवं सहयोग शब्दों का प्रयोग किया है।

विरोधी दलों को सरकार के सम्मुख शरणागति स्वीकार कर, सरकारी आवाज में अपनी आवाज मिलानी चाहिए, यह न मैंने कभी सोचा था, न सोच सकता हूं। किंतु आपने अपने अग्रलेख में एक वाक्य लिखा है कि ‘‘वास्तविक विरोधी पक्ष संघर्ष करण्याच्या संख्यात्मक वा गुणात्मक अवरथेत आज नाही।’’ मुझे संख्यात्मक स्थिति से उतना दुःख नहीं जितना गुणात्मक स्थिति से है। विरोधी पक्ष में गुणात्मक अभाव का कारण हमें खोजना होगा। सर्वसाधारण समाज के शिक्षित, बुद्धिमान व समझदार लोगों का स्वाभाविक दायित्व है कि विशेषतः लोकतंत्र में वे सत्तारूढ़ तथा विपक्षी दलों की अच्छाइयों को तथा दोषों को भी सर्वसाधारण नागरिकों के सम्मुख रखें। अन्यथा लोकतंत्र की सफलता संभव नहीं होगी। सत्तारूढ़ दल एवं विरोधी दलों में संतुलन रखना लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। यह कार्य निष्पक्ष तथा सुशिक्षित पत्रकार, विशेषतः संपादक वर्ग अधिक प्रभावी रूप में कर सकते हैं।

मैं यह समझता हूं कि राजीव गांधी का व्यक्तित्व राजनीतिक नहीं रहा। तीन साल पहले अनिच्छुक होते हुए भी उनकी माताजी ने उन्हें राजनीति में घसीटा था। अब उनकी माताजी नहीं रहीं। अतः उनके साथ कांग्रेस का गत सैंतीस साल का गलत रवैया न जुड़ने देना देश के हित की दृष्टि से आवश्यक है। अन्यथा देश फिर से अलोकतांत्रिक कीचड़ में फंसेगा। अतः अपने देश की राजनीति में हमें नया अध्याय प्रारंभ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। उसे हाथ से

11 लोकतंत्र की सफलता के लिए सत्तारूढ़ एवं विरोधी दलों में संतुलन की आवश्यकता पर बल। यह लेख राष्ट्ररूषि पृष्ठ 54 पर दिया गया है।

जाने देना राष्ट्र के हित में नहीं हो सकता। हम सभी मानते आए हैं कि दलों से देश बड़ा है। अतः हमारा हर कदम देश के हित में संपन्न हो, यह समय की मांग है।

जहां गुणात्मकता सत्तारूढ़ दल में बढ़नी चाहिए, उससे अधिक विरोधी दल में बढ़नी चाहिए। अन्यथा विरोधी दल सत्तारूढ़ दल का सफल विकल्प न बन पाएगा। आपने कहा है और सत्य कहा है कि विरोधी दल में गुणात्मकता भी नहीं रही। इसका क्या कारण है, इस ओर मैं आपका तथा आपके वाचकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद बालिग मताधिकार के आधार पर 1952 में प्रथम आम चुनाव हुए। उसमें स्व. श्री कृपलानीजी ने शुद्ध गांधीवाद के नाम पर व किसान मजदूर प्रजा पार्टी ने भी बहुत बड़ी आकांक्षा के साथ यह चुनाव लड़ा था। चुनाव परिणामों ने दोनों को हताश कर दिया। परिणामस्वरूप शुद्ध गांधीवाद व समाजवाद का मिलन हुआ व प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने जन्म लिया। किस सिद्धांत के लिए? सत्ता प्राप्ति की ही आकांक्षा से। अब आप कहेंगे कि राजनीतिक दल का सत्ता प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना स्वाभाविक है। इसमें मैं सहमत हूं। किंतु सत्ता प्राप्ति लोकहित का माध्यम बने, इसलिए। अतः सत्ता प्राप्ति ध्येय नहीं साधन है। किंतु केवल सत्ता प्राप्ति ही ध्येय बनाया गया तो साधन शुचिता बच नहीं पाती। परिणामस्वरूप गुणात्मकता समाप्त हो जाती है और इसी कारण अपने देश में कोई भी विरोधी दल आवश्यक जनसमर्थन व सामर्थ्य प्राप्त नहीं कर पाया है। गत सत्रह साल का यही अनुभव है।

1955 में केरल में पी.एस.पी. की जो अल्पमत सरकार थी, उसने मजदूरों पर लाठी व गोली चलाई, इस कारण डॉक्टर लोहिया पी.एस.पी. से अलग हुए। उन्होंने फिर से सोशलिस्ट पार्टी बनाई। अपने ही बलबूते पर सात साल में देश की सत्ता हाथ में लेने की घोषणा की। 1962 में वे इस लक्ष्यसिद्धि में बुरी तरह विफल रहे। इसी निराशा में से प्रतिक्रियास्वरूप उन्होंने गैर कांग्रेसवाद का नारा बुलंद किया। हिंदूसभा व निर्दलीय से लेकर कम्युनिस्टों तक को एक मंच पर लाने में उनका गैर कांग्रेसवाद जुट गया। पी.एस.पी. व एस.पी. का पुनर्मिलन होकर एस.एस.पी. का जन्म हुआ। 1967 में कांग्रेस, विरोधी दलों के एकीकरण के कारण नहीं, अपने ही पापों के कारण अनेक प्रदेशों में विफल हुई। संयुक्त विधायक दलों की सरकारें बनीं। वे चली नहीं; टूटी प्रतिक्रियास्वरूप 1971 में चारों प्रमुख दलों के संयुक्त मोरचे के बावजूद कांग्रेस को फिर से जबरदस्त बहुमत मिला। इसी प्रक्रिया में विरोधी दलों की गुणात्मकता समाप्त होती गई। कारण, व्यावहारिक दृष्टि से सत्ता पाने के अतिरिक्त उनका सिद्धांतवाद बच नहीं पाया। अवसरवाद एवं दलबदल की राजनीति का प्रभाव बढ़ता गया। वही प्रक्रिया बराबर चलती चली आ रही है। श्रीमती इंदिरा गांधी ने 1971 के जबरदस्त जनादेश का उपयोग लोकहित के लिए नहीं स्वयं को सत्ता में बने रहने के लिए ही किया। यहां तक कि 12 जून, 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट का फैसला भी उन्होंने दुकरा दिया तथा इमरजेंसी लगाई।

उसकी प्रतिक्रियास्वरूप 1977 में उन्हें पराजित होना पड़ा। 1984 के आम चुनाव में श्री राजीव पर आरोप लगाया जा रहा है कि उसने चुनाव जीतने के लिए धन का तथा सत्ता का बहुत

विराट् पुरुष

बड़े पैमाने पर दुरुपयोग किया है। यह आरोप गलत नहीं है। किंतु श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी 1977 में धन और सत्ता का असीम दुरुपयोग किया था। विरोधी पक्ष जेल से छूटा था। उनके पास धन का बहुत अभाव था। किंतु उस समय सत्ता का असीम दुरुपयोग इंदिराजी के काम न आया। जनादेश ने जनता पार्टी को शासन सूत्र सौंप दिए। क्या हम इसे अपनी दृष्टि से ओझल कर सकते हैं, आम लोग इन सब बातों को समझते हैं। फिर भी चुनाव में धन का तथा प्रशासनतंत्र का दुरुपयोग समाप्त करना चाहिए। इस पर अलग से सोचना होगा।

जनता सरकार टूटी। क्यों? क्या हम नहीं जानते कि इसके लिए सर्वाधिक दोषी चौधरी चरण सिंह थे? किंतु 1980 की हार के बाद फिर उसी चरण सिंह को राष्ट्रीय धरातल पर नेतृत्व प्रदान करने का प्रयास गुणात्मकता को खोने की दिशा में कदम नहीं था? घोर जातिवाद तथा सत्ता-पिपासुता के अतिरिक्त चौधरी चरण सिंह का देश की राजनीति में क्या योगदान है? क्या सत्ता को जनकल्याण का माध्यम माननेवालों को अपने साधन-शुचिता का ध्यान रखना आवश्यक नहीं है? सत्ता लोलुपता को नेतृत्व के उच्चतम आसन पर विराजमान करने की बात क्या आम जनता पसंद कर सकती है? क्या यह आत्मघात की नीति नहीं है? इसी मार्ग पर चलकर क्या विरोधी पक्ष लाभदायी विकल्प के रूप में उभर पाएगा? सिद्धांतहीन राजनीतिक गठबंधन वह चाहे किसी भी रूप में हो—न जनकल्याणकारी हो सकता है, न लोकतंत्र को ही बल पहुंचा सकता है। वह तो अनैतिकता को बढ़ावा देना रहेगा। इसका कटु अनुभव कितनी बार लिया जाना चाहिए? यह प्रचलित दिशा बदलने के लिए अनुरोध करना क्या सत्तारूढ़ दल के सम्मुख समर्पण करने के लिए कहना है या सामर्थ्यशील लोकहितकारी विकल्प खड़ा करने के लिए अनुरोध करना है?

1952 से 1967 तक का जनसंघ के जीवन काल का स्मरण करना उपयुक्त होगा। उस काल में रामराज्य परिषद, हिंदूसभा, स्वतंत्र पार्टी आदि के निरंतर दबावों के बावजूद अपने ही सिद्धांत, नीति एवं कार्यक्रमों पर डटा रहा। फलस्वरूप उस काल में जनसंघ कार्यकर्ताओं में राष्ट्रीय आकांक्षा के स्थान पर व्यक्तिगत आकांक्षा पनप न सकी। जनसंघ संगठन, प्रतिष्ठा, प्रभाव, विस्तार, जनसमर्थन तथा विभिन्न विधान सभाओं एवं लोकसभा में उसका प्रतिनिधित्व लगातार बढ़ता ही गया। इतना ही नहीं तो इसी काल में एकात्म मानववाद के समयानुकूल एवं सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञान का आविष्कार हुआ। किंतु जब से जनसंघ ने दलबदलुओं एवं सत्तापिपासु कांग्रेसियों का नेतृत्व स्वीकारना प्रारंभ किया—तब से वह कभी-कभार सत्ता में भले ही सहभागी बना हो—उसके संगठन में व चुनाव परिणामों में निरंतर ह्रास ही होता गया है। इतना ही नहीं तो कांग्रेस का स्थान लेनेवाले सिद्धांतवादी विकल्प की संभावना कमजोर पड़ गई है। गहराई से देखने पर यह सहज में ही समझ में आ सकेगा कि 1977 की सफलता का कारण प्रमुख रूप से श्रीमती इंदिरा गांधी के गैर-कानूनी एवं अधिनायकवादी प्रशासन से त्रस्त जनभावना तथा स्व. जयप्रकाशजी का त्यागमय आदर्शवादी नेतृत्व रहा है। सिद्धांतहीन सर्वदलीय गठबंधन को न कभी जनता ने पसंद किया है, न कभी वह पसंद

करेगी। यह अनुभवसिद्ध बात ध्यान में नहीं आती, इसी की व्यथा सता रही है। गैर कांग्रेसवाद का नकारात्मक प्रयोग फिर से किसी कारण सतारुढ़ हो भी गया तो वह खींचतान, कलह, अस्थिरता, निराशा एवं अराजकता के लिए ही कारण बनेगा। यह समझने के लिए किसी ज्योतिषी की आवश्यकता नहीं है। हम गत सैंतीस साल से अंग्रेजों की संसदीय प्रणाली का अपने यहां प्रयोग कर रहे हैं। उस शासन पद्धति की हू-बहू नकल करना अपने लिए कितना महंगा पड़ रहा है। यह वर्तमान दुर्दशा से स्पष्ट हो जाता है।

हजार साल से अधिक काल तक अपना राष्ट्र परवशता के काल से गुजरता रहा है। अतः समयानुकूल सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्रचना करना अर्थात् राष्ट्र का नवनिर्माण करना स्वतंत्र भारत का आद्यकर्तव्य है। क्या अंग्रेजी तौर-तरीके की संसदीय प्रणाली इसके लिए उपयुक्त है?

आर्थिक एवं सामाजिक पुनर्रचना के लिए परस्पर विश्वास व सहयोग नितांत आवश्यक है। किंतु वर्तमान पद्धति एक दूसरे को जनता की नजर में बदनाम करने के लिए मजबूर कर रही है। दूसरों में गुणों की खोज करना एवं स्वयं के दोषों को दूर करने की भारतीय जीवन दृष्टि के पूर्णतः विपरीत है यह शासन प्रणाली। यह पद्धति परस्पर विद्वेष एवं घृणा का ही सृजन करती है। इस घातक पद्धति में भी कुछ सुधार के प्रयोग करना क्या समय की आवश्यकता नहीं है?

संभवतः आपने लोकमत में तथा अन्य पत्रों में पढ़ा होगा कि मैंने श्री राजीव गांधी को दो सुझाव दिए हैं कि वे प्रधानमंत्री पद पर होने के कारण दल की अध्यक्षता छोड़ें। प्रधानमंत्री के नाते वे स्वयं को केवल कांग्रेस दल तक ही सीमित नहीं रख सकते हैं, उन्हें पूरे राष्ट्र का अर्थात् संपूर्ण समाज का हित साधन करना है। वे इतने प्रभावशाली जनादेश का उपयोग स्वयं को सत्ता में बनाए रखने के काम में न लाएं। अन्यथा वे श्रीमती इंदिरा गांधी के समान ही विफल सिद्ध होंगे। सर्वसाधारण जनता के जानमाल की सुरक्षा एवं अशिक्षित उपेक्षित तथा पीड़ितों को शेष समाज के समकक्ष लाने के लिए ही वे प्राप्त जनादेश का उपयोग करें।

श्री राजीव गांधी राजनीति में नए हैं तथा एक युवक हैं। वे चार साल पूर्व सत्ता के इच्छुक नहीं थे। सहयोग की राजनीति का अभिनव प्रयोग प्रारंभ करने के लिए उन्हें सबके सहयोगी के रूप में काम करने का अनुरोध तभी साकार होगा, जब सभी लोग उस दिशा में चलने के लिए तैयार हों। इसी कारण मेरी सभी से प्रार्थना है कि वे सहयोगी राजनीति का युग निर्माण करने में पहल करें।

श्री राजीव गांधी से मेरा यह भी अनुरोध है कि वे केवल राजनेताओं से ही विचार-विमर्श न करें अपितु सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र के महानुभावों से भी विचार विनिमय करते रहें। राष्ट्र के सर्वांगीण पुनर्निर्माण के लिए सबके सहयोग का वातावरण निर्माण करना आवश्यक है, इतना ही मेरा कहना है। यदि इस बात के लिए सब सिद्ध होते हैं तो प्रत्यक्ष व्यवहार का रूप निश्चित करना कठिन नहीं होगा।

01 मई, 1986

माननीय प्रधानमंत्री महोदय
प्रिय श्री राजीवजी,

स्वतंत्र भारत को आपके रूप में प्रथम बार नवयुवक प्रधानमंत्री प्राप्त हुआ। स्वाभाविकतः युगानुकूल सामाजिक नवरचना की आशा बनी है।

लोकसभा के आम चुनाव में राष्ट्रीय एकात्मता एवं अस्मिता के लिए आपने सबका आह्वान किया था। समाज ने बड़ी खुशी से आप पर बेमिसाल विश्वास प्रगट किया और आपके प्रधान-मंत्रित्व की जोरदार पुष्टि की।

इस बैकग्राउंड के कारण मुसलिम महिलाओं से संबंधित बिल के रूप में एकात्मता एवं अखंडता पर आघात करनेवाला कानून बनाने का प्रस्ताव आपके कारण लोक सभा में आएगा, उसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी।

यह बिल एकात्मता व अखंडता के लिए नया खतरा खड़ा कर रहा है। मनमानी तलाक पद्धति के कारण सैकड़ों सालों से तलाक प्राप्त असंख्य असहाय मुसलिम महिलाएं असह्य पीड़ा से ग्रस्त थीं। सुप्रीम कोर्ट ने उनके उद्धार का रास्ता खोलकर अपने संविधान में व्यक्त सिद्धांत को कार्यान्वित किया। यह कानून बनते ही वह रास्ता फिर बंद हो जाएगा। एक सहृदय नवयुवक से यह उम्मीद नहीं थी।

प्रभु से प्रार्थना है कि वह आपको इस गलत कदम से बचने की समय से राह दिखाए।

13

2 सितंबर, 1988

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय श्री राजीवजी,

1984 के आखिरी दिनों में तत्कालीन प्रधानमंत्री आदरणीय इंदिराजी की हत्या हुई थी। देश संकटग्रस्त हो गया था। ऐसी विकट परिस्थिति में आपको प्रधानमंत्री पद का दायित्व स्वीकारना पड़ा था। उस समय मैंने सार्वजनिक रूप से सभी देशवासियों से अपील की थी कि वे इस संकटपूर्ण परिस्थिति में दलगत भावना से ऊपर उठकर सहानुभूति के साथ आपको सहयोग प्रदान करें।

सबसे बड़ी उम्मीद थी कि आप समान एक नौजवान प्रधानमंत्री सभी को, विशेषतः देश की

12 मुसलिम महिला बिल के प्रति विरोध प्रकट।

13 प्रेस की स्वतंत्रता के खिलाफ लाए गए बिल के प्रति विरोध प्रकट।

असीम ध्रुवशक्ति को, व्यापक स्तर पर साथ में लेकर सभी दिशाओं में राष्ट्र नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

किंतु जब देश के उच्चतम न्यायालय ने, संविधान की पृष्ठभूमि में, सदियों से असह्य अन्याय के बोझ के नीचे दबकर यातनाएं सहनेवाली मुसलिम महिलाओं को राहत पहुंचानेवाला निर्णय दिया, उस समय आपने उस न्यायपूर्ण निर्णय को निरस्त करनेवाला प्रतिगामी बिल लोकसभा में पेश किया था। तभी मैंने पत्र द्वारा (1 मई, 1986 को) आपसे अनुरोध किया था कि आप तलाकशुदा मुसलिम महिलाओं पर होनेवाले निर्मम अन्याय को कायम रखनेवाला बिल वापस लें। आपने मेरे उस अनुरोध की उपेक्षा की। उस अन्यायपूर्ण बिल को कानून का रूप प्रदान किया। उससे देश का तो नुकसान हुआ ही, आम लोगों को आपसे जो उम्मीदें बची थीं, वे तब निराशा में परिवर्तित हो गईं।

अब आपने 30 अगस्त को पत्रकारिता की स्वतंत्रता पर कुठाराघात करनेवाला बिल जल्दबाजी में लोकसभा से पारित करवा लिया। इससे राष्ट्र-हित एवं लोकतंत्र को तो हानि होगी ही, व्यक्तिगत आपको अधिक नुकसान उठाना पड़ेगा। मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि आपके कौन सहयोगी एवं सलाहकार हैं, जो आपको लगातार अधिकाधिक मुसीबतों में फंसा रहे हैं।

मैं केवल लोकतंत्र और देश के हित में ही नहीं, आपके व्यक्तिगत हित में भी साग्रह अनुरोध करता हूं कि आप इस बिल को अविलंब वापस लेकर देश को नए संकट से बचाएं।

14

28 जून, 1990

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय श्री विश्वनाथ प्रताप सिंहजी,

तमिलनाडु के समुद्र किनारे पर विशेष गंभीर परिस्थिति उत्पन्न हुई है। श्रीलंका के विद्रोही तमिलनाडु से ही अपनी सब प्रकार की आवश्यकताएं पूर्ण करने की दृष्टि से साग-सब्जी, अनाज आदि से लेकर जिप्सी जैसी गाड़ियां भी तमिलनाडु से श्रीलंका ले जा रहे हैं। किनारों पर तैनात सरकारी अधिकारी और पुलिस कर्मचारी भी विवश होकर यह सब केवल देखते रहते हैं। श्रीलंका के इन विद्रोहियों का आतंक इतना जबरदस्त है कि उन्हें रोकने का या उनका सामना करने का साहस किसी में दिखाई नहीं देता।

अधिक गंभीर बात यह है कि श्रीलंका के विद्रोही तमिलनाडु की सरकारी गाड़ियों में घूमते नजर आते हैं। यह निवेदन करने का कारण केवल इतना ही है कि तमिलनाडु सरकार का क्रियाकलाप ऐसा क्यों?

14 श्रीलंकाई विद्रोहियों को सरकारी शरण प्राप्त होने पर चिंता।

विराट् पुरुष

तमिलनाडु का श्रीलंका के निकट का समुद्र का किनारा अविलंब जल-सेना के अधिकार में न दिया गया तो तमिलनाडु क्षेत्र भी कश्मीर या पंजाब से कम समस्याग्रस्त नहीं बनेगा।

मैं जानता हूँ कि इन सब बातों की जानकारी आपको मुझसे अधिक होगी। किंतु केंद्रीय सरकार का इस दिशा में कोई परिणामजनक कदम उस क्षेत्र के निवासियों को अनुभव नहीं हो रहा है। इस कारण वे लोग अत्यधिक भयभीत हैं। इसी कारण यह पत्र लिखने के लिए मुझे विवश होना पड़ रहा है।

मैं जानता हूँ कि आपको एक ही समय अनेकानेक समस्याओं की ओर ध्यान देना पड़ता है। किंतु प्रधानमंत्री का यह अनिवार्य दायित्व है।

मेरा विश्वास है, आप इन सब समस्याओं का निराकरण करने में सफल होंगे। शुभकामनाओं सहित।

15

13 जुलाई, 1990

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय श्री विश्वनाथ प्रताप सिंहजी,

अभी-अभी आपके एक निकटतम मित्र का फोन मिला। उन्होंने कहा, जो कुछ श्री देवीलाल कर रहे हैं तथा जिस प्रकार कुछ ही दिन पूर्व अपदस्थ किए गए श्री ओमप्रकाश चौटाला को हरियाणा का फिर से मुख्यमंत्री बनाया गया है, आपकी अनुमति और जानकारी के बिना किया गया है। यदि यह सत्य है तो मुझे थोड़ी सी राहत अनुभव हुई।

बहुत विचार करने के बाद मैं सोच रहा हूँ कि आपको श्री देवीलाल को अविलंब उप-प्रधान मंत्रित्व एवं मंत्रिमंडल से हटा देना चाहिए। इतना ही नहीं, हरियाणा की सरकार हटाकर वहां राष्ट्रपति-शासन लागू कर देना चाहिए।

इसके राजनीतिक परिणाम जो कुछ भी हों, उसकी परवाह न करें। यदि आपकी सरकार टूट भी जाती है तो देश का उतना नुकसान नहीं होगा, जितना नुकसान इस प्रकार की सरकार चलते हो रहा है।

16

24 दिसंबर, 1990

माननीय प्रधानमंत्री महोदय
प्रिय श्री चंद्रशेखरजी,

समाचार-पत्रों में पढ़ा कि पंजाब प्रश्न सुलझाने के लिए आप संविधान में भी परिवर्तन कर

15 राष्ट्रहित में उप प्रधानमंत्री को पदच्युत करने की सलाह।

सकते हैं। ऐसा करना राष्ट्र विघटन के लिए अधिकृत प्रोत्साहन होगा। यह आप कदापि स्वीकार नहीं कर सकते—इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

पंजाब की स्थिति की आपसे अधिक जानकारी अन्य किसी को नहीं हो सकती। मुझे जो जानकारी मिली है, वह अत्यधिक चिंताजनक है—

- कोई न्यायाधीश न्याय देने की स्थिति में नहीं है। वहां न्यायाधीश अत्यधिक आतंकित एवं असुरक्षित अनुभव कर रहे हैं।
- प्रादेशिक स्तर के प्रशासकों में भी अधिकांश प्रशासक अपनी मोटरगाड़ियों की नंबर प्लेट्स गुरुमुखी में लगवाकर चलते हैं। गुरुमुखी में आपत्ति नहीं। किंतु नियम के विरुद्ध यह आचरण यहां आम लोगों में आतंक को और अधिक बढ़ा रहा है, वहां आतंकवादियों के साहस में वृद्धि कर रहा है।
- समाचार-पत्रों में काम करनेवाले पत्रकार इतने भयभीत हैं कि आतंकवादियों के विरुद्ध समाचार छापने का साहस नहीं कर पाते। जनरल वीरेंद्र वर्मा की विदाई की सामग्री पत्रकारों को केवल गुरुमुखी में ही वितरित की गई। हिंदी-अंग्रेजी में नहीं। रेडियो-टेलीविजन की बात सर्वविदित है। इससे स्पष्ट है कि आतंकवादियों के आतंक का प्रभाव कितना व्यापक है। ऐसे वातावरण में आम लोगों में अपनी सुरक्षा का विश्वास कैसे निर्माण हो?

आपने जनरल मेहरोत्राजी को गवर्नर के रूप में नियुक्त कर सर्वोत्कृष्ट कदम उठाया है। आशा है, वे भयानक रूप से बिगड़ी स्थिति पर काबू पा सकेंगे। उन्हें सफल बनाने में आप कोई कसर बाकी नहीं रखेंगे।

17

26 जून, 1991

प्रिय श्री कल्याण सिंहजी,

उत्तर प्रदेश के विधानसभा तथा लोकसभा चुनाव में आपके नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। इसे हम ऐतिहासिक सफलता भी कह सकेंगे, जब वह स्थायी रूप ग्रहण करेगी।

इसी सफलता के परिणामस्वरूप सहज और स्वाभाविक रूप से आप उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद पर विराजमान हुए हैं, इसकी मुझे बहुत खुशी हो रही है। इस दायित्वपूर्ण पद पर आरुढ़ होने के कारण मैं आपका हृदय से अभिन्नंदन करता हूँ तथा अपना स्नेहपूर्ण शुभाशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

इस अत्यधिक खुशी के प्रसंग पर मैं आपको, आपकी बढ़ी हुई जिम्मेदारियों का अनुभव

16 पंजाब समस्या पर चिंता।

17 उत्तर प्रदेश को पिछड़ेपन से उबारने के लिए भावनात्मक संदेश।

विराट् पुरुष

कराऊं, इसकी आवश्यकता नहीं है। कारण, आप स्वयं उसका अनुभव कर रहे होंगे। मध्य प्रदेश या अन्य प्रदेशों में जहां भारतीय जनता पार्टी को गत चुनावों में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई थी तथा उन्होंने सरकारें सभाली थीं। किंतु एक वर्ष के अंदर-ही-अंदर उन प्रदेशों में जनता की नजरों में उनका स्थान उल्लेखनीय रूप से घट गया है। आपके नेतृत्व के कारण उत्तर प्रदेश में वह गड़बड़ नहीं होगी, इसका मुझे भरोसा है।

शपथ-विधि के बाद आप सबका प्रभु राम के पावन जन्म-स्थान पर दर्शन के लिए जाना नितांत आवश्यक था। किंतु प्रभु राम के प्रति भावना संकुचित या सांप्रदायिक नहीं अपितु राष्ट्रीय-जीवन की तथा भारतीय गुण परंपरा की आधारभूत पृष्ठभूमि है, यह सिद्ध होना चाहिए। राम-भक्ति भारत की विविधता की एकात्मता प्रदान करनेवाली प्रेरणादायी राष्ट्र-शक्ति है, यह दिखा देने का आपको सुअवसर प्राप्त हुआ है। इसका आप पूरा लाभ उठाएंगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

प्रशासनिक क्षमता एवं कुशलता का परिचय देने का आपके जीवन का यह बहुमूल्य प्रसंग है। उत्तर प्रदेश महान् होते हुए भी अधिकांश दृष्टियों से पिछड़ा माना जा रहा है। यह कलंक प्रदेश के माथे से दूर करना आपका महत्वपूर्ण दायित्व है।

आपकी मूर्ति मेरे सम्मुख खड़ी है। वह सफल सिद्ध होगी, यह मेरी अंतरात्मा कह रही है। इससे अधिक लिखना संभव नहीं है। आपने आवश्यकता अनुभव की और आपसे भेंट हुई तो बहुत सी बातों पर विचार-विनिमय संभव है। मेरी आंतरिक भावना है कि आपकी सफलता या विफलता मेरी अपनी सफलता या विफलता होगी।

18

26 जून, 1991

माननीय प्रधानमंत्री महोदय

प्रिय श्री नरसिंह रावजी,

स्व. श्री राजीव गांधी की जिस परिस्थिति में निर्मम हत्या हुई, उससे मैं अत्यधिक दुःखी हुआ। उनके न रहने के बाद कांग्रेस की बागडोर आपके हाथ में आना स्वाभाविक था। कारण, कांग्रेस में आप समान सर्वमान्य, अनुभवी, संतुलित, संवेदनशील एवं दृढ़ व्यक्तित्व अन्य नहीं था। इतना ही नहीं, आप दूरदृष्टि के एक ऐसे नेता हैं, जिसका अभाव अभी तक अनुभव हो रहा है।

जिस समय आप सर्व-सम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष बने, उसी समय मेरे मन में विश्वास जगा था कि प्रधानमंत्री पद का दायित्व अभी आपके ही अनुभवी कंधों पर आएगा और मेरा यह अनुमान सत्य सिद्ध हुआ।

मेरे जैसा व्यक्ति आपके चुनौती भरे दायित्व के प्रसंग पर कुछ सुझाए, यह न आवश्यक है न

18 प्रधानमंत्री को ज्वलंत समस्याओं से निपटने के लिए आम सहमति बनाने का सुझाव।

उचित। फिर भी आपके प्रति विशेष आदर एवं लगाव की भावना अंतःकरण में होने के कारण कुछ सुझाव दिए बिना मन नहीं मान रहा है। इस कारण केवल एक सुझाव आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ—

समाचार-पत्रों में प्रकाशित आपके वक्तव्य पढ़ रहा हूँ। उससे संतोष हो रहा है, किंतु अभी तक के प्रधानमंत्रियों की कार्यशैली देखकर ऐसा लगता है कि देश के प्रधानमंत्री को किसी भी प्रश्न पर सलाह-मशविरा करने का कार्य केवल राजनेताओं तक ही सीमित रखना लाभदायक नहीं होता।

1965 में स्व. श्री लाल बहादुरजी ने पाकिस्तानी आक्रमण के समय में इस परिपाटी से हटकर देश के गैर-राजनीतिक लोगों से भी सलाह एवं सहयोग प्राप्त किया था। किंतु यह एक अपवाद ही माना जा सकता है। मैं समझता हूँ राष्ट्र-जीवन में जो विभिन्न प्रकार की समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं, उन सबका निराकरण सब प्रकार के महत्वपूर्ण लोगों के सहयोग से ही संभव है।

देश में अनेक प्रकार के संगठित कार्य चल रहे हैं। उन सभी का विभिन्न समस्याओं के निराकरण में कम-अधिक मात्रा में उपयोग हो सकता है। इतना ही नहीं तो राष्ट्र के नवनिर्माण में सबका सहयोग लिए बिना केवल शासनतंत्र मात्र से नवनिर्माण संभव नहीं हो सकता। इसकी अनुभूति रूस के 72 वर्ष के अनुभव ने सबको करा दी है। अतः इस संबंध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

मैंने इस पत्र के द्वारा आपका समय लेने का साहस किया, इसके लिए मैं क्षमा चाहूंगा।

19

03 अगस्त, 1991

प्रिय डॉ. मुरली मनोहर जोशी,

1991 में हुए चुनावों में भाजपा को देशव्यापी जनसमर्थन मिला, उल्लेखनीय विजय प्राप्त हुई तथा उसने राष्ट्रीय दल की सार्थक प्रतिष्ठा भी अर्जित की। यह सब संभव हुआ आप के अपने बलबूते पर। यह विशेष खुशी और गौरव का विषय है।

आप इस बात को स्वयं जानते हैं कि चुनावी सफलता राजनीतिक दल का साध्य नहीं अपितु साध्य प्राप्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण चरण मात्र है। आजादी मिलने के बाद कांग्रेस या कांग्रेसियों ने शासन संचालन की जो दिशा व कार्यप्रणाली अपनाई, वह नवस्वतंत्र देश के लिए आवश्यक राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक पुनर्रचना की दृष्टि से विफल सिद्ध हुई है।

आजादी के प्रारंभिक दिनों में, समाजवादी या कम्युनिस्ट कांग्रेस के विकल्प के रूप में उभरेंगे, यह अपेक्षा निराधार थी। कारण, स्वतंत्र भारत में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व नैतिक पुनर्रचना संभव है, केवल अपने त्रिकालजयी जीवन-मूल्यों व अखंड अनुभव परंपरा के आधार

19 भाजपा अध्यक्ष बनने पर सतालोलुपता और अवसरवादिता से दूर रहने के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव।

विराट् पुरुष

पर। कांग्रेस इस आधार को छोड़ चुकी थी तथा समाजवादी या कम्युनिस्ट, मार्क्सवादी बने रहकर, उस आधार को स्वीकार नहीं सकते। इस वास्तविकता को समझकर ही भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई थी। परिणामस्वरूप देश की राजनीति को उपयुक्त दिशा, सुदृढ़ आधार तथा तदनुसार कार्य प्रणाली प्राप्त होना प्रारंभ हुआ था।

1967 में कई प्रदेशों में जनसंघ के सहयोग से संविद सरकारें बनी थीं, उसे देखकर उत्तर प्रदेश में गुप्ताजी की कांग्रेसी सरकार गिराकर, मुख्यमंत्री पद पाने के लिए अपने ही दल का विश्वासघात करनेवाले अवसरवादी कांग्रेसी नेता के नेतृत्व में संविद सरकार बनाने की हमने जल्दबाजी की थी। इस कदम में राजनीतिक क्षेत्र में अपना वैशिष्ट्य प्रस्थापित करने के अपने आदर्श को धक्का लगेगा, इस चेतावनी के बावजूद उपर्युक्त कदम उठाया गया था। इसका आपको अवश्य स्मरण होगा। उसके दुष्परिणाम भाजपा (कालचक्र में तपकर निकले जनसंघ का नूतन रूप) को ही नहीं, देश की राजनीति को भुगतने पड़ रहे हैं। परिणामतः वर्तमान राजनीति को आदर्शवादी पटरी पर लाना कितना कठिन हो रहा है। इसकी अनुभूति आप अवश्य कर रहे होंगे।

संयुक्त सरकारें बनीं, तब से हम लोगों में ऐसी मानसिकता पनपती गई कि हम लोग अपने बलबूते पर कभी भी सत्ता प्राप्त नहीं कर पाएंगे। यह मानसिकता 1989 के अंत तक बनी रही। संभवतः अयोध्या में राम जन्मभूमि पर प्रभु राम का मंदिर बनाने की प्रेरणा देशव्यापी प्रबल आंदोलन के रूप में उभरी न होती तथा आप लोग उस आंदोलन से जुड़ने का साहसपूर्ण कदम न उठाते तो देश की राजनीति में भाजपा की स्वतंत्र पहचान प्रतिष्ठित न होती। इतना ही नहीं, किसी के सहारे के बिना, केवल अपने ही बलबूते पर चुनाव में बहुमत प्राप्त कर सकते हैं, इसकी आत्मविश्वासपूर्ण अनुभूति करने का सुअवसर भी उपलब्ध न होता।

भाजपा के जीवन में यह ऐतिहासिक मोड़ आया है, किंतु जिस ढंग से यह मोड़ आया है, उसने एक नाजुक प्रश्न खड़ा किया है। रामजन्मभूमि की अभूतपूर्व महत्ता शुद्धार्मिक रूप में उभरी है। प्रभु राम भगवान् के अवतार हैं। वे प्रत्यक्ष भगवान् हैं। इसी एक जनभावना को लेकर, भगवान् के प्रति परंपरागत असीम श्रद्धा के आधार पर, जन्मभूमि पर राम के भव्य मंदिर निर्माण की प्रचंड लहर निर्माण हुई है। इस लहर के निर्माण में देश के साधु-संतों की पर्याप्त भागीदारी रही है। राम का मंदिर निर्माण हो—उसमें रामलला का पूजन-अर्चन हो—सार्वजनिक रूप से कथा, कीर्तन, रामायण हो—इसी एक धार्मिक जनभावना के आधार पर संपूर्ण आंदोलन खड़ा हुआ है। भारतीय जनता पार्टी उपर्युक्त जनभावना के साथ है। यह सर्वविदित है।

किंतु भाजपा एक राजनीतिक दल है। वह अपने को उपर्युक्त धार्मिक भावना तक सीमित नहीं रख सकता। उसका राजनीतिक दल के नाते स्वयं स्वीकृत दायित्व है। बिना भेदभाव के देश के सभी नागरिकों के लिए सुख सुविधाएं, शांति एवं सुरक्षा उपलब्ध कराना उसका कर्तव्य है। भवितव्य की संभावनाओं को ध्यान में लेकर, अपने परंपरागत जीवन-मूल्यों को कायम रखते हुए, वर्तमान काल की आवश्यकताएं पूर्ण करने का कारगर कदम उठाना उसका प्राथमिक कार्य है।

इस बहुविध एवं गुरुतर कार्य को संपन्न करने के लिए श्रीराम के चरित्र के समान इस काल

में भी अन्य अनुकरणीय जीवन नहीं हो सकता। राम ने सामान्य मानव के नाते जन्म पाया। अपने आचरण में उसने, स्वयं को अपने कुटुंब का आदर्श घटक, समाज का संवेदनशील अंग, कष्टसहिष्णु सामाजिक कार्यकर्ता, देश को अनुकरणीय नागरिक, अन्यायनिर्मूलन का अग्रणी, संग्राम में साहसी एवं सफल योद्धा, सत्तामोह से मुक्त राजनेता तथा निष्पक्ष एवं निपुण शासक सिद्ध कर दिखाया था। अतः मानव मात्र के लिए राम समान अनुकरणीय व्यक्तित्व अन्य नहीं हो सकता। राम के इस मानवीय गुणों को देश के सभी नागरिकों के जीवन में उतारकर, वर्तमान काल में प्रचलित सत्तालोलुप्ता के तथा लज्जास्पद अवसरवादिता के वातावरण में आवश्यक परिवर्तन करना भाजपा का आद्यकर्तव्य है।

श्रीराम के इस मानवीय रूप का प्रस्तुतीकरण, रामजन्मभूमि के आंदोलन से शुद्ध भक्तिभाव से जुड़े लोगों को व साधुसंतों को, कितना भाएगा, यही नाजुक प्रश्न है। अतः भाजपा के नेतृत्व को विशेष ध्यान रखना होगा कि इस प्रश्न को लेकर अनावश्यक विवाद खड़ा न हो।

राजनीतिक दल के नाते अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं की दृष्टि से भी भाजपा को अपनी राजनीतिक कार्यशैली विकसित करनी चाहिए—

- चुनाव में सफलता पाने के लिए संभवतः व्यापक स्तर पर आदर्शवादी संगठन की आवश्यकता अनुभव न होती हो। किंतु उसके बिना प्रामाणिक, कर्तव्यतत्पर एवं लोकप्रिय प्रशासन प्रदान करना शायद कठिन हो। केवल नौकरशाही के बलबूते पर, सैकड़ों साल गुलामी में रहे समाज में अपने जीवन-मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करना कैसे संभव होगा? सर्वसाधारण नागरिकों में राष्ट्रीय प्रेरणा अंकुरित कर उन्हें राष्ट्र नवनिर्माण के विविध कार्यों में सक्रिय बनाए बिना राष्ट्र का नवनिर्माण संभव नहीं है। लोगों में, विशेषतः देश के युवा वर्ग में राष्ट्रीय प्रेरणा अंकुरित करना नौकरशाही का काम नहीं है। यह काम वेतनभोगियों से नहीं निस्स्वार्थ समाजसेवियों से ही संभव है। इसके लिए राजनीतिक दल का राम व भरत के महान् सत्तामोह से मुक्त महिला पुरुष कार्यकर्ताओं का मुहल्ले-मुहल्ले व ग्राम-ग्राम में व्याप्त संगठन खड़ा करना नितांत आवश्यक है। स्व. पं. दीनदयालजी के समान पदलालसा से मुक्त लोकसंग्राहक कार्यकर्ता ही इस काम को कर सकते हैं। सत्तर साल से अधिक काल तक केवल नौकरशाही के बल पर अपने राष्ट्र का अनोखा और सर्वांगीण ढांचा खड़ा करने का रूस का प्रयोग पूर्णतः विफल सिद्ध हुआ है। राजनेताओं को यह अनुभव ध्यान में रखना चाहिए।
- भाजपा के अधिकार में मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा राजस्थान का शासन आकर कुछ काल बीत चुका है। अभी-अभी उत्तर प्रदेश का शासन चलाने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ है। कांग्रेसियों की स्वाधीन भारत की शासन चलाने की कार्यशैली सब दृष्टियों से विनाशकारी सिद्ध हुई है। स्व. पं. नेहरू ने व उनके वंशजों ने शासन की लोकतांत्रिक परंपरा विकसित करने के स्थान पर व्यक्तिवादी अर्थात् एकाधिकार पद्धति को प्रचलित कर रखा था। इसी का दुष्परिणाम है कि स्व. पं. कमलापति त्रिपाठी जैसा वयोवृद्ध व बुद्धिमान नेता भी राष्ट्र के प्रति नहीं नेहरू खानदान की प्रतिष्ठा की दुहाई देता रहा है। इसी कारण देश का शासन व

विराट् पुरुष

प्रशासन जनता के प्रति कर्तव्यतत्परता खो बैठा है। प्रशासन की इस असामाजिक अवस्था में हमें चार प्रदेशों में शासन संचालन करने का तथा प्रशासन को जनता के प्रति कर्तव्य तत्पर बनाने का काम करना पड़ रहा है। फिर भी हम स्वयं स्वीकृत दायित्व से, यह कहकर कि हमें विरासत में गया-गुजरा प्रशासन मिला है, भाग नहीं सकते।

जिन-जिन प्रदेशों में हमें शासनाधिकार प्राप्त हुआ है, वहां केवल मुख्यमंत्रियों का चयन करा देना व मंत्रिमंडल का गठन करा देना मात्र पर्याप्त नहीं है। शासन संचालन की दृष्टि से अपने कार्यकर्ता एकदम नए एवं अप्रशिक्षित हैं। ऐसी अवस्था में कुशासन को सुशासन में परिवर्तित करना बहुत कठिन कार्य है।

स्वतंत्र भारत के शासकों ने प्रशासन तंत्र को बहुत बिगाड़ रखा है। गलत कामों के अभ्यस्त खुराट प्रशासक सहज में ही भांप लेते हैं कि मुख्यमंत्री या मंत्रीगण अपने मंत्रालयीन दायित्वों को व प्रशासकीय विधियों को कितना जानते हैं। चापलूसी में कुशल, अधिकांश प्रशासक अपने विभाग के मंत्री को प्रचलित कुशासन ने ढर्रे पर चलाने की चालाकी कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में सत्तारूढ़ होने पर भी शासन की नीतियां निर्धारित करने में व तदनुसार प्रशासन संचालन में गुणात्मक परिवर्तन करने का कठिन काम हमें करना है। इसी अपेक्षा से जनता ने हमें बहुमत प्रदान कर शासन सौंपा है।

प्रथमतः हमें विशेष ध्यान रखना होगा कि अपने शासकों में कांग्रेसी शासकों के समान व्यक्तिवाद न पनपे। वे सत्तामद के शिकार न बनें। उनमें सामूहिक निर्णय लेने की लोकतांत्रिक पद्धति विकसित हो। टीम स्पिरिट से काम करने का उनमें अभ्यास बढ़े। इसके लिए हमें विशेष रूप से अपनी ही कार्यपद्धति विकसित करनी पड़ेगी।

प्रादेशिक स्तर पर हमें अपने सिद्धांतों व विचारों के प्रामाणिक, कल्पक, सक्षम व अवकाश प्राप्त अनुभवी प्रशासक, मंत्रीमंडलीय विषयों के ज्ञाता व भाजपा के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं की मिलकर एक छोटी सी प्रादेशिक प्रशासन परामर्शदात्री समिति गठित करनी चाहिए। यह प्रशासन समिति नहीं परामर्शदात्री समिति मात्र है, इसकी स्पष्ट कल्पना इस समिति के सभी सदस्यों को होनी चाहिए। मुख्यमंत्री इस समिति का सदस्य रहेगा तथा जिस किसी मंत्रालय के काम का विचार किया जाएगा, उस बैठक में उस विभाग का मंत्री उपस्थित रहना आवश्यक है। मुख्यमंत्री या कोई मंत्री इस परामर्शदात्री समिति की अवहेलना न करे, इसकी उन्हें कल्पना देनी चाहिए।

यह समिति भाजपा के शासन व प्रशासन को अपेक्षित दिशा में सफलता प्राप्त करा सकेगी। इसी से अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों का प्रशिक्षण भी होता रहेगा। अपने मंत्रियों को उनके अंतर्गत काम करनेवाले प्रशासकों से ठीक ढंग से काम करा लेना संभव होगा। इसके बिना अपने मंत्रियों से या मंत्रिमंडलों से अधिक अपेक्षा करना अव्यावहारिक होगा।

- कांग्रेस शासकों ने अपने शासनकाल में अपने प्रिय जनों, दल के कार्यकर्ताओं तथा धनार्जन की दृष्टि से अनेक धनपतियों के उचित-अनुचित काम करा देने में प्रशासन का बहुत दुरुपयोग करने की प्रथा कायम की है। अब अपना शासन होने के कारण अपने कार्यकर्ता, समर्थक

तथा अन्य लोग भी अपने मंत्रियों से वही अपेक्षा करेंगे। संविद सरकारों के काल में यह अनुभव आ चुका है। इसमें कार्यकर्ताओं या मंत्रियों को दोष देना गलत होगा। अभी तक हमने अपने लोगों को इतना ही समझाया है कि हमें चुनाव में बहुमत प्राप्त कर प्रदेशों व केंद्र में अपना शासन कायम करना है। शासन हाथ में आने के बाद कांग्रेसियों द्वारा प्रचलित प्रशासन में व्याप्त कौन सी कुप्रथाओं को हटाकर किस प्रकार सुशासन प्रस्थापित करना होगा, इसका प्रशिक्षण अपने कार्यकर्ताओं को दिया नहीं गया है। अतः यह कार्य भी हमें अब करना पड़ेगा। इसके बिना अपना शासन न अपने कार्यकर्ताओं, समर्थकों व जनता को संतुष्ट रख सकेगा, न स्वयं सफल सिद्ध हो पाएगा।

इसके लिए आवश्यक है कि हम प्रदेशों के जिले-जिले में, नगरों व विकास खंडों के स्तर पर अपने कार्यकर्ताओं के, समर्थकों तथा नागरिकों के अलग-अलग सम्मेलन नियमित रूप से आयोजित करें। उनमें उपर्युक्त बातों की चर्चा करें। इन सम्मेलनों में मार्गदर्शन करनेवाले कार्यकर्ताओं को अलग से प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करें। अन्यथा ये सम्मेलन नया सिरदर्द खड़ा करेंगे। हमने स्वातंत्र्य पा लिया है। भारत को गुलामी में रखनेवालों की संसदीय प्रणाली अपनाकर अपने देश का शासन चलाना स्वीकार किया है। किंतु विदेशी हुकूमत के स्थान पर स्वाधीन भारत का शासन हमें किस रूप में व किस प्रकार चलाना होगा, इसका संभावित शासकों को, प्रशासकों को, राजनीति के क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को व लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाने के कारण सामान्य नागरिकों को प्रशिक्षित करने का कोई प्रयास नहीं किया है। विधायकों व सांसदों के भी प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभव नहीं की है।

शासन व प्रशासन संचालन की क्षमता केवल चुनाव जीतने से और शासन पर अधिकार जमाने से प्राप्त नहीं होती। उसके लिए प्रदीर्घ प्रशिक्षण आवश्यक है। इसका ध्यान भाजपा को तो रखना चाहिए था। कारण, हम अपनी गौरवशाली अखंड अनुभव परंपरा के अभिमानी हैं। उसी के आधार पर भारत का भविष्य निर्माण करने की बातें करते हैं। पुरातन काल में संभावित शासकों को शासन व प्रशासन तंत्र का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। चाणक्य ने तो इस विषय पर विशद एवं विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर रखा है। इसके बावजूद हम बिना प्रशिक्षण के ही शासन व प्रशासन चलाने में जुटे हैं। कम-से-कम अब हम अपने इस उपेक्षित पहलू की ओर विशेष ध्यान दें। अन्यथा हम भी जन-विश्वास व आत्मविश्वास खो बैठेंगे।

- भाजपा के पास विधानसभाओं व विधान परिषदों की तथा लोकसभा एवं राज्यसभा में सांसदों की अच्छी खासी संख्या है। उन्हें सरकारी खजाने से (जन धन से) अच्छा वेतन, पर्याप्त भत्ता और अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं। पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं के नाते अपने-अपने सदनों में, जनप्रतिनिधियों के नाते अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में, भाजपा सदस्यों के नाते दलीय संगठन में, वे अपना दायित्व किस प्रकार निभाएं, इसके प्रशिक्षण की एवं उनके द्वारा उनका दायित्व निभा पाने की लोकतांत्रिक प्रणाली विकसित करना भाजपा की पूर्ण सफलता के लिए आवश्यक है।

निर्वाचित होने मात्र से ये क्षमताएं विधायकों व सांसदों में अपने आप आएंगी, समझना

विराट् पुरुष

व्यावहारिक नहीं है। चुनाव के पूर्व इस दृष्टि से प्रत्याशियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं की जाती। अनेकों को तो नामांकन-पत्र भरने के समय ही प्रत्याशी बनाया जाता है। परिणामस्वरूप आजादी के चौवालीस सालों में स्वस्थ लोकतांत्रिक परंपरा विकसित होने के स्थान पर उसका विकृत व निराशाजनक रूप ही प्रगट हो रहा है।

लिखते-लिखते पत्र की लंबाई की सीमा लांघ चुका हूं। वैसे यह विषय ही ऐसा है, जो हनुमानजी की पूंछ से प्रतिस्पर्धा कर सकता है। फिर भी इसे यहां ही पूर्णविराम दे रहा हूं। आपको उपर्युक्त बातों की आवश्यकता है या नहीं, यह जाने बिना ही बहुत कुछ लिख दिया है। कारण, आपके प्रति अंतःकरण में आत्मीयता का सहज भाव काम करता है।

20

17 अक्टूबर, 1991

प्रिय श्री कल्याण सिंहजी,

आप कश्मीर से विस्थापित हुए कश्मीरियों की दयनीय अवस्था से परिचित हैं। देश के नागरिकों को अपने ही देश में विस्थापित होने के अकल्पनीय दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ रहा है। देश की इससे अधिक दयनीय दशा हो नहीं सकती। यह सब देखकर समझ में नहीं आता कि देश में अपनी सरकार कार्यरत है, यह कैसे कहा जाए? अस्तु।

कश्मीर से कुछ विस्थापित उत्तर प्रदेश के नोएडा परिसर के अंतर्गत या निकट अपने आवास एवं काम के लिए कुछ जगह ले रहे हैं। उस जगह का उन्होंने आंशिक भुगतान भी किया है। मेरा विश्वास है, आप तथा आपके सहयोगी राजस्व मंत्री एवं आपकी सरकार कश्मीर के विस्थापितों को आवश्यक सहयोग प्रदान करने में विलंब नहीं करेगी।

कश्मीर से विस्थापित होकर आए हुए नागरिकों से मेरा व्यक्तिगत परिचय है तथा उनके बालक-बालिकाओं के शिक्षण की दृष्टि से संभाव्य सहायता करने में मैं स्वयं सक्रिय हूं। इसी कारण मैं उनकी कठिनाइयों को स्वयं अनुभव कर रहा हूं।

21

28 अक्टूबर, 1991

प्रिय डॉ. मुरली मनोहरजी,

आपने देश की एकता व एकात्मता के लिए कन्याकुमारी से श्रीनगर तक की यात्रा की घोषणा की है। यह पढ़कर कुछ विचार मस्तिष्क में उभरे हैं—

20 कश्मीरी विस्थापितों के लिए सहयोग की अपील।

- पाकिस्तान को चेतावनी दी जाए, 1947-48 में कश्मीर का जो भूभाग उसने जबरन हड़प लिया है, उसे अविलंब भारत को सौंप दे। अन्यथा भारत स्वयं उसे मुक्त कराने के लिए मजबूर होगा।
- देश के विभिन्न प्रदेशों से कम-से-कम एक लाख परिवार कश्मीर में बसाने के लिए युवकों को तत्पर कर इस कार्यक्रम का श्रीगणेश 11 फरवरी, 1992 से प्रारंभ करवाना (स्व. दीनदयालजी के बलिदान दिवस पर) इस यात्रा का दूसरा पहलू है। देश का नौजवान 370 का अस्तित्व मानने के लिए तैयार नहीं है।
- कश्मीर में आतंकवाद का तांडव बंद होकर कश्मीर के निवासी स्वयं 370 धारा समाप्त करने की मांग नहीं करते, तब तक भारत सरकार कश्मीर को आर्थिक सहायता देना बंद रखे।
- यह यात्रा राम-जन्मभूमि आंदोलन का ही एक पहलू है। यह यात्रा उसी का एक अंग है।
- पंजाब में पाकिस्तान घुसपैठियों द्वारा अपना हस्तक्षेप अविलंब बंद नहीं करता तो भारत को मजबूर होकर पाकिस्तान में समाया हुआ पंजाब का भाग मुक्त कराकर उसे भारत में मिलाना अनिवार्य हो जाएगा। भारत सरकार इस कदम की अविलंब घोषणा करे। अन्यथा भारतीय जनता पार्टी सरकार पर दबाव डालने के लिए देशव्यापी आंदोलन प्रारंभ करेगी।
- इन कदमों के फलस्वरूप असम में उत्फा आंदोलनकारियों की भी आंखें खुलेंगी तथा देश में अलगाववादी प्रवृत्ति का उन्मूलन करने में सहायता प्राप्त होगी।
- राष्ट्र की एकता एवं एकात्मा के लिए उपर्युक्त कार्य संपन्न करना अनिवार्य है।
इस लक्ष्यसिद्धि के लिए आपने अपनी यात्रा का कार्यक्रम आयोजित किया होगा, ऐसा मैं समझता हूं। आप अपनी यात्रा द्वारा अपनी लक्ष्यसिद्धि में सफल हों।

22

08 अप्रैल, 1993

प्रिय श्री लालजी,

देश में जो कुछ हो रहा है, उससे लोग बहुत दुःखी हैं। उच्चपदस्थ नेताओं के आचरण में नैतिकता का अभाव व्यापक स्तर पर निराशा फैला रहा है। देश का भविष्य निर्माण करने के लिए जनविश्वास एवं सहकार अर्जित करना सर्वाधिक महत्व का काम है।

प्रचलित राजनीति काले धन पर कार्यरत है। ऐसी राजनीति न जनविश्वास संपादन कर सकती है, न देश का भविष्य ही बना सकती है। इस राजनीति की दिशा बदलना अति आवश्यक है।

भाजपा साहस जुटाकर घोषणा करे कि वह चुनाव के लिए या किसी भी अन्य काम के लिए काला धन स्वीकार नहीं करेगी। एकत्रित धन के आय-व्यय का हिसाब हर स्तर पर रखेगी तथा

विराट् पुरुष

अंकेक्षण कराकर उसे जनता की जानकारी के लिए प्रतिवर्ष प्रकाशित करेगी।

यह काम सरल नहीं है। कारण, इसकी आदत छूट गई है। किंतु आज की स्थिति में जनविश्वास प्राप्ति का यही एक सर्वाधिक प्रबल साधन है। इस कदम से पार्टी में फिर से आदर्शवाद का जीवन प्रारंभ होगा। राजनीति को एक नई क्रांतिकारी दिशा मिलेगी। भाजपा के प्रति समाज के सभी वर्गों में आकर्षण निर्माण होगा। अन्य राजनीतिक दलों में हड़कंप मचेगा।

23

29 अप्रैल, 1993

सभापति महोदय,

आज के कार्यक्रम में मैं उपस्थित नहीं रह पा रहा हूँ, इसके लिए मैं आप सबसे क्षमा चाहता हूँ। कश्मीर में कोई मंदिर नहीं तोड़ा गया है, ऐसा जोरदार अभियान चलाया जा रहा है। इस अभियान में बढ़-चढ़कर संलग्न समाचार-पत्रों में से एक विशेष उत्साही समाचार-पत्र में वर्तमान काल में कार्यरत एक वरिष्ठ पत्रकार कश्मीर में भग्न मंदिर को स्वयं देख आए हैं। इसके बावजूद इस अभियान में संलग्न लोग अपने प्रचार में लगे हुए हैं। अतः इन महानुभावों की मनोकामना समझ लेना जरूरी है।

06 दिसंबर, 1992 की घटना को लेकर अभियान में संलग्न लोग देश में ऐसा वातावरण निर्माण करना चाह रहे हैं, मानो हिंदुत्वाभिमान की खतरनाक सांप्रदायिकता फैलाकर देश की एकता व एकात्मता को खत्म करने पर तुले हुए हैं।

उनसे मैं विनम्रता के साथ पूछना चाहूंगा कि जिस सेक्युलरवाद को वे बल पहुंचाना चाह रहे हैं, क्या उसी सेक्युलरवाद के कारण 46 साल पहले मजहब के आधार पर अपने देश का विभाजन स्वीकार नहीं किया गया था? क्या यह कदम सेकुलरवाद को बल पहुंचा पाया है?

कश्मीर से ढाई लाख से अधिक कश्मीरी हिंदू जम्मू तथा अन्यत्र दयनीय अवस्था में सालों से पड़े हैं, क्या यह तथ्य नहीं है? बंबई के दंगों में क्षतिग्रस्त परिवारों को दो-दो लाख रुपयों की राशि अविलंब देने की व्यवस्था की गई। किंतु इन कश्मीरी परिवारों की सतत उपेक्षा की जा रही है। क्या ये कश्मीर के ध्वस्त ढाई लाख सजीव मानव मंदिर नहीं हैं? इनकी समुचित व्यवस्था के लिए कोई कदम न उठाना ही क्या सही सेक्युलरवाद है? क्या इसी नीति से देश में एकता एवं एकात्मता संभव होगी?

22 राजनीति में काले धन के प्रयोग पर चिंता। (नानाजी, श्री लालकृष्ण आडवाणी को स्नेहवश लालजी कह कर पुकारते थे)

23 धर्मनिरपेक्षता के नाम पर दोहरी नीति की आलोचना। डीआरआई के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री देवेन्द्र स्वरूप को लिखा पत्र

हिंदुस्तान में मजहब के आधार पर केवल मुसलमान ही अल्पसंख्यक नहीं हैं। वस्तुतः भारत में कोई भी मजहबी समुदाय बहुसंख्यक नहीं है। हिंदू मुसलमानों में बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक की भावना प्रस्थापित करने का अंग्रेजों का राजनीतिक षड्यंत्र था। दुर्भाग्य है कि सेक्युलरवादी नाम से जाने जानेवाले लोगों ने अंग्रेजों की ही दृष्टि अपना रखी है।

मुझे आशा है कि मजहब के आधार पर पारसी एवं ईसाइयों को ये सेक्युलरवादी अल्पसंख्यक मानते होंगे। अतः वे जरा विचार करें कि भारत में हिंदू-पारसी या हिंदू-ईसाई दंगे क्यों नहीं होते? हिंदू-मुसलिम दंगे ही क्यों होते हैं?

वस्तुतः भारत में किसी भी मजहब के प्रति कभी भी घृणा की भावना नहीं रही। भारत के बाहर से आनेवाले मजहबों का भी हमेशा स्वागत ही होता रहा है। मजहब के नाते इसलाम से भी कभी नफरत नहीं रही। फिर हिंदू-मुसलिम दंगे क्यों होते आ रहे हैं? इसका मूल कारण समझ लेना आवश्यक है। इसके बिना एक-दूसरे पर दोषारोपण करने मात्र से कोई लाभ होनेवाला नहीं है।

गहराई से समझने का प्रयास किया गया तो आज भी इसलाम के प्रति किसी में नफरत नहीं दिखेगी। नफरत है इस देश पर आक्रमण करनेवालों से, इस देश का बंटवारा करने की वृत्ति से या आतातायियों से। वे किस मजहब के हैं, यह प्रश्न ही नहीं पैदा होता। जो लोग (चाहे वे किसी भी मजहब के हों) उपर्युक्त तीनों प्रकार में से किसी से भी अपना नाता रिश्ता जोड़ते हैं, उनसे संघर्ष होना स्वाभाविक है। कारण, यह राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है।

मुसलिम नेतृत्व में (मुसलिम समाज ने ही कहा) मजहब की आड़ में राजनीतिक लाभ उठाने की परंपरा चला रखी है। पाकिस्तान उसी का नतीजा है। वही वृत्ति विभाजन के बाद भी चलाई जा रही है। उसे हिंदू-मुसलमान तनाव नाम दिया जा रहा है। सही अर्थ में यह राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय वृत्तियों में संघर्ष है। वह युग-युगों से चला आ रहा है। इसका किसी मजहब से संबंध न रहा है न है। इस वस्तुस्थिति को समझे बिना देश में न सेक्युलरवाद पनपेगा, न एकता तथा एकात्मता का जीवन ही खड़ा हो पाएगा।

मेरा तथाकथित सेक्युलरवादियों से साग्रह अनुरोध है कि वे निष्पक्ष भाव से वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास करें। तभी हम सब मिलकर राष्ट्र नवनिर्माण के अभियान में संलग्न होकर भारत का भविष्य बना सकेंगे।

प्रिय श्री लालजी,

उद्योगपतियों तथा बड़े व्यापारियों से चुनाव अथवा अन्य कार्यों के लिए धनराशि केवल चैक द्वारा ही स्वीकार करने का भाजपा का निर्णय स्वतंत्र भारत के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान

विराट् पुरुष

प्राप्त करेगा। राजनीति की गलत दिशा एवं दूषित कार्य प्रणाली के कारण प्रशासनिक एवं सामाजिक जीवन में जो खराबियां उत्पन्न हुई हैं, उनका निराकरण इसी क्रांतिकारी कदम के कारण संभव हो सकता है। इस कार्य का संगठन के अंतिम छोर तक कार्यान्वयन किया गया तो सर्व-साधारण कार्यकर्ताओं में आदर्शवाद की भावना फिर से प्रज्वलित हो सकेगी। इस उपाय के बिना जन-जीवन में सुधार की संभावना बची ही नहीं थी।

इस चिरवांछित संकल्प के लिए आपने जिस अवसर का चयन किया है, वह भी अपने आप में विशेष महत्व रखता है। भ्रष्टाचार उन्मूलन की घोषणाएं पं. जवाहरलालजी से लेकर अनेक प्रधानमंत्रियों ने की थीं। किंतु भ्रष्टाचार के मूल-स्रोत का उपचार करने का किसी ने भी साहस नहीं किया था। भ्रष्टाचार अबोधित गति से बढ़ता गया। परिणामस्वरूप राजनीति एवं राजनेता जनता का विश्वास खो चुके हैं। देश के भविष्य की आशा समाप्त हो रही है। ऐसे समय प्रिय श्री अटलजी एवं आपने मिलकर जो साहसपूर्ण पहल की है, वह अद्वितीय है। मैं आप दोनों का हृदय से अभिनंदन करता हूँ।

आपके इस संकल्प के कारण आपका जन-समर्थन बढ़ेगा। समाज का अच्छा वर्ग आपके साथ जुड़ेगा। आर्थिक दृष्टि से भाजपा की हानि नहीं होगी। अनाप-शनाप खर्चों पर रोक लगेगी। जनता के प्रति दायित्व की भावना बढ़ेगी। आम लोगों में भविष्य के प्रति आशा जगेगी।

इसी विषय से संबंधित एक और बात का उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। विधानसभाएं एवं लोकसभा लोकतंत्र के आधार-स्तंभ हैं। उनमें जन-जीवन के सर्वांगीण उन्नति के लिए आवश्यक विधियों पर सामूहिक विचार-विनिमय होता है। उपयुक्त निर्णयों को कानून का रूप प्रदान किया जाता है। इन सदनों में जन-प्रतिनिधियों के रूप में नव-निर्वाचित विधायक या सांसद प्रवेश करते हैं। उसके पूर्व उन्हें अपने चुनाव में हुए खर्चों का विवरण प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है। वह हिसाब कितना प्रामाणिक रहता है, यह सर्वविदित है। इस प्रचलित अनैतिक कार्यशैली में भी आवश्यक परिवर्तन करना आवश्यक है। आप दोनों इस दिशा में भी उपाय सोच रहे होंगे, इसका मुझे विश्वास है।

25

19 मार्च, 1995

प्रिय श्री गोपीनाथजी (मुंडे),

कृपया हार्दिक बधाई स्वीकार करें। स्वयं की तपस्या, साथियों का सहयोग, मतदाताओं की अपेक्षाएं एवं प्रभु की कृपा से महाराष्ट्र जैसे विशेष प्रदेश का उप मुख्यमंत्री पद पाने का गौरव आपको प्राप्त हुआ है। इससे चित्त प्रसन्न हो रहा है।

24 चुनाव में काले धन के प्रयोग पर अंकुश लगाने की पहल का स्वागत।

ऐसे सुखानंद के मंगल प्रसंग पर आप्तजनों द्वारा स्नेहपूर्ण भेंट करने की प्रथा है, किंतु इस अकिंचन मित्र के पास भेंट करने लायक कुछ भी नहीं है। अतः इस अभूतपूर्व एवं अद्वितीय सफलता के सुअवसर पर जो भाव मन में उठ रहे हैं, उन्हें ही भेंट के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ—

- अपने स्वतंत्रता काल के गत अड़तालीस सालों में शासन की जो प्रक्रिया प्रचलित हुई है, वह भारतीय जीवनादर्श के अनुरूप नहीं है। हिंदुत्व के उपासक होने के कारण आपके नेतृत्व के काल में महाराष्ट्र की शासन व्यवस्था में निम्न बातों का प्रभाव दिखाई देगा, ऐसी आशा है।
- 'राजसत्ता' शासनारूढ़ व्यक्ति या समूह के लिए उपभोग का विषय नहीं होता। न वह अपने साथियों एवं सगे संबंधियों को लाभ पहुंचाने का माध्यम ही है। वस्तुतः यह तो बिना किसी भेदभाव के संपूर्ण समाज के लिए न्यायपूर्ण सुव्यवस्था प्रस्थापित करने का पावन साधन मानकर उसका सदुपयोग करना ही सत्तारूढ़ व्यक्ति का कर्तव्य है। दुर्भाग्य से स्वतंत्र भारत में इस पुनीत कार्य की उपेक्षा हुई है। आप इस कर्तव्य पालन का शुभारंभ करेंगे, यह अपेक्षा है।
- प्रचलित पृष्ठभूमि में संसदीय लोकतंत्र को सफल सिद्ध करना सरल नहीं है, यह जानते और समझते हुए ही आपने इस कष्टसाध्य दायित्व को स्वीकार किया है। आपको अनेक मंत्रालयों द्वारा जनता की अपेक्षाएं पूर्ण करनी हैं। प्रशासन को भ्रष्टाचार से मुक्त, प्रदेश को समृद्ध नागरिकों को संतुष्ट तथा अभावग्रस्तों की दयनीय दशा में सुधार करने का मानवीय कार्य आपको करना है। हर एक मंत्रालय सुव्यवस्थित चलाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण से युक्त कार्यकर्ता का निर्माण पहले से ही कर पाना आपके लिए संभव नहीं हुआ है। सत्ता प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा के आवेग में यह महत्वपूर्ण कार्य दृष्टि से ओझल हो गया है। इस कारण प्रदूषित दृष्टिकोण से ग्रस्त नौकरशाहों से ठीक दिशा में कार्य करवाना काफी कठिन होगा। फिर भी इसे करने में अपनी संपूर्ण बुद्धिमत्ता एवं क्षमता काम में लाने की कुशलता आप प्रगट करेंगे ही। इसके लिए हर एक मंत्रालय के मंत्री के सहयोग के लिए उस विषय में रुचि रखनेवाले विधायकों, अपने से संबंधित उस विषय के विशेषज्ञों एवं अपने से संबंधित अवकाश प्राप्त अनुभवी प्रशासकों को मिलाकर एक छोटी सी अनौपचारिक सलाहकार समिति बना देना उपयोगी होगा। अन्यथा मंत्रालय के नौकरशाह मंत्रालय को गलत लीक पर ही चलाना पसंद करेंगे, जिसके वे अभ्यस्त हैं।
- आर्थिक क्षेत्र में कृषि, औद्योगीकरण एवं वाणिज्य का कार्य सर्वाधिक महत्त्व रखता है। अपनी परंपरा के अनुभव सिद्ध पहलू गत अड़तालीस सालों में पूर्णतः उपेक्षित किए गए हैं। सर्वथा आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में विषमता तथा बेकारी बढ़ाने, प्राकृतिक संसाधनों का बेहिसाब शोषण करने तथा प्रदूषण बढ़ाकर पर्यावरण को बिगाड़ने का काम चल रहा है। इसके दुष्परिणाम और अधिक भयानक रूप धारण करनेवाले हैं। इसी पृष्ठभूमि में महाराष्ट्र का शासन आप सबके हाथ में आया है। अतः भारतीय दृष्टिकोण को आधार बनाकर आधुनिक

विराट् पुरुष

तंत्रज्ञान का सदुपयोग करने की क्षमता रखनेवाले विशेषज्ञों का सहयोग लेकर इस दिशा में आप विशेष उपलब्धियों प्राप्त कर दिखाएंगे, यह अपेक्षित है। यह समय की आवश्यकता है। इस कार्य को संपन्न करने से ही सत्ता परिवर्तन का लाभ प्रदेश की जनता को प्राप्त होगा और देश के लिए आपका यह प्रयास मार्गदर्शक सिद्ध होगा।

व्यापार एवं उद्योग में संलग्न लोग भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हो सकते हैं। वे भी अपने समान ही इस राष्ट्र के नागरिक हैं। किंतु आज तक इस दिशा में देश और प्रदेश के शासकों ने अपेक्षित प्रयास किए ही नहीं। अपने व्यक्तिगत या दलगत लाभ के लिए ही इन संपन्न लोगों से लाभ अर्जित किया है। परिणामस्वरूप व्यापारी और उद्योगपति अपने घराने के लिए ही लाभ कमाने में संलग्न हैं। इसी कारण काले धन की वृद्धि, भ्रष्टाचार की व्यापकता, टैक्स की चोरी और अनैतिकता बढ़ती जा रही है। स्वतंत्रता के काल में इन्हीं सब बातों की बाढ़ आई हुई है। इस गलत दिशा को बदलने का सुअवसर आपको प्राप्त हुआ है। आप अपने साथियों के सहयोग से इस संपन्न वर्ग की जीवन दृष्टि में परिवर्तन कर उनकी प्रबंध क्षमता तथा समृद्धि का लाभ जन सामान्य की स्थिति सुधारने के लिए करें, यह आवश्यक है। इससे टैक्स बढ़ाए बिना शासन की आय बढ़ेगी तथा आर्थिक क्षेत्र के दोष दूर होंगे।

- स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत राष्ट्र नवनिर्माण के कार्य में जनशक्ति का उपयोग करने के कार्य की पूर्णरूप से उपेक्षा की जा रही है। सामाजिक या आर्थिक पुनर्रचना तथा नैतिक उत्थान आदि कार्यों का शासन ने ठेका ले लिया है। शासक वर्ग नौकरशाही के माध्यम से राष्ट्र नवनिर्माण के सभी कार्य संपन्न करा लेगा, यह अभारतीय धारणा दृढ़मूल की गई है। स्वतंत्र भारत के समाज को भारतीय परंपरा की अवधारणा के प्रतिकूल सत्ताभिमुखी बनाया गया है। परिणामतः सर्वमान्य नागरिक, विशेषतः युवा-वर्ग को देश और समाज के लिए कुछ करना है, इस भावना को भुला दिया गया है। इस कारण देश के नागरिकों के जीवन से राष्ट्रीय भावना समाप्त हो रही है। वे अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी शासन की ओर टकटकी लगाए रहते हैं। समाज में व्याप्त यह परनिर्भरता एवं दयनीयता को बदलना नितांत आवश्यक है। जन-शक्ति में असीम संभावनाएं निहित हैं। आपको सुअवसर प्राप्त हुआ है जन-शक्ति का राष्ट्र नवनिर्माण में उपयोग करने की दिशा में कदम बढ़ाने का।

वस्तुतः नव-स्वतंत्र देश के नवनिर्माण का कार्य राज-शक्ति एवं जन-शक्ति के संयुक्त प्रयास का विषय है। इन दोनों शक्तियों को राष्ट्र नवनिर्माण की गाड़ी के दो पहियों के रूप में काम में लाने पर ही देश का सर्वांगीण-विकास संभव है। मुझे विश्वास है, आप इस दिशा में पहल करेंगे।

- शिक्षा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्ति की जा सकती हैं। सरकार द्वारा प्रवेश की शिक्षा संस्थाओं को मान्यता तथा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। हर एक विद्यालय में जिन-जिन आबादियों से छात्र-छात्राएं पढ़ने के लिए आते हैं, उन पर सभी आबादियों के

निवासियों को साक्षर एवं शिक्षित करने का दायित्व मान्यता प्राप्त विद्यालयों को सौंपा जाना चाहिए। इससे हर एक विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाएं जन-सहयोग से उस क्षेत्र से निरक्षरता एवं अशिक्षा की विभीषिका को सहज में ही मिटा सकेंगे। पठन-पाठन पर इसका विपरीत परिणाम होने के स्थान पर नई पीढ़ी में सामाजिक दायित्व की भावना पनप सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में और भी महत्वपूर्ण कार्य किए जा सकते हैं। उनका उल्लेख कर इस पत्र को मैं अधिक लंबा बनाना नहीं चाहता।

संसदीय शासन व्यवस्था में सत्तारूढ़ पक्ष एवं विरोधी पक्ष की अवधारणा प्रचलित है। इसमें जो दोष हैं, उनसे मुक्ति पाने की आवश्यकता है। कोई दल स्थायी रूप से न सत्तारूढ़ रहता है, न कोई विरोधी ही बना रहता है। अतः दोनों का लक्ष्य एक सा है और वह लक्ष्य है देश या प्रदेश को अच्छे-से-अच्छा अर्थात् जनहितकारी शासन प्रदान करना। फलस्वरूप शासनारूढ़ दल की शासन व्यवस्था को विफल बनाने का प्रयास विरोधी दल के भी हित में नहीं हो सकता। शासन व्यवस्था यह देश और प्रदेश की स्थायी व्यवस्था है। उसमें खराबी पैदा करना देश के लिए घातक है। अतः विरोधी दल शासन व्यवस्था को न बिगाड़े, इसका विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। किंतु प्रचलित प्रथा में विरोधी दल इस वस्तुस्थिति को अनुभव नहीं करते। परिणामस्वरूप देश और प्रदेश की उन्नति खतरे में पड़ती जा रही है। इस गलत प्रथा में आवश्यक परिवर्तन करने का सुअवसर आपको प्राप्त हुआ है। अतः आप अपने प्रदेश की शासन या प्रशासन की कार्यशैली में सुधार करने के लिए निम्न कदम उठा सकेंगे तो संसदीय शासन व्यवस्था को देश और प्रदेश की दृष्टि से अधिक उपयोगी और लाभदायक बना सकेंगे।

आप हर एक मंत्रालय के द्वारा जनहित में अच्छे से अच्छे काम करने के लिए नीति निर्धारण और कार्यान्वयन की योजना बनाएंगे। यह योजना बनाते समय आप अपने विधायकों तथा विरोधी पक्ष में बैठे हुए नेताओं तथा विधायकों को अपने सुझाव लिखित रूप में देने के लिए अनुरोध करें। उनके जो उपयुक्त सुझाव प्राप्त होंगे, उन्हें सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर अपनी योजना में सम्मिलित करें। जो सुझाव उपयुक्त नहीं हैं, वे स्वीकार वयों नहीं किए गए, इसकी भी जानकारी आम लोगों को मिलनी चाहिए। इससे सत्तारूढ़ दल और विरोधी दलों में जो कटुता एवं उठापटक तक बात बढ़ती है, उसे घटाया जा सकता है। लोकतंत्र में उदारता अति आवश्यक होती है। इससे सत्तारूढ़ दल की कोई हानि नहीं होती। अपितु जनमानस में सत्तारूढ़ दल की कार्यशैली के लिए प्रशंसा का भाव ही निर्माण होगा। इसी से शासन व्यवस्था में पर्याप्त सुधार संभव हो सकता है।

आपको सहयोगी दल शिव-सेना के साथ मेल रखते हुए कार्य करना है। आशा है कि उपर्युक्त बातों में उनसे मत-भिन्नता की संभावना नहीं होगी। मेरे सुझाव एक व्यक्तिगत मित्र के हैं। उनका उपयोग करना आवश्यक नहीं है, किंतु उनका उपयोग हुआ तो लाभ की संभावना है। इसी अपेक्षा से यह पत्र प्रस्तुत है।

चि. सौ. प्रिय सुमित्राताई,

देवी अहिल्या समिति द्वारा आयोजित समारोह के प्रसंग पर मैंने महिलाओं के लिए आरक्षण के संबंध में अपना मत प्रस्तुत किया था। मेरे मत से अन्य लोग सहमत हों, यह आवश्यक नहीं है। मैं तो किसी के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था को हितावह नहीं मानता। एक ओर हम जनजीवन में पारिवारिकता की आवश्यकता अनुभव करते हैं, और दूसरी ओर आरक्षण की बात करते हैं। क्या इन दो बातों में तनिक भी सामंजस्य है?

परिवार पद्धति में कभी भी किसी के लिए आरक्षण की कल्पना नहीं की जा सकती। आरक्षण के अभाव में परिवार के किसी भी घटक की उपेक्षा व अवहेलना नहीं होती। यदि किसी की उपेक्षा होती है तो उस परिवार में पारिवारिकता का अभाव होता है और वह परिवार बिखर जाता है।

वस्तुतः आरक्षण अलगाव का द्योतक है। वह एकात्मता के प्रतिकूल अर्थात् विघटनकारी है। भारत के विभाजन के मूल में आरक्षण की प्रवृत्ति ही कारण बनी थी। यह ऐतिहासिक तथ्य है।

हरिजनों एवं वनवासियों को संविधान द्वारा दस साल के लिए आरक्षण उपलब्ध किया गया था। वे दस वर्ष इतने लंबे हुए हैं कि छियालीस साल बाद भी पूरे होते हुए दिखाई नहीं देते। वे दस वर्ष स्थायित्व पाने के लिए ही निर्धारित हुए हैं, ऐसा दुर्भाग्य से कहना पड़ता है।

यह विचारणीय विषय है कि हरिजनों एवं वनवासियों के लिए उपलब्ध आरक्षण के फलस्वरूप गत छियालीस सालों में सर्वसाधारण हरिजनों एवं वनवासियों को नाममात्र का भी लाभ नहीं मिल पाया। हां, झारखंड मुक्ति-मोर्चा के चार सांसदों को अवश्य करोड़-करोड़ रुपया प्राप्त हुआ है। इन अविकसित एवं उपेक्षितों की दुर्दशा का लाभ राजनेता अवश्य उठा रहे हैं तथा सर्वसाधारण हरिजन एवं वनवासी पूर्ववत् पिछड़े, अशिक्षित, निर्धन एवं प्रताड़ित हो रहे हैं। मैं स्वयं उनमें रह रहा हूं। उनके दयनीय जीवन का मैं अनुभव कर रहा हूं। आप चाहें तो उनके जीवन की हालत वनवासी राम के चित्रकूट में आकर देख सकती हैं। यह है छियालीस साल के आरक्षण की उपलब्धि।

आरक्षण की यह प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। मंडल आयोग इसी प्रवृत्ति का प्रतिफल है। यादव एवं कुर्मी जातियों में अच्छे और संपन्न किसान परिवारों की संख्या पर्याप्त है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनकी स्थिति कमजोर नहीं है। किंतु पिछड़ी जाति के नाम पर उन सभी को आरक्षण का लाभ मिल रहा है। कारण, यह आरक्षण राजनेताओं के लिए लाभदायी है।

26 आरक्षण और पारिवारिकता के विरोधाभास की व्याख्या। (श्रीमती सुमित्रा महाजन उस समय इंदौर से सांसद थीं)। संप्रति: लोकसभा अध्यक्ष।

स्वतंत्रता पाने के बाद समाज के पिछड़े एवं उपेक्षित लोगों के कल्याण-कार्यों में सक्रिय होने के स्थान पर देश के दल एवं राजनेता विभिन्न वर्गों, जातियों एवं मजहबों के लोगों के संकुचित स्वार्थों को उभारकर सत्ता का खेल खेल रहे हैं। इससे राष्ट्रीय एवं सामाजिक विघटन को बल मिल रहा है। इसकी अनुभूति राजनेताओं को नहीं होती, यह स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए संजोए सपनों की विडंबना है।

अब तो महिलाओं को भी तैंतीस प्रतिशत आरक्षण को संवैधानिक मान्यता मिल रही है। सभी दल एवं नेतागण इसके लिए उतावले हैं। महिला सांसद इस कारण विशेष प्रसन्न एवं उत्साहित हैं।

हम विचार करें कि क्या इस सुविधा से नारी जगत् का विकास एवं उत्थान होगा? परिवारों में पुत्रों और पुत्रियों को जन्म मिलता है। किंतु पुत्र होने पर जितनी खुशियां मनाई जाती हैं क्या उतनी खुशी कन्यारत्न प्राप्त होने पर मनाई जाती हैं? क्या इस विभेदकारी कुप्रथा का आरक्षण की सुविधा से निराकरण होगा? अब वैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप गर्भ में ही लिंग परीक्षण की सुविधा उपलब्ध है। अतः गर्भ में कन्या होने का पता चलने पर गर्भपात कराने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। महिलाएं भी कन्यारत्न के स्थान पर पुत्ररत्न की ही अभिलाषा रखती हैं। इस पक्षपातपूर्ण मानसिकता में परिवर्तन की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता क्या किसी राजनेता को अनुभव हो रही है? इस मानसिकता को बदले बिना क्या राजनीतिक आरक्षण सर्वसाधारण महिलाओं की वर्तमान दशा में आवश्यक परिवर्तन ला पाएगा?

मैं इस पत्र को अधिक लंबा बनाना नहीं चाहता। इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि आरक्षण केवल एक राजनीतिक चाल मात्र है। इससे राजनेताओं को लाभ अवश्य होगा। किंतु जिस वर्ग के लिए आरक्षण की सुविधा उपलब्ध होती है, उस वर्ग के सर्वसाधारण घटकों के विकास की उपेक्षा अधिक होने लगती है।

मेरा इतना ही निवेदन है कि महिलाओं के लिए मिलनेवाला आरक्षण महिलाओं के उत्थान के कार्यों में शिथिलता न आने दे। अपितु उनके विकास एवं उत्थान के कार्यों में गतिशीलता अधिक बढ़े।

महिलाओं का सर्वांगीण विकास न हो पाया तो अपना राष्ट्र सदासर्वदा पंगु बना रहेगा। महिलाओं का राष्ट्र एवं सामाजिक जीवन में जो सर्वाधिक महत्त्व का स्थान है, उस ओर अभी तक किसी का भी आवश्यक ध्यान गया ही नहीं है।

महिला अनिवार्यतः मां बनती है। वह ही महिला एवं पुरुषों की जननी है। यह ईश्वरीय व्यवस्था अपरिवर्तनीय है। उसी के गर्भ में शिशु जन्म के पूर्व नौ माह पलता है। इस काल में उस पर अमिट संस्कार होते हैं। अमरीका के नॉर्थ कारोलिना विश्वविद्यालय में इस पर प्रयोग हुए हैं। प्रयोग करने की प्रेरणा उन्हें महाभारतकालीन अभिमन्यु की घटना से प्राप्त हुई है। गर्भस्थ शिशु साढ़े-चार या पांच माह का होकर श्रवणशक्ति प्राप्त करता है। यह अनेक प्रयोगों से उन लोगों ने सिद्ध किया है। इस तथ्य को समझकर मां बननेवाली हरेक महिला की राष्ट्रीय दृष्टि कितने ऊंचे स्तर की होना आवश्यक है, इसकी कल्पना की जा सकती है। इस पर आप विचार करें, इसका अनुरोध करने के लिए ही मैं इतना लंबा पत्र लिखकर आपको कष्ट दे रहा हूं। आशा एवं अपेक्षा है कि आप जैसी विदुषी इस ओर अवश्य ध्यान देंगी।

26 नवंबर, 1996

रक्षा मंत्री महोदय,
प्रिय श्री मुलायम सिंहजी,

आज पत्र लिखने का कारण है—‘तिब्बत की समस्या’। चीन के वर्तमान राष्ट्रपति श्री जियांग-जेमिन का भारत आना विशेष महत्त्व रखता है। आप केवल रक्षा मंत्री ही नहीं, देश के प्रमुख नागरिक भी हैं। जब तक तिब्बत स्वतंत्र देश के नाते काम नहीं करेगा तब तक भारत सुरक्षित नहीं रहेगा। यह बात मैं आपको समझाऊं, इसकी आवश्यकता नहीं है। आप स्वयं इस बात को मुझसे अधिक समझते हैं।

मुझे इस बात की खुशी है कि आप जैसा दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति भारत का रक्षामंत्री है। आप आज ऐसी स्थिति में हैं कि इस संबंध में खुलकर चीन के राष्ट्रपति से बात कर सकते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य लोग खुलकर और स्पष्ट रूप में देश की सुरक्षा की दृष्टि से बात नहीं कर सकते। इसी कारण मैं आपसे अनुरोध कर रहा हूँ।

31 जुलाई, 1997

प्रिय श्री प्रभाषजी,

आपकी षष्टिपूर्ति के मंगल प्रसंग पर इंदौर में विशाल सार्वजनिक समारोह संपन्न हुआ। उसमें जनजीवन के अनेक क्षेत्रों से प्रभावशाली लोग सम्मिलित हुए थे। वर्तमान काल में सर्वप्रिय व्यक्तित्व पाना दुर्लभ है। देश भर में खोजने पर भी सर्वमान्य मानव नजर नहीं आता। इसी कारण आपकी षष्टिपूर्ति का दृश्य देखकर मुझे विशेष खुशी हुई। भविष्य के प्रति मैं आशान्वित हुआ।

भगवत् कृपा से आप प्रभावी पत्रकार हैं। मिलनसार स्वभाव के कारण देश भर के खास-खास पत्रकारों से आपकी निकटता है। विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रमुख नेताओं से भी आपके संबंध मधुर हैं। अपनी निष्पक्षता के कारण ही आप सर्वप्रिय हैं। आपकी उपर्युक्त क्षमताएं देश की बिगड़ी दिशा को पटरी पर लाने के काम आ सकती हैं।

आजादी पाने के बाद देश के नेताओं का चरित्र बदल गया है। वे जननेता न रहकर राजनेता बने हैं। पराए शासकों के समान वे भी सुरक्षा के घेरे में रहने लगे हैं। उसी में वे अपनी शान मानते हैं। इस कारण वे जनता के सहज संपर्क से कट गए हैं, किंतु इसका उन्हें मलाल नहीं है।

असामयिक सिद्धांतों का आवरण ओढ़कर विभिन्न नामों से नए-नए दल अस्तित्व में आ रहे हैं। अब दलों के नेता कम, नेताओं के दल अधिक बने हैं। आजादी पाने के पूर्व नेतृत्व करनेवाले नेतागण देश और समाज के लिए लड़ा करते थे। अब वे सत्तासुख पाने के लिए आपस में ही लड़ रहे हैं। देश और समाज उनकी नजर से ओझल है। जनसेवा द्वारा नहीं, एक-दूसरे को जनता की नजर में गिराकर वे अपनी प्रतिष्ठा प्रस्थापित करना चाह रहे हैं। लोगों की संकुचित भावनाएं भड़काकर वे अपने राजनीतिक स्वार्थ साधने में लगे हैं। परिणामस्वरूप देश टुकड़े-टुकड़े होने की स्थिति में पहुंचा है।

अपने दल के घोषणा-पत्र के अनुसार दल के नेता व कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्रों में काम कर जनजीवन में सुख संचार करने में रुचि नहीं रखते। वक्तव्य देना और भाषण करना मात्र वे अपने कर्तव्य की इतिश्री मानते हैं।

प्रत्येक सांसद को सरकारी खजाने से अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्र में विकास कार्य के लिए प्रतिवर्ष एक-एक करोड़ रुपया मिल रहा है। किंतु आज तक न किसी दल ने, न किसी सांसद ने, इस विशाल धनराशि का सदुपयोग वे किस प्रकार कर रहे हैं, इसका विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक समझा। कारण, जनधन के साथ उत्तरदायित्व-हीनता सब राजनेताओं का स्वभाव बना है।

सभी दल और उनके नेतागण अपने सिद्धांतों की डींग हांकते नहीं थकते। इसी आधार पर दलों में समय-समय पर छूत-अछूत के दौर भी चल पड़ते हैं। वस्तुतः इन बातों में कोई तथ्य नहीं होता। फिर भी प्रहरी कहलानेवाले पत्रकारगण इन्हीं बातों को उछालने में लगे हैं। वस्तुतः सिद्धांत की बातें सत्ता हथियाने के लिए काम में लाए जानेवाले हथकंडे मात्र हैं। जब कभी विधान सभाओं में या लोकसभा में विधायकों तथा सांसदों के वेतन और भत्ते बढ़ाने का प्रस्ताव आता है तब न किसी के सिद्धांत आड़े आते हैं, न छूत-अछूत की समस्या बाधक बनती है। सबके सब एकमत होकर वह प्रस्ताव अविलंब पारित कर लेते हैं। किंतु यही लोग करोड़ों निर्धनों, पीड़ितों एवं बेकारों की समस्याएं मिलकर हल करना नहीं चाहते। राजनेताओं की उपर्युक्त मानसिकता न राजनीतिक है न सामाजिक—पूर्णतः असामाजिक और स्वार्थपूर्ण है।

इस वस्तुस्थिति को समझकर इसके निराकरण के लिए कदम बढ़ाती हुई न कोई संस्था दिखाई देती है, न कोई व्यक्ति। इसी कारण इस कार्य के लिए आप पर नजर पड़ी है। इस काम की रूपरेखा बनाना अधिक कठिन नहीं है। प्रथम आवश्यकता है आपके निर्णय की। इसी एक काम में आपको अपना शेष जीवन केंद्रित करना होगा। इसी में अपने गौरवशाली अतीत एवं आपके व्यक्तित्व तथा पारिवारिक जीवन की सार्थकता है। अन्यथा मैं यह पत्र न लिखता।

29

26 दिसंबर, 1997

प्रिय श्री लालजी,

आप लोकसभा चुनाव नहीं लड़ेंगे, यह समाचार पढ़कर बहुत खुशी हुई थी। किंतु अब 'पार्टी

विराट पुरुष

ने फैसला किया तो लड़ सकता हूँ' यह पढ़कर अत्यधिक चिंता अनुभव हो रही है।

आपकी कुशल रणनीति एवं प्रिय अटलजी के जनमानस में अंकित प्रतिभा से मिलकर भारत का भाग्य उदय होने की संभावना प्रबल हुई है। भाजपा को अछूत बनाने का षड्यंत्र रचनेवाले राजनीतिक गिरोह से निकलकर लोग आप से जुड़ रहे हैं। केंद्र में भाजपा की बननेवाली सरकार में लालजी आडवाणी के न रहने से देश का तनिक भी नुकसान होनेवाला नहीं है। किंतु लालजी आडवाणी लोकसभा एवं राज्यसभा से अलिप्त न रहे तो भाजपा की बनने जा रही सरकार की और विशेष तौर पर देश की बहुत बड़ी हानि होनेवाली है।

आजादी के गत पचास सालों में देश को अपेक्षित सरकार नहीं मिल पाई। परिणामस्वरूप समाज में भारत के भविष्य के प्रति घोर निराशा व्याप्त है। यदि भाजपा की बननेवाली सरकार देश को सफल शासन न दे पाई तो देश के भविष्य का क्या होगा? हमारे लिए अत्यधिक सतर्क होने का यही क्षण है।

भाजपा में विभिन्न दलों से नेतागण आ रहे हैं। उनमें कौन कैसा है, यह देखने का यह समय नहीं है। जो भी आ रहे हैं, उनमें सत्ता की लालसा सर्वोपरि है। उनकी अभिलाषा पूर्ति करना संभव न होगा, न उचित। ऐसी अवस्था में अपने पुराने राजनीति के क्षेत्र के कार्यकर्तागण स्वयं को उपेक्षित अनुभव न करें अपितु सरकार सफल बनाने में अधिक उत्साह से जुटें, इसकी समय से ही व्यवस्था करना नितांत आवश्यक है। अन्यथा भाजपा से जन अपेक्षाएं पूर्ण होना असंभव होगा।

दुर्भाग्य से भाजपा में सभी क्षमताओं के धनी, चोटी के नेता लाभ के या अधिकार पदों से अलिप्त नहीं हैं। वस्तुतः राजनीतिक सफलता के लिए ऐसे व्यक्तित्वों की हर स्तर पर आवश्यकता हुआ करती है। इस दिशा में मार्ग प्रशस्त करने की क्षमता केवल आप में ही है। अतः आप लोकसभा एवं राज्यसभा से अलिप्त न रहें तो परिश्रम एवं ध्येयवादी कार्यकर्ताओं में निष्ठा एवं अनुशासन बनाए रखना असंभव होगा। इस वास्तविकता से आप परिचित हैं। एक और बात का ध्यान रखना होगा। जब तक देश में अंग्रेजों की हुकूमत रही, सर्वसाधारण मुसलमान वर्ग अंग्रेजों के साथ ही चिपका रहा। कांग्रेस की सत्ता आई तो इस वर्ग ने स्वयं को कांग्रेसी बना लिया। किंतु कांग्रेस ने मुसलमानों की इस प्रवृत्ति का लाभ उठाकर उन्हें राष्ट्रीय एकात्म के साथ समरस नहीं बनाया। दूसरे, उनकी राष्ट्र जीवन से अलग सांप्रदायिक प्रवृत्ति को ही बढ़ावा दिया, उसके दुष्परिणाम राष्ट्र को भुगतने पड़ रहे हैं।

अपने देश का मुसलमान वर्ग अपने समाज का साहसहीन एवं दुलभुल वर्ग रहा है। इसलामी आक्रांताओं की बर्बरताओं का मुकाबला करने की उनमें क्षमता नहीं रही। वह सत्ता के वशीभूत हुआ। अतः अपने देश का मुसलमान सत्ता के साथ रंग बदलनेवाला वर्ग है।

केंद्र में भाजपा सरकार आने की संभावना देखकर उसका भाजपा से जुड़ना स्वाभाविक है। ऐसे समय बहुत कुशलता से उसकी सत्तागामी प्रवृत्ति को राष्ट्रीय एकात्मता के सार समरस करना होगा।

29 सत्ता से अलिप्त रहकर सांप्रदायिक एकता के लिए कार्य करने की अपील।

यह कार्य भी केवल सत्ता के माध्यम से संभव नहीं है। यह आप जैसे नेता को बताना आवश्यक नहीं है। अतः मेरा आपसे सानुरोध आग्रह है कि आप स्वयं लोकसभा एवं राज्यसभा से अलिप्त बने रहें।

30

24 अप्रैल, 1998

प्रिय श्री कुशाभाऊजी,

दिनांक 21 अप्रैल को मैं मुंबई में था। 'मिड-डे' अंग्रेजी दैनिक पढ़ने को मिला। उसके तृतीय पृष्ठ पर आपका साक्षात्कार छपा था। पढ़कर बहुत खुशी हुई। आपने जिस रूप में प्रश्नों के उत्तर दिए, वे सघे हुए राजनेता के थे, साथ ही दायित्व के विश्वासपूर्ण सूचक भी थे।

आपने बिलकुल ठीक कहा कि आपका भाजपा के अध्यक्ष के नाते 181 सांसदों के प्रति ही दायित्व है। संयुक्त सरकार के अन्य घटकों का दायित्व प्रधानमंत्री का है।

आपके उपर्युक्त विचार पढ़कर अधिक खुशी हुई। स्वतंत्र भारत में प्रचलित राजनीति स्वातंत्र्य प्राप्ति के संग्राम काल की भावनाओं को मेल नहीं खाती। फलस्वरूप देश और समाज की हालत अधिकाधिक बिगड़ रही है। आपने 181 सांसदों के प्रति जो अपना दायित्व अनुभव किया है, उससे मेरे मन में राजनीतिक भविष्य के बारे में आशा अंकुरित हुई है। उसी कारण एक गैर राजनीतिक मित्र के नाते यह पत्र लिखने का मन बना।

देश ने संसदीय लोकतंत्र अपनाया है। देश के कुछ राजनेता, बुद्धिवादी और पत्रकार शासन व प्रशासन की विफलता का दोष लोकतांत्रिक संविधान में मान रहे हैं। उस स्थान पर अमरीका में प्रचलित अध्यक्षीय प्रणाली अपनाने के या पश्चिमी यूरोप में प्रचलित पद्धतियों में से किसी एक को स्वीकार करने के सुझाव दे रहे हैं। दुर्भाग्य से कोई भी न अपनी प्रतिभा प्रकट कर रहा है, न वस्तुस्थिति को समझ रहा है, न ही आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता अनुभव कर रहा है।

किसी दल के अध्यक्ष ने प्रथम बार सार्वजनिक रूप से घोषणा की है कि अपने सांसदों का दायित्व संभालना अध्यक्ष का काम है। लोकतांत्रिक दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्व की बात है।

देश के संविधान में लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभाओं एवं विधान परिषदों को संवैधानिक स्थान प्राप्त है। अतः सभी सांसद एवं विधायक भी आपके दायित्व की परिधि में आते हैं। यह मेरे बताने का विषय नहीं है। जिम्मेदार व्यक्ति स्वयं ही इस बात को जानता है।

ये सब सांसद एवं विधायक अपने-अपने चुनाव क्षेत्रों से विजयी बनकर अपने-अपने सदनों में पहुंचते हैं। इसी कारण चुनाव की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। चुनाव प्रक्रिया लोकतंत्र का अनिवार्य अंग अवश्य है किंतु चुनाव मात्र लोकतंत्र नहीं है। वह लोकतंत्र का प्रवेश द्वार मात्र है। इस वस्तुस्थिति को नजरअंदाज किया जा रहा है। यही संसदीय लोकतंत्र की विफलता का मूल कारण है।

30 लोकतंत्र की स्वस्थ परंपराओं का प्रतिपादन।

विराट् पुरुष

सभी दल अपना-अपना चुनाव घोषणा-पत्र बनाते हैं। किसी भी दल का घोषणा-पत्र देश और समाजहित के प्रतिकूल नहीं होता। जो भी सांसद या विधायक विजयी होता है, वह नैतिक रूप से अपने घोषणा-पत्र से बंधा होता है। वस्तुतः यह घोषणा-पत्र उसका सार्वजनिक शपथ पत्र ही होता है। विजयी सांसद या विधायक शासनारूढ़ दल का हो या विरोधी दल का—उसका अपने घोषणा-पत्र के प्रति दायित्व समान ही रहता है। मतदाताओं ने उसे विजयी बनाया है। अतः हर एक सांसद या विधायक का दायित्व है कि वह अपने घोषणा-पत्र को अपने निर्वाचन क्षेत्र में कार्यान्वित करने में जुटा रहे। यह लोकतंत्र की प्राथमिक आवश्यकता है।

दुर्भाग्य है कि स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद अपनाए गए संविधान के अनुसार कार्यरत किसी भी दल ने आज तक लोकतंत्र की इस प्राथमिक आवश्यकता की परवाह नहीं की। निर्वाचित जन प्रतिनिधियों को अपने नैतिक एवं लोकतांत्रिक दायित्व से परिचित नहीं कराया। दूसरे के दोषों को खोज-खोज कर प्रचारित करने में ही पुरुषार्थ माना है। अपने दायित्व के प्रति उदासीन बने रहना उनका स्वभाव बना है।

हर एक सांसद अपने चुनाव क्षेत्र के विकास के लिए प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपए पाता है। उस धन का नियमों के अनुसार सदुपयोग करने की व्यवस्था प्रचलित की है। इसका उदाहरण किसी भी दल ने प्रस्तुत किया हुआ पढ़ने को नहीं मिला। यह धन राज्यसभा सदस्यों को भी मिलता है। वह किस चुनाव क्षेत्र में किस रूप में खर्च करें, इसकी भी व्यवस्था किसी दल ने की है, यह ज्ञात नहीं है। सांसदों या विधायकों को अपना-अपना दायित्व समझाने एवं उन्हें दायित्वपूर्ण व्यवहार से भूषित करने का काम कौन सा दल कर रहा है?

मैंने तो प्रथम बार किसी दल के अध्यक्ष द्वारा सांसदों का दायित्व निभाने की सार्वजनिक घोषणा करते हुए केवल आपको ही देखा है। यदि आप इस कार्य को संपन्न करेंगे तो लोकतंत्र के इतिहास में आपका स्थान बन सकता है। लोकतंत्र को सफल बनाने का यह पहला कदम है। आशा है, आपका यह कदम कारगर होगा।

31

15 मई, 1998

प्रिय श्री अटलजी,

लगातार पांच नाभिकीय विस्फोट कराकर आपने अपने अडिग आत्मविश्वास एवं दुर्दम्य साहस का संपूर्ण विश्व को परिचय कराया है। आपकी इस पहल से देश में नए युग का शुभारंभ हुआ है।

स्वावलंबन एवं स्वपराक्रम की दिशा में स्वतंत्र भारत का यह पहला कदम है। इससे स्वातंत्र्य संग्राम में संजोए सपने साकार होने की नागरिकों में आशा जाग उठी है। आपके इस ऐतिहासिक

31 नाभिकीय विस्फोट से उपजे उत्साह के लिए प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी को साधुवाद

कदम के कारण देश के एक-एक नागरिक के हृदय में आपके प्रति अभिमान वृद्धिगत हुआ है। वे आपके हर संकेत के अनुसार कदम बढ़ाने के लिए उत्साहित हैं।

आपके इस सामयिक किंतु अनपेक्षित कदम से विश्व की श्रेष्ठतम शक्ति होने की या बनने की आकांक्षा रखनेवाले समृद्ध देश आतंकित हुए हैं। हड़बड़ाहट में वे पाबंदियों की घोषणाएं कर रहे हैं। यह उत्साहवर्धक बात है कि अपने देशवासी पूरी शक्ति के साथ उनकी धमकियों का सामना करने के लिए तत्पर हैं।

सन् 1962 में चीन ने अपने देश पर अचानक आक्रमण किया था। उससे तत्कालीन नेतृत्व घबरा गया था। किंतु देश की सुरक्षा के लिए आम नागरिकों के अंतःकरण में सुप्त पड़ी हुई देशभक्ति अपने आप जाग उठी थी। चीन ने ही स्वयं होकर अपना आक्रमण स्थगित किया था। उस समय देश के नेतृत्व ने देश को सब दृष्टियों से सामर्थ्यशाली बनाने में जाग्रत हुई देशभक्ति का सदुपयोग नहीं किया था। उसके दुष्परिणाम देश भुगत रहा है।

स्वतंत्र भारत के आप पहले प्रधानमंत्री हैं, जिन्होंने देश की मूलभूत असीम जनशक्ति को अनुभव कर उसकी दबी पड़ी देशभक्ति को अपनी ही सूझबूझ से प्रज्वलित किया है।

देश के गलत नेतृत्व के कारण आज तक स्वतंत्र भारत के नागरिकों को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए राजसत्ता का लाभ उठाने में ही लगा रखा था। देश और समाज के प्रति उनका क्या कर्तव्य है, इसकी जानकारी देने का प्रयास किया ही नहीं था। इसी कारण देश दुर्दशाग्रस्त हुआ। आपने इस वस्तुस्थिति को समझकर एक ही कदम से स्वार्थांधता के कारण दूषित हुए सर्वव्यापी वातावरण को समाप्त कर आम लोगों में देश के प्रति कर्तव्य की भावना जाग्रत की है।

मुझे विश्वास है कि उदित हुई इस कर्तव्य-तत्परता की भावना का योजनाबद्ध रीति से सदुपयोग कर आप भारत को विश्व में गौरवशाली स्थान प्रदान करेंगे।

32

28 मई, 1998

प्रिय श्री अटलजी,

मैं जानता हूँ कि सुझाव दे पाने की मुझ में क्षमता नहीं है, किंतु भ्रातृत्व की भावना विवश कर रही है। फलस्वरूप कुछ विचारणीय बिंदु—

- 1978 में इंदिराजी ने पोखरण में अणु विस्फोट कराया था। उस समय भी जनता प्रसन्न हुई थी। विरोधी दलों ने उनके इस कदम का समर्थन किया था। किंतु उस विस्फोट का उद्देश्य भिन्न था। इंदिराजी की आकांक्षा स्वयं को सर्वशक्तिमान बनाने की थी। अन्यथा विस्फोट के फलस्वरूप जो सहयोग का वातावरण बना था, उसका लाभ वे राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने में कर सकती थीं। 1975 में उन्हें देश पर इमरजेंसी थोपने की आवश्यकता ही नहीं होती।
- इस माह में किए गए विस्फोट किसी संकुचित लक्ष्य के लिए नहीं अपितु देश की सब प्रकार

विराट् पुरुष

से सुरक्षा हेतु किए हैं, यह सिद्ध कर दिखाना होगा। तभी विस्फोटों की सार्थकता सबके समझ में आएगी और यह कदम ऐतिहासिक सिद्ध होगा।

- इन विस्फोटों के कारण देश और विदेशों में रहनेवाले भारतीयों में अभूतपूर्व उत्साह निर्माण हुआ है। प्रधानमंत्री के साहसपूर्ण कदम की सराहना हो रही है। किंतु विरोधी दलों को यह बात असह्य हो रही है। उन्हें स्वयं के भविष्य की चिंता सता रही है।
- दूसरे विश्व युद्ध के बाद आर्थिक साम्राज्यवाद प्रस्थापित करने की विकसित राष्ट्रों में होड़ लगी है। रूस के विघटन के बाद अमरीका स्वयं को इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ मान रहा है। तदनुसार उसने अपनी रणनीति बनाई है। वस्तुतः अमरीका, पोखरन में हुए नाभिकीय विस्फोटों के कारण उतना परेशान नहीं है। वह इस संभावना से अधिक परेशान है कि भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री विस्फोटों से उत्पन्न सर्वव्यापी देशभक्ति की भावना का लाभ उठाकर भारत को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने में भी सफल हो सकते हैं। इस संभावना के कारण उसकी आर्थिक साम्राज्य प्रस्थापित करने की आकांक्षा का पूर्ण होना कठिन होगा। विस्फोटों पर हुआ व्यय इस उपलब्धि की तुलना में नगण्य है।
- इस वस्तुस्थिति से देश के अन्य दल तथा उनके नेता अनभिज्ञ हो सकते हैं। इस बात से उन्हें सार्वजनिक रूप से परिचित कराना होगा। इन विस्फोटों के बिना आत्मनिर्भर बनने की जनभावना इतने विशाल पैमाने पर जाग्रत् नहीं होती। यह तथ्य है।
- अनुकूल बने वातावरण का पूरा लाभ उठाने के लिए आर्थिक स्वाधीनता के लिए अभियान चलाने की आवश्यकता है। स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद इस दिशा में कोई कदम उठाया ही नहीं गया था। विदेशी सहायता के भरोसे ही विकास की योजनाएं चलाई जा रही थीं।
- देश को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए बिजली का उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। बिजली उत्पादन का कार्य सरकारी बिजलीघरों द्वारा होता है। अपवादस्वरूप कुछ बिजली उत्पादन केंद्र निजी हाथों में भी हैं। सरकारी बिजली उत्पादन केंद्र अपनी उत्पादन क्षमता की कितनी प्रतिशत क्षमता उत्पादन के काम में ला रहे हैं और निजी उत्पादन केंद्र कितनी उत्पादन क्षमता काम में ला रहे हैं, इसका तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि सरकारी केंद्र पचास प्रतिशत ही क्षमता का उपयोग कर रहे हैं। इस गड़बड़ी को ठीक किया गया तो बिजली संकट की गंभीरता सहज में ही घट सकती है। अनुकूल बने वातावरण का इस काम में लाभ हो सकता है। किंतु उसके लिए विशेष प्रयास करना होगा। यह लाभ अपने आप नहीं मिलेगा। जब देश में देशी कंपनियां आवश्यक बिजली उत्पादन करने के लिए तत्पर हैं तो विदेशी कंपनियों को आमंत्रित करने की योजनाएं क्यों अपनाई जाएं?
- देश में उभरी हुई देशभक्ति की भावना का लाभ उठाने की विशेष व्यवस्था करनी होगी। उसी से अन्य उपलब्धियों के साथ-साथ बिजली चोरी की परंपरा पर भी काबू पाना संभव होगा।

- विभिन्न प्रकाशनों से ज्ञात होता है कि अपने देश का धन चोरी छिपे लगभग तीन सौ अरब डॉलर विदेशी बैंकों में जमा हुआ है। जबकि भारत पर विदेशी कर्ज केवल एक सौ अरब डॉलर से अधिक नहीं है। यदि ठीक से और व्यक्तिगत संपर्क प्रस्थापित किया गया तो विदेशी कर्ज के संकट से मुक्ति पाना असंभव नहीं होगा।
- विदेशी सहायता पर विकास के सपने देखनेवाले इंडोनेशिया, मलेशिया, दक्षिण अमरीका व अफ्रीका के कई देशों का क्या हाल हो रहा है? क्या इन बातों से देश के विरोधी नेताओं की आंखें खोलना संभव नहीं है? यह वस्तुस्थिति आम लोगों के ध्यान में लाई गई तो विरोधी नेताओं की आलोचना प्रभावहीन होगी और देश आर्थिक स्वाधीनता की दिशा में गतिशील बनाया जा सकेगा। इन विस्फोटों का आर्थिक सुरक्षा की दृष्टि से होनेवाले लाभ की बात भी सबकी समझ में आएगी।
- पिछले अनेक सालों से देश के उद्योगपति अपने कारखाने विदेशों में प्रस्थापित कर रहे हैं और हम विदेशी कंपनियों को देश में आमंत्रित कर रहे हैं। यह अजब सी स्थिति देखने को मिल रही है। उत्पन्न अनुकूल मानसिकता का लाभ उठाकर भारतीय उद्योगपतियों से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करना उपयोगी होगा।

सरकार को चाहिए कि वह इन सब कार्यों के लिए स्वतंत्र मंत्रालय प्रस्थापित करे। देश में आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने में वह मंत्रालय व्यापक स्तर पर जनसहयोग प्राप्त करने का ही काम करेगा। इससे देश को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना संभव होगा। विस्फोटों से निर्मित अनुकूलता का पूरा लाभ उठाने का यही उपाय है।

33

22 जून, 1998

प्रिय श्री नरेंद्र मोहनजी,

दैनिक जागरण में आपके लेख विशेष ध्यान देकर पढ़ता हूँ। आप मूलभूत बातों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। निष्पक्ष भाव से अपने सुझाव प्रस्तुत करते हैं। इससे खुशी अनुभव होती है।

7 जून का आपका विचार प्रवाह लेख पढ़ा। लोकतंत्र के क्षरण के प्रति आपकी चिंता को अनुभव किया। संसद् की प्रचलित काररवाइयों से दुःखी होता रहता हूँ। मन में प्रश्न उठता है कि लोकतंत्र का क्षरण हो रहा है या लोकतंत्र अस्तित्व में आया ही नहीं है?

क्या अपने देश में लोकतंत्र प्रारंभ हुआ है? अपने संविधान ने बालिग मताधिकार प्रदान किया है। तदनुसार 1952 से चुनाव होते आ रहे हैं। संसद् गठित होती रहती है। सरकारें बनती-बिगड़ती हैं। प्रशासन अपनी चाल से चलता रहता है। क्या इसी को लोकतंत्र कहना न्यायसंगत है?

दस साल के लिए अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई

विराट् पुरुष

थी। अब तो आरक्षण की व्यवस्था के कई दशक बीत गए हैं। क्या उससे इन जातियों के जीवन में कोई सुधार हुआ है? वास्तविक रूप में लोकतंत्र प्रचलित होता तो उपर्युक्त हालत होती?

मैं अन्य लोकतांत्रिक देशों की चर्चा नहीं करता। अपना देश स्वतंत्र है। हम किसी के पिछलग्गू हों, यह अपेक्षित नहीं है। अतः हम अपने ही देश के बारे में सोचें। मुझे लगता है कि वस्तुतः अपने देश में अभी तक लोकतंत्र प्रारंभ हुआ ही नहीं है। हम लोग लोकतंत्र के द्वार तक पहुंचे हैं। लोकतंत्र में हमने अभी तक प्रवेश किया ही नहीं है।

हम लोग चुनावतंत्र को ही लोकतंत्र समझ बैठे हैं। चुनावतंत्र लोकतंत्र का प्रवेश द्वार मात्र है। चुनावतंत्र लोकतंत्र प्रारंभ करने की आवश्यक प्रक्रिया मात्र है।

हम लोगों ने चुनावतंत्र को सत्ता प्राप्ति का साधन बनाया है। लोकतंत्र प्रचलित राजनीति करने का माध्यम नहीं। अतः लोकतंत्र का क्षरण हो रहा है, यह कहना कहां तक तर्कसंगत है? प्रचलित सत्तातंत्र में सामान्य नागरिकों के कर्तृत्व के लिए कहां स्थान है? जिस शासन व्यवस्था में नागरिक केवल याचक की ही भूमिका निभाने के लिए विवश हों, उसे लोकतंत्र मानना कहां तक उचित होगा? क्या सही अर्थ में हम इस अवस्था को स्वतंत्रता भी मान सकते हैं?

आप समान संवेदनशील संपादक को उपर्युक्त वस्तुस्थिति पर विचार करने की आवश्यकता है। परायी हुकूमत में न देश स्वाधीन हो सकता है न नागरिक स्वावलंबन और स्वाभिमान से जी सकते हैं। इसलिए स्वातंत्र्य संग्राम होते हैं। यह सभी लोग जानते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास साल बीतने पर भी देश विदेशी सहायता के बिना अपना विकास करने की स्थिति में नहीं है। देश की सुरक्षा के लिए अनिवार्य नाभिकीय विस्फोट करने पर दुनिया भर में अपनी दादागिरी चलानेवाले देशों ने भारत पर पाबंदियां लगाने की घोषणाएं करते ही देश के नागरिक नहीं, अनेक नेतागण घबरा गए हैं। इससे साफ जाहिर है कि देश अभी तक आत्मनिर्भर नहीं बना है। इसका कारण समझने की आवश्यकता है।

अपने संविधान के आधार पर बालिग मताधिकार के अनुसार 1952 से चुनाव होते आ रहे हैं। घर-घर में मतदाता हैं। उनके मत प्राप्त करने के लिए हर दल व नेतागण जी-जान से प्रयास करते हैं। वे घर-घर जाकर मतदाताओं को समझाते हैं कि आप हमारे पक्ष में मतदान कर हमारी सरकार बना दें। हमारी सरकार आपकी सभी आवश्यकताएं पूरी करेगी।

इसका अर्थ है कि देश के नागरिकों को देश और समाज के लिए कुछ भी करना जरूरी नहीं है। इस प्रकार देश के नागरिकों को सत्ताभिमुखी बनाया गया है। इसी कारण मेरे सम्मुख प्रश्न उपस्थित है कि स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक संविधान लागू होने पर भी व्यावहारिक धरातल पर लोकतंत्र कहां है? क्या लोकतंत्र में राष्ट्रीय नवरचना में नागरिकों की निष्क्रियता अपेक्षित होती है?

हर एक दल चुनाव लड़ता है। वह अपना चुनाव घोषणा-पत्र बनाता है। उसे जोर-शोर से प्रचारित करता है। हर एक उम्मीदवार अपने दल के घोषणा-पत्र को आधार बनाकर चुनाव लड़ता

है। वस्तुतः वह ही उसका अपने चुनाव क्षेत्र की जनता के लिए सार्वजनिक शपथ-पत्र होता है। विजयी होने पर वह अपने चुनाव क्षेत्र में सभी मतदाताओं के सहयोग से अपने घोषणा-पत्र का कार्यान्वयन करे, यह लोकतंत्र में अपेक्षित है। उसका दल सत्तारूढ़ है या नहीं इससे उसके कर्तव्य पालन में अंतर नहीं आना चाहिए। प्रत्येक सांसद को प्रतिवर्ष अपने चुनाव क्षेत्र के विकास के लिए अब तो एक करोड़ रुपया मिलने लगा है। उसमें सत्तारूढ़ या विरोधी होने से अंतर नहीं आता। इसी प्रक्रिया से देश के सभी नागरिक देश की नवरचना में सक्रिय योगदान कर सकते हैं। इसी से लोकतंत्र विकसित हो सकता है, किंतु यह नहीं होता। इस ओर कोई भी ध्यान आकर्षित नहीं कर रहा है।

यदि सांसद अपना घोषणा-पत्र कार्यान्वित करने का दायित्व निभाने लगे तो वह जनजीवन की सभी समस्याओं एवं आवश्यकताओं का जानकार होगा। समस्याओं के निराकरण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने की वह क्षमता अर्जित करेगा। तभी संसद् में सांसद के नाते वह सही मायने में योगदान कर पाएगा। संसद् का स्तर ऊंचा उठेगा। प्रशासन लोकाभिमुखी बनेगा।

आज तो मिनिस्टर भी अपने विभाग को समझने की क्षमता नहीं रखते। सचिवों की बैसाखी के बिना वह एक भी कदम नहीं डालता। वे सब सत्ता की शान के लोभी हैं। लोकतांत्रिक कर्तव्य पालन से उन्हें कोई लेना-देना नहीं है।

दैनिक जागरण जैसे लोकप्रिय दैनिक के मालिक एवं संपादक के नाते आप उपर्युक्त वस्तुस्थिति से राजनेताओं तथा आम लोगों को अवगत करा सकेंगे तो देश में लोकतंत्र के कार्यशील होने की संभावना बढ़ेगी। दुर्भाग्य से यह काम होता दिखाई नहीं देता।

34

05 अगस्त, 1998

प्रिय श्री अटलजी,

बिना चाहे किसी व्यक्ति को सलाह देनी नहीं चाहिए। मैं इस बात को जानता हूँ। किंतु आप केवल एक व्यक्ति नहीं हैं। देश के प्रधानमंत्री हैं। आपके निर्णय या अनिर्णय से देश के सभी नागरिकों का, विशेषतः अभावग्रस्तों का जीवन प्रभावित होता है।

वर्तमान काल में आप देश के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता हैं। आप प्रधानमंत्री बने तो समाज के सभी स्तरों के लोगों ने खुशियां मनाई थीं। स्वतंत्र भारत की सरकारों ने राष्ट्रोत्थान में नागरिकों के कर्तृत्व की उपेक्षा कर देश का भाग्य नौकरशाहों पर निर्भर बना रखा है। लोगों के लिए राष्ट्रोन्नति में अपनी देशभक्ति का सदुपयोग करने की गुंजाइश ही नहीं रखी है। गत पचास सालों में प्रचलित इस गलत परंपरा को आप बदलेंगे, यह अपेक्षा थी।

34 नाभिकीय विस्फोट से पनपे जन उत्साह का राष्ट्र निर्माण में उपयोग करने की सलाह।

विराट् पुरुष

आपने मई मास में नाभिकीय विस्फोट कराने का साहसपूर्ण कदम उठाया था। उससे लोग स्वाभिमानपूर्ण उत्साह से झूम उठे थे। संपन्न देशों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों का मुकाबला करने की सिद्धता दिखाई थी। इस वातावरण का लाभ उठाकर जनसहयोग द्वारा देश की आर्थिक स्थिति सुधारने का आपको सुअवसर मिला था। किंतु इस सुअवसर का लाभ उठाने की दिशा में आपने कोई कदम नहीं उठाया। परिणामस्वरूप लोगों में निर्माण हुआ अपूर्व उत्साह बेकार गया और देश की आर्थिक स्थिति सुधारने का काम नहीं हुआ।

जहां आपकी तथा आपके सहयोगियों की शक्ति क्षेत्रीय दलों को संतुष्ट करने में ही लग रही है, वहां आपकी सरकार की अस्थिरता का वातावरण प्रशासन को पंगु बनाता जा रहा है। देश के अंदर की शांति और सुरक्षा का प्रश्न अधिक बेकाबू बन रहा है। राजधानी में भी लोग भयभीत हैं।

निकट भविष्य में कोई भी दल स्पष्ट बहुमत पाने की स्थिति में नहीं है। ऐसी स्थिति में संतुष्टीकरण के माध्यम से बहुमत बनाए रखने का प्रयास देश की स्थिति सुधार नहीं सकता। ऐसी कठिन स्थिति में आपको प्रधानमंत्री का दायित्व निभाने का काम करना पड़ रहा है। भाजपा के अतिरिक्त देशव्यापी दल केवल कांग्रेस है, जो क्षेत्रीयता के दोष से मुक्त माना जा सकता है। उसकी स्थिति तो और भी दयनीय है। इसका लाभ उठाने का आपके लिए सुअवसर प्राप्त है। ऐसी स्थिति में शासन को प्रभावी बनाने की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। राजनीति में समय से निर्णय लेना बहुत महत्व रखता है। अन्यथा अनुकूलता भी प्रतिकूलता में बदल जाती है। यह आप जानते ही हैं।

मुझे डर लग रहा है कि वर्तमान काल का जब इतिहास लिखा जाएगा, उसमें कहीं ऐसी टिप्पणी न हो कि आपको प्रधानमंत्री के नाते देश का भविष्य बनाने का सुअवसर अवश्य मिला, किंतु आप न आर्थिक स्थिति सुधारने में, न शासन प्रशासन अधिक चुस्त बनाने में सफल हो पाए। इसी संभावना ने यह पत्र लिखने के लिए मुझे विवश किया है।

35

09 अक्टूबर, 1999

प्रिय श्री अटलजी,

आप अद्वितीय लोकप्रियता के धनी हैं। आपकी प्रतिभा व सबके प्रति सद्भावना का यह प्रतिफल है। कट्टरता भारतीय जीवन-मूल्यों का अंग नहीं है। इस तथ्य को आपने हृदयंगम किया है।

35 श्री अटल बिहारी वाजपेयी को विभिन्न विभागों के सामंजस्य के लिए एक स्वतंत्र कैबिनेट मंत्री नियुक्त करने का सुझाव।

यही आपकी लोकप्रियता का मर्म है। आपसे जुड़े सभी दलों के प्रत्याशियों की विजय में आपके लोकप्रिय व्यक्तित्व का भरपूर योगदान रहा है। इस कारण इस समय प्रधानमंत्री के रूप में आपका दायित्व बहुत अधिक बढ़ा है।

सरकार की सफलता का आधार है सुयोग्य मंत्रिमंडल का गठन। समय दबाव में आकर आपको अपने पसंद के मंत्री बनाने में कठिनाई हुई थी। इस समय भी विभिन्न प्रकार के दबाव आना स्वाभाविक है। किंतु सरकार चलाने का दायित्व आपका अपना है। अतः मंत्रिमंडल के गठन में किसी भी दबाव में न आना सरकार की सफलता के लिए आवश्यक है।

इस समय आपका मंत्रिमंडल काफी बड़ा बनेगा। उन सबमें सामंजस्य और कर्तव्यपरायणता बनाए रखना जरूरी है। इसके लिए आप अपना विश्वस्त एवं सुयोग्य व्यक्ति बिना मंत्रालय के कैबिनेट मंत्री नियुक्त करें। वह सब मंत्रियों में सामंजस्य रखने में तथा सब मंत्रालयों को ठीक दिशा में चलाने में आपका सहयोग कर सकता है। आपको सबके साथ स्वयं संबंध रखना संभव नहीं होगा।

ये सब सुझाव देना आवश्यक नहीं था। किंतु एक पुराने साथी के नाते मेरे द्वारा उपर्युक्त बातें लिखी गई हैं। आप आगामी 5 वर्ष में अद्वितीय प्रधानमंत्री सिद्ध हों, यह प्रभु चरणों में मेरी प्रार्थना है।

36

03 दिसंबर, 1999

प्रिय श्री दादा,

आपका 29 नवंबर का पत्र मिला। आपके ही विचार के अनेक आत्मीय लोग हैं। यह जानते हुए भी मैंने राष्ट्रपति द्वारा किए गए नामांकन को स्वीकार किया है। राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के लिए नामांकन राजनीतिक नामांकन नहीं होता। विशेषज्ञों का ही नामांकन होता है।

यह जानते हुए भी मैंने गृहमंत्री प्रिय श्री आडवाणीजी को स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मेरे गैर राजनीतिक चरित्र पर आंच आती होगी तो मैं इसे अस्वीकार करता हूँ। उन्होंने स्पष्ट कहा कि इस सदस्यता का राजनीति से दूर का भी संबंध नहीं है।

यह स्वीकार करने में मेरा हेतु स्पष्ट है। मुझे यह बिना मांगे सुअवसर मिल रहा है। गत 22 साल के काम के अनुभवों में मैंने भारत के नवनिर्माण के लिए जो निष्कर्ष निकाले हैं, उन्हें मैं राज्य सभा के मंच से शासकों के सम्मुख रख सकूंगा। अन्यथा अपने कार्य के अनुभवों का वे उपयोग नहीं करेंगे। इसका अर्थ यह नहीं कि मेरे कहने से करेंगे ही। किंतु उन्हें विचार करना ही पड़ेगा। अपनी बातें लोगों के सम्मुख उभरकर आ सकेंगी।

36 राज्यसभा के नामांकन के बाद डीआरआई में अपने सहयोगी रहे श्री के.डी. जोशी को लिखा पत्र।

विराट् पुरुष

वस्तुतः मैं इसे चुनौती मानता हूँ। सदियों बाद भारत आजाद हुआ है। उसके नवनिर्माण के लिए परस्पर सहयोग की आवश्यकता है। हर एक आबादी में उसे प्रचलित करना जरूरी है। किंतु देश के उच्चतम सदनों में भी सहयोग के स्थान पर असहयोग व ऊधम का ही वातावरण गहराता जा रहा है। यही चलता रहा तो देश के नवनिर्माण का कार्य संभव नहीं हो सकता। यह काम आवश्यक होते हुए इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। इस दिशा में कदम बढ़ाने में राज्यसभा की सदस्यता सहायक बन सकती है। परिणाम मेरी कार्यकुशलता एवं क्षमता पर निर्भर करेगा।

इसके अतिरिक्त राष्ट्र नवरचना के अनेक काम उपेक्षा के शिकार बने हुए हैं। उन पर ध्यान आकृष्ट करना संभव हो सकता है। सब बातें पत्र में लिखना संभव नहीं है। किंतु मैंने यह एक चुनौती मानकर कदम बढ़ाया है। देखें, भगवान क्या कराता है।

37

14 दिसंबर, 1999

प्रिय श्री वसंतजी,

आपका पत्र मिला। मैंने 22 साल पूर्व दलीय व सत्ता राजनीति से अलिप्त होकर युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना एवं ग्रामीण-विकास का कार्य हाथ में लिया है। उसी कार्य को अधिक प्रभावी एवं व्यापक बनाना संभव हो सकता है। इसी आशा से राष्ट्रपति द्वारा किया गया नामांकन स्वीकार किया है।

मेरे विचार प्रिय अटलजी से व श्री लालजी आडवाणी से एकमत नहीं हो सकते। कारण, मेरे विचार की दिशा पूर्णतः भिन्न है। वही भिन्न विचार दिशा सबके सामने लाने में राज्यसभा का मंच उपयोगी हो सकता है। यह मानकर ही मैं राज्यसभा में पहुंचा हूँ। इसके अतिरिक्त मैं अन्य कोई काम करने की स्थिति में नहीं हूँ।

38

21 दिसंबर, 1999

प्रिय डॉ. काशीकरजी,

आपका पत्र पढ़ा। मैंने राष्ट्रपति महोदय द्वारा राज्यसभा में नामांकन स्वीकार किया है। इसका यह अर्थ लगाना कि मैं फिर से राजनीति में सक्रिय हो रहा हूँ, उचित नहीं है। राष्ट्रपति महोदय ने जो नामांकन किया है, वह राजनीतिज्ञ के नाते नहीं। जब उन्होंने मेरे नामांकन की स्वीकृति के

37 राज्यसभा का नामांकन स्वीकारने का कारण बताता श्री वसंत अण्णाजी वैद्य को पत्र।

38 राज्यसभा का नामांकन स्वीकार करने का कारण सक्रिय राजनीति में दिलचस्पी नहीं। श्री काशीकर नागपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे।

संबंध में पूछा तो मैंने उनसे स्पष्ट कहा कि मेरे गैर-राजनीतिक चरित्र पर आंच न आती होगी, तभी मैं राज्यसभा की सदस्यता स्वीकार करूंगा। तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह नामांकन आपकी सामाजिक पुनर्रचना एवं ग्राम विकास के अनुभवों के कारण ही किया गया है। राष्ट्रपति ऐसे ही लोगों का नामांकन कर सकते हैं, जिनकी राजनीतिज्ञ क्षेत्र के अतिरिक्त कोई विशेषता हो।

मुझे राजनीति में सक्रिय होने की कोई दिलचस्पी नहीं है। राजनीति में कोई स्थान प्राप्त करने की मेरी अभिलाषा नहीं रही। कारण, देश का भविष्य केवल शासन के माध्यम से नहीं बन सकता। शासन एक परिवर्तनशील एवं अस्थायी साधन है। समाज एक स्थायी तत्त्व है। अतः भविष्य निर्माण का मूल आधार सामाजिक शक्ति है, शासकीय शक्ति नहीं है। अतः सामाजिक शक्ति के आधार पर ही शासन ठीक दिशा में काम कर सकता है। इसी कारण मैंने अपने अनुभवों के आधार पर सत्ता राजनीति से स्वयं को अलिप्त कर लिया था। गत 22 वर्ष मैं सामाजिक पहल के आधार पर जो विकास संभव हुआ है, उसे ही मैं जीवन का सफल काल मानता हूँ। उसी को आगे बढ़ाने में राज्यसभा सहायक बन सकती है। इसी विचार से मैंने राज्यसभा की सदस्यता स्वीकार की है।

हम संविधान में और चुनाव पद्धति में चाहे जितना परिवर्तन करें, उतने भर से वांछित लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकते। जब तक सामाजिक जीवन में मूल्य आधारित व्यवहार प्रबल नहीं बनता।

मेरे जीवन के अब अधिक दिन शेष नहीं हैं। जो दिन शेष हैं, वे इसी काम में लगानेवाला हूँ, जो काम मैंने हाथ में लिया है।

39

27 जून, 2000

मुख्य संपादक, इंडियन एक्सप्रेस,
प्रिय श्री शेखरजी,

24 जून को इंडियन एक्सप्रेस के दिल्ली और मुंबई अंक के प्रथम पृष्ठ पर छपी एक खबर ने मुझे यह पत्र लिखने पर मजबूर कर दिया है। इंडियन एक्सप्रेस द्वारा दीनदयाल शोध संस्थान (डीआरआई) को बिना किसी आधार पर बदनाम करने की प्रवृत्ति पर मुझे बहुत दुःख और आश्चर्य है।

यह एक तथ्य है कि मुझे आरएसएस ने बनाया। दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का सिद्धांत हमारे सामने रखा। दीनदयाल शोध संस्थान इसी सिद्धांत को व्यवहार में लाने के लिए प्रतिबद्ध है। यही हमारा कार्यक्रम है।

उम्मीद है, आप जानते होंगे कि सन् 1977 में प्रधानमंत्री स्व. श्री मोरारजी भाई देसाई ने मेरे सम्मुख मंत्री पद का प्रस्ताव रखा था, जिसे मैंने ठुकरा दिया था।

विराट पुरुष

मुझे विश्वास है कि आप नामी पत्रकार श्री आर.वी. पंडित को जानते होंगे। जो पक्के ईसाई हैं। उत्तर प्रदेश के पिछड़े जिले गोंडा में ग्राम विकास परियोजना शुरू करते समय वे ही अकेले मेरे साथ थे। आप को लगता है कि श्री पंडित मेरे साथ ईसाइयों के विरोध में आरएसएस का कार्यक्रम क्रियान्वित करने के लिए जुड़े थे।

हमने गोंडा ग्रामोदय परियोजना केंद्र का नाम 'जयप्रभा ग्राम' बलिदानी श्री जयप्रकाश नारायण और उनकी प्रतिबद्ध पत्नी प्रभा देवी के सम्मान में रखा। क्या इसका यह अर्थ है कि शोध संस्थान अपने कार्यकर्ताओं को ईसाई विरोधी कार्यों के लिए प्रेरित कर रहा है? उम्मीद है, आप प्रसिद्ध पत्रकार श्री प्राण चोपड़ा को जानते होंगे, जिन्होंने स्वयं गोंडा में शोध संस्थान द्वारा आयोजित नेत्र कैंप का कार्य देखा, जहां 50 प्रतिशत से अधिक वृद्ध महिलाएं और पुरुष मुसलिम समुदाय के थे।

श्री आर.वी. पंडित के पुत्र भी, जो पक्के ईसाई हैं, मेरे साथ एक वर्ष तक पूर्णकालिक कार्यकर्ता के तौर पर गोंडा में ग्रामीण विकास कार्यों में लगे रहे। तब भी इंडियन एक्सप्रेस डीआरआई को ईसाई विरोधी बताता है।

श्री वसंत पंडित, श्री आर.वी. पंडित के इकलौते पुत्र हैं। वे डीआरआई के चित्रकूट प्रकल्प की प्रशासकीय शाखा के महत्वपूर्ण सदस्य हैं। प्रशासकीय शाखा ने ही उनसे कहा था कि आपके सम्मानित दैनिक में एक विज्ञापन छपवाए, जिसमें युवा दंपतियों से चित्रकूट प्रकल्प में पांच साल सहयोग करने की अपील की जाए। उनके पिता श्री आर.वी. पंडित डीआरआई में तीन साल तक कोषाध्यक्ष रहे। फिर भी आपका समाचार-पत्र डीआरआई के विरुद्ध, ईसाई विरोधी होने का कुप्रचार कर रहा है। इंडियन एक्सप्रेस समाचार-पत्रों की शृंखला स्व. माननीय श्री रामनाथ गोयनका ने अंग्रेजी हुकूमत से टक्कर लेने के लिए स्थापित की थी। उनका एकमात्र स्मृति स्थल डीआरआई के द्वारा चित्रकूट में स्थापित किया गया। क्या वे ऐसे व्यक्ति थे, जो समाज के किसी एक तबके के विरुद्ध कार्य करने की प्रेरणा देते हैं?

क्या उनका स्मृति स्थल डीआरआई के किसी भी कार्यकर्ता को ईसाई विरोधी काम करने के लिए प्रेरित करेगा?

दीनदयाल शोध संस्थान एकमात्र संस्था है, जिसने भारत माता के महान् सपूत जे.आर.डी. टाटा की याद में आलीशान और जीवंत स्मृति स्थल बनाया है। क्या आपको लगता है कि ये सारे प्रयास किसी वर्ग विशेष के नागरिकों के प्रति नफरत पैदा करने की दिशा में किए गए हैं?

आशा करता हूं कि आप दीनदयाल शोध संस्थान की पुस्तिकाओं और फोल्डरों को पढ़ेंगे और स्वयं निर्णय लेंगे कि डीआरआई का वास्तव में क्या लक्ष्य है।

रामनाथ गोयनका डीआरआई के निर्माणकर्ताओं में से एक थे। मैं उम्मीद करता हूं कि इंडियन एक्सप्रेस डीआरआई के प्रति अपने रवैए को ठीक करेगा।

मैं यह भी उम्मीद करता हूं कि आप इस पत्र को अपने सम्मानित दैनिक में मुख्य रूप से छापेंगे, ताकि डीआरआई को पहुंचाई गई क्षति में सुधार हो।

श्री दिलीप पडगांवकर,

आपको कष्ट देना पड़ रहा है, क्योंकि 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने दीनदयाल शोध संस्थान (डीआरआई) के साथ अन्याय किया है। टाइम्स ऑफ इंडिया हमारे देश का सबसे पुराना और अति सम्मानित दैनिक पत्र है। आशा की जाती है कि यह समाचार-पत्र लोगों को सही सूचना उपलब्ध कराएगा, परंतु दुर्भाग्यवश डीआरआई के मामले में ऐसा नहीं किया गया।

डीआरआई के अपने कार्यक्रम हैं और यह अति पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में जाति-धर्म या पंथ के भेदभाव के बिना विकास कार्य में लगा हुआ है। पंडित दीनदयालजी ने एकात्म मानववाद का सिद्धांत हमें दिया था। डीआरआई इस सिद्धांत को व्यावहारिक रूप देने के लिए पूर्ण रूप से समर्पित है। यही अपने आप में बहुत बड़ा काम है। इसलिए डीआरआई के पास किसी अन्य संस्था का कार्यक्रम लागू करने के लिए न तो समय है, न ही इच्छा। हां, आरएसएस में ही मेरा निर्माण हुआ। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे अपने कार्यक्रम नहीं हो सकते। मुझे बहुत कष्ट हुआ है और मैं यह समझ नहीं पा रहा कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसा सम्मानित पत्र बिना तथ्यों की जांच के आरएसएस के कार्यक्रमों को डीआरआई पर कैसे थोप सकता है? जबकि डीआरआई का अपना एक कार्यक्रम है—जनपहल और जनसहभाग से संपूर्ण विकास द्वारा मूलभूत परिवर्तन।

डीआरआई शरीर और आत्मा से एक सामाजिक और रचनात्मक संगठन है। इसका राजनैतिक दलों से चाहे सरकारी हो या विरोधी, कोई लेना-देना नहीं है। एक नागरिक के तौर पर मैं देश के भविष्य पर अपने विचार प्रकट करता हूं। मेरे सामने एक प्रश्न रखा गया था कि क्या डीआरआई वैश्वीकरण की धारणा के अनुकूल है? मैंने कहा, यह धारणा हमारे देश के लिए नई नहीं है। प्राचीन काल से ही हमारे यहां 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (संपूर्ण विश्व एक परिवार है) की धारणा रही है। इस धारणा के तहत पृथ्वी पर रहनेवाला हर प्राणी एक-दूसरे के साथ अपने परिवार के सदस्य के रूप में व्यवहार करेगा, लेकिन आधुनिक वैश्वीकरण की धारणा कुछ और नहीं बस विकसित, अमीर और ताकतवर देशों द्वारा अविकसित देशों का शोषण करना है।

मैंने अपने देश के योजनकर्ताओं और प्रशासकों को आगाह किया था कि इन ताकतवर और अमीर देशों के साथ संबंध बनाते समय सावधान रहें। मैं किसी सरकार विशेष या दल विशेष पर टिप्पणी नहीं करता, लेकिन आप ही के समूह के एक अन्य पत्र 'इकोनॉमिक टाइम्स' ने जान-बूझकर मेरे बयान को तोड़ा-मरोड़ा और रिपोर्टर ने अपने शब्द उसमें डाल दिए।

आपने चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति पद से मेरे त्याग-पत्र का समाचार भी गलत छापा है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना मैंने 1991 में की थी।

10 अगस्त, 2000

प्रिय श्री लालजी,

आप सब लोगों की कठिनाइयों से अवगत होते हुए भी पत्र लिखना आवश्यक अनुभव हो रहा है। पहलगांव में अमरनाथ यात्रियों की हत्या का समाचार गांव-गांव तक पहुंचा है। उस कारण ग्रामीण लोग, विशेषतः चित्रकूट क्षेत्र के ग्रामीण बहुत उद्धेलित हैं। उनकी सरकार के प्रति की भावनाएं बहुत आहत हुई हैं। संभवतः यही स्थिति पूरे देश में होगी। उनकी प्रतिक्रियाओं का पत्र में उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

आप समान विचारक तथा अनुभवी लोगों को मैं सलाह देने की क्षमता नहीं रखता। फिर भी मन-मस्तिष्क में उठनेवाली बातें एक मित्र के नाते सूचित कर रहा हूं। कश्मीर की समस्या पुरानी है। उसका निराकरण मिली-जुली सरकार द्वारा कराना कितना कठिन है, इसकी कल्पना मैं भी कर सकता हूं। ऐसी अवस्था में भी हमने दायित्व ग्रहण किया है। अतः हमें उसे निभाना होगा।

कश्मीर में आतंकवाद का पूर्णरूप से दमन न हुआ तो उसके देशव्यापी दुष्परिणाम टाले नहीं जा सकते। पाकिस्तान को दोष देने मात्र से वास्तविक धरातल पर आम लोगों को न संतुष्ट किया जा सकता है न समस्या का समाधान ही हो सकता है और न ही देश की सुरक्षा हो सकती है। कश्मीर में आतंकवादियों का पूर्णरूप से दमन करना समय की आवश्यकता है। यह दमन केवल सेना के द्वारा ही संभव है। इसके लिए आवश्यकता है—डॉ. फारुख अब्दुल्ला को राजी करा लेने की। यह सब समझ रहे हैं कि डॉ. अब्दुल्ला की सरकार और पुलिस न आतंकवादियों को कश्मीर में आने से रोक सकती है, न उनका दमन कर सकती है। इतना ही नहीं तो डॉ. फारुख अब्दुल्ला की सरकार कश्मीरी लोगों में से कुछ लोगों को आतंकवादियों का साथ देने से भी रोक नहीं सकती। यह वस्तुस्थिति है। इस वस्तुस्थिति का अनुभव पिछले दस साल से हो रहा है। हमारी कुशलता डॉ. फारुख अब्दुल्ला को राजी कराकर सेना द्वारा आतंकवादियों का पूर्ण रूप से दमन कराने में है। इसके बिना अन्य उपाय कारगर नहीं हो सकते।

मेरा अनुमान है कि आप लोगों ने कारगिल के समान इस कार्य में सफलता प्राप्त की तो देश भर की परिस्थिति सुधर सकती है और आपकी सरकार के प्रति लोगों की आस्था बढ़ सकती है।

42

03 सितंबर, 2000

श्री बंगारू लक्ष्मणजी,

केंद्र में सत्तारूढ़ दल के आप अखिल भारतीय अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। कृपया हार्दिक अभिनंदन स्वीकार करें। तमिलनाडु एवं कर्नाटक की सरकारों ने घोर अपराधी वीरप्पन की

मांगें मानना स्वीकार किया है। जहां सरकारों को ऐसे अपराधियों को दंडित करना चाहिए, वहां वे अपराधियों के सम्मुख नतमस्तक हो रहे हैं। यही होता रहा तो आम नागरिकों की सुरक्षा कौन करेगा? उच्चतम न्यायालय की फटकार के बावजूद उनका रवैया बदलता दिखाई नहीं देता। यह निर्लज्जता की हद है।

राजसत्ता पाकर 53 साल हुए। यह गंभीरता से सोचने का विषय है कि देश में उपर्युक्त हालात क्यों आ पहुंचे? मैं अपेक्षा करता हूँ कि आप इस विषय पर गंभीरता से विचार कर आवश्यक कदम उठाने का साहस करेंगे। अन्यथा देश का भविष्य बन पाना संभव नहीं होगा।

बड़ी शान से समय-समय पर कहा जाता है कि हमने बिना सशस्त्र लड़ाई लड़े स्वतंत्रता अर्जित की है। क्या इस कथन में तनिक भी सत्यता है? यदि हमने स्वराज्य अर्जित किया होता तो देश का विभाजन न होता। वास्तविकता यह है कि हमने अपने आदर्शों की कीमत चुकाकर 1947 में राजसत्ता खरीदी थी। तभी से देश और देश की राजनीति गलत दिशा में गतिशील है।

वस्तुतः राजसत्ता उपभोग का विषय नहीं है। वह सुरक्षा-व्यवस्था एवं जनसेवा का साधन है। खरीदी हुई सत्ता ने भारत का सदियों की परंपरा से प्राप्त निष्कर्ष भुला दिया है। राजसत्ता की लालसा विग्रह का कारण बनती है। वह केवल समाज को ही जाति, भाषा, मजहब आदि में नहीं बांटती, अपितु हर एक राजनीतिक दल में गुटबाजी का तांडव कराती है। यह तथ्य पग-पग पर प्रकट हो रहा है। राजसत्ता पिपासा किसी से भी सौदा करने में संकोच नहीं करती। यह उस देश में हो रहा है, जिस देश में श्रीराम ने बिना राजसत्ता के जन-बल के सहारे दुराचारी एवं प्रबल सत्ताधीशों को धूल चटाई थी। क्या वर्तमान लक्ष्मण उसी परिस्थिति को पुनर्प्रतिष्ठित करेगा?

हम समझ बैठे हैं कि हम लोकतांत्रिक शासन को चला रहे हैं। किंतु व्यावहारिक धरातल पर राष्ट्र नवनिर्माण में आम लोगों की सक्रियता नजर नहीं आती। क्या इसे लोकतंत्रात्मक शासन मानना उचित होगा? क्या इस आत्मवंचना के सहारे चलनेवाला शासन जनसमस्याओं का निराकरण कर पा रहा है?

चुनाव प्रक्रिया लोकतंत्र का माध्यम अवश्य है किंतु चुनाव प्रक्रिया को ही लोकतंत्र समझना अव्यावहारिक है। चुनाव प्रक्रिया लोकतंत्र के प्रवेशद्वार तक पहुंचने का वाहन मात्र है। इस तथ्य को हम समझ नहीं रहे हैं। स्वातंत्र्य संग्राम का लक्ष्य पश्चिमी देशों की नकल करना नहीं था। पश्चिमी देशों की आयु बहुत छोटी है। उनके पास जनजीवन के सब प्रकार के अनुभवों की कमी है। उन्होंने विज्ञान एवं तकनीकी में आश्चर्यजनक प्रगति अवश्य की है। समृद्धि के वे शिखर पर हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से

विराट् पुरुष

भी अनुकरणीय बने हैं। गहन विचार करने पर सहज में ही ध्यान में आएगा कि उनका लोकतांत्रिक अनुभव अभी और विकसित होने की अवस्था में है। वस्तुतः हमें इस दिशा में अपनी प्रतिभा से अपना मार्ग स्वयं निश्चित करना होगा। इसकी उपेक्षा के कारण हमारे शासन की हंसी हो रही है।

देश का बंटवारा हुआ, तभी से कश्मीर की समस्या हमें परेशान करती आ रही है। उसका निराकरण न नेताओं की बातों से होगा, न पाकिस्तान के साथ युद्ध से होगा। पाकिस्तान से कई युद्ध हुए, किंतु मजहब के आधार पर देश का बंटवारा मानने के कारण पाकिस्तान और कश्मीर की समस्या जैसी विभाजन के समय थी वैसी ही बनी हुई है।

मुसलिम आतंकवाद संपूर्ण विश्व में भयानक समस्या बना है। उसका निराकरण करने की क्षमता केवल भारत में ही है। किंतु उसके लिए आवश्यक उपाय की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है।

विश्व में सेक्युलरिज्म की बातें बढ़-चढ़कर की जाती हैं। हम भी उसी की रट लगा रहे हैं। किंतु इस दिशा में उल्लेखनीय काम करने की क्षमता भारत को छोड़कर अन्य किसी में नहीं है। इसका मैं विस्तृत विवरण इस पत्र में करना आवश्यक नहीं समझता।

भारत की कहो या हिंदू परंपरा की कहो, विशेषता शासकीय सिद्धांत पर आधारित नहीं रही है। वह पूर्णतः मानवीयता पर आधारित है। उसमें केवल सहिष्णुता ही नहीं है, अपितु इसके मूल में सबके प्रति आत्मीयता की भावना रही है। इस पर आधारित अपनी संस्कृति किसी पर भी अपना वर्चस्व प्रस्थापित करने की अभ्यस्त नहीं रही है। इसी कारण, किसी काल में वह विश्व भर में लोकप्रिय रही है। वही संस्कृति संसार में फैल रहे मुसलिम आतंकवाद का निराकरण करने में समर्थ है।

देश का विभाजन होने के बावजूद भारत में 10-11 करोड़ की संख्या में मुसलिम आबादी है। वह आबादी न कहीं जाएगी, न समाप्त होगी। इस तथ्य को हमें ध्यान में रखना होगा। अतः हमें विश्व के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत करना होगा कि भारत में सभी मजहबों के माननेवाले परस्पर-पूरकता के साथ जीवन-यापन कर सकते हैं।

स्वातंत्र्य संग्राम की लड़ाई के काल में और राजसत्ता खरीदने के बाद भी हिंदू-मुसलिम समस्या के निराकरण के लिए नेताओं में ही समझौते के प्रयास होते रहे हैं और हो रहे हैं। सामाजिक स्तर पर काम करने की ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया।

आप भारतीय जनता पार्टी के अखिल भारतीय अध्यक्ष बने हैं। आपके संगठन का जाल देशव्यापी है। वर्तमान काल में आप की पार्टी राजसत्ता में शिरोमणि है। यदि उपर्युक्त दिशा में आपने प्रभावी काम किया तो देश का शासन सुशासन बन सकता है और आपकी पार्टी के साथ केवल सत्तालोभी नहीं अपितु सभी वर्गों एवं मजहबों के सर्वसाधारण लोग जुड़ सकते हैं। केवल सत्तालोभियों को जोड़कर न आप पार्टी का हित साधन कर पाएंगे, न शासन का सुशासन बना पाएंगे।

माननीय श्री प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय श्री अटलजी,

देश में बिना काम किए पारिश्रमिक पाने की अनैतिक आदत बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप विकास की गति में बाधा पहुंच रही है। जनजीवन की परेशानियां बढ़ रही हैं। सर्वसाधारण नागरिकों में अधिकाधिक निराशा फैल रही है।

राज्यसभा तथा लोकसभा लोकतंत्र के उच्चतम सदन हैं। वे लोकतंत्र के अनुकरणीय नमूने सिद्ध हों—यह आवश्यक है। अन्यथा ग्राम पंचायतों तक पहुंचा अपना लोकतंत्र रचनात्मक रूप ग्रहण न कर पाएगा।

आवश्यकता है कि लोकसभा तथा राज्यसभा दोनों सदनों के नेता एवं विरोधी दलों के नेता मिलकर अपने-अपने सदन में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करें कि जिस दिन किसी कारणवश लोकसभा या राज्यसभा की कार्यवाही नहीं चल पाई तो उस दिन का दैनिक भत्ता लोकसभा व राज्यसभा के किसी भी सदस्य को नहीं मिलेगा।

इससे देश में नैतिकता का स्तर ऊंचा उठाने में सहायता मिलेगी। अपना लोकतंत्र मजबूत होगा व लोकसभा तथा राज्यसभा मार्गदर्शक सदन बनेंगे। मैं इसी आशय के अनुरोध पत्र माननीय विरोधी दलों के नेताओं को भी भेज रहा हूं।

प्रिय श्री अटलजी,

आज टाइम्स ऑफ इंडिया तथा हिंदुस्तान टाइम्स के मुख पृष्ठों पर बंगलादेश से अपने जवानों की लाशें लौटा देने का रंगीन चित्र छपा है। उसमें सूअर के समान हमारे मृत जवान के हाथ-पैर बांधकर बांस पर लटका कर पहुंचाया जा रहा है। ऐसे अपमानजनक एवं अमानवीय चित्र राष्ट्रीय पत्रों में छपना कहां तक उचित है? क्या हमारे पड़ोसी बंगलादेश को ऐसा व्यवहार करना चाहिए? यह चित्र देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ हूं। इसी कारण यह पत्र।

43 सांसदों द्वारा काम न किए जाने की स्थिति में दैनिक भत्ता पाने को अनुचित ठहराते हुए लिखा गया पत्र।

44 मीडिया की असंवेदनशीलता पर टिप्पणी।

27 अप्रैल, 2001

प्रिय श्री जसवंत सिंहजी,

देश की सुरक्षा के लिए केवल सेना के रणकौशल एवं शौर्य पर ही निर्भर रहना उचित नहीं रहता। देश में शांति व व्यवस्था बनाए रखना, कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना, राजनीतिक स्थिरता कायम रखना तथा प्रशासनिक एवं गुप्तचर गतिविधियों की निपुणता बढ़ाना भी नितांत आवश्यक होता है। इसका ध्यान न रखा गया तो सेना में भी विश्वास का अभाव पनपता है तथा पराक्रम की प्रवृत्ति घटती है।

बंगलादेश की सीमा पर घटी घटना ने उपर्युक्त आवश्यकताओं को अधिक उजागर किया है। आम लोगों में रोष पैदा हुआ है। सैनिकों की भावनाओं को भी धक्का लगा है। हमारी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा अवश्य बढ़ रही थी, किंतु बंगलादेश की घटना ने उसकी महत्ता घटाई है।

46

30 अगस्त, 2001

प्रिय श्री प्रमोद महाजन,
संसदीय कार्य मंत्री,

विभिन्न दलों के सांसदों का (कम्युनिस्टों को छोड़कर) समर्थन प्राप्त कर आपने वेतन में वृद्धि का बिल दोनों सदन में पारित करा लिया है। यदि आप इसी प्रकार देश के अभावग्रस्त नागरिकों की दुर्दशा दूर करने का भी सदन में बिल पेश कर विभिन्न दलों के सांसदों का समर्थन प्राप्त कर पारित कर सकें तो भारत के संसदीय इतिहास में आपका नाम स्थायी रूप से अंकित होगा। देश के आम नागरिकों को आपका गौरव करने का सुअवसर मिलेगा।

दिनांक 27 अगस्त, 2001 को लोकसभा में वेतन वृद्धि का बिल पेश करते हुए आपको अनेक बार, “मैं अपराधबोध के वशीभूत होकर यह बिल पेश नहीं कर रहा हूँ” कहना पड़ा था। इस बात को एकाधिक बार दोहराने की आवश्यकता क्यों हुई? आपने पत्रकारों द्वारा इस बिल की आलोचना का कारण बताया। किंतु अपराधबोध की अनुभूति का खास कारण क्या सुप्रीम कोर्ट द्वारा इसी माह की 20 तारीख को सरकारों को फटकार लगाकर भूखे लोगों को खाद्यान्न न पहुंचाने के कारण लोग मर रहे हैं, यह बात नहीं थी?

जब देश में लोग भूख से मर रहे हों, ऐसी दर्दनाक स्थिति में आपको सांसदों के वेतन में तीन

45 देश की सुरक्षा की दृष्टि से कुछ सुझाव।

46 सांसदों की वेतन वृद्धि के संबंध में विचारोत्तेजक पत्र।

गुना वृद्धि करने का बिल पेश करना पड़ा—क्या असल में यह अमानवीय कदम उठाने के कारण अपराधबोध अनुभव नहीं हो रहा था? इस तथ्य को स्वीकारने का आपने साहस नहीं दिखाया।

आप सरकार चला रहे हैं। आपको इस बात का अनुमान होगा कि केंद्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों के कर्मचारियों की संख्या कितनी है। साथ ही अर्ध-सरकारी संस्थाओं के, विभिन्न कारखानों में काम करनेवाले एवं भिन्न-भिन्न प्रतिष्ठानों में काम करनेवाले तथा प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों में काम करनेवाले लोगों की संख्या कितनी है? यदि उन्होंने भी अपना वेतन तीन गुना करने की मांग की तो क्या आपकी सरकार के पास इतना धन उपलब्ध कराने की क्षमता है? यदि वे अपनी मांग पर अड़ गए और हड़ताल पर उतारू हो गए तो देश में उत्पादन की स्थिति क्या होगी? शिक्षण व प्रशासन कैसे चलेगा? अपना वेतन तीन गुना बढ़ा लेने के कारण उन्हें समझाने का नैतिक बल आपके पास कैसे बचेगा? तीन गुना वेतन बढ़ाने का कदम क्या देश में अराजकता बढ़ाने का कारण नहीं बनेगा?

आपके दल के ही कुछ नेताओं ने अखबारों में वक्तव्य देकर दलील दी है कि अन्य देशों के सांसदों के वेतन की तुलना में हमारे सांसदों का वेतन बहुत कम है। अतः हमारा वेतन तीन गुने से भी अधिक बढ़ना चाहिए। आपके सांसदों की नजर अन्य देशों के सांसदों के वेतन पर जा पहुंची है। किंतु क्या उनके दिमाग में यह विचार भी आया है कि उन देशों के नागरिक क्या भूखों मर रहे हैं? अपने देश में रेलवे-स्टेशनों पर, बस-अड्डों, पर सड़कों की फुटपाथों पर अर्धनग्न बच्चे झूठन खाते हुए तथा भीख मांगते हुए बेसहारा घूमते हुए दिखाई देते हैं। क्या वही स्थिति उन देशों में भी है? यदि हमारी सरकार और सांसद मिलकर अपने देश में भी सबके लिए खुशहाली निर्माण करें तो सांसदों का वेतन बढ़ाने में किसी को भी एतराज नहीं होगा। सरकार एवं सांसद एक प्रकार से देशवासियों के पिता के समान हैं। क्या कोई पिता अपने बच्चों को भूखा देखते हुए स्वयं मालपुआ खा पाएगा? देश में लोग भूखों मरें और हम अपना वेतन बढ़ाते चलें—क्या ऐसे व्यवहार में मानवीयता प्रतिबिंबित होती है?

सांसद स्वयं ही अपना वेतन तीन गुना कर रहे हैं? इस पर की गई आपत्ति का आपने उत्तर दिया है कि संविधान की धारा 106 इस बात का सांसदों को अधिकार देती है। अपना वेतन बढ़ाने के लिए अपने संविधान की धारा का सहारा लेकर हम अपना वेतन बढ़ाते रहे हैं। किंतु क्या हम लोग अपने संविधान की इज्जत कर रहे हैं?

संविधान में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि संविधान लागू होने के दस साल के अंदर चौदह वर्ष के बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। संविधान स्वीकार होकर अब 50 वर्ष हो रहे हैं। क्या संविधान के इस आदेश का पालन स्वतंत्र भारत की किसी भी सरकार ने किया है? लाभ उठाने के लिए संविधान का सहारा लेना और कर्तव्य पालन का प्रसंग आया तो संविधान को भुला देना कहां का न्याय है?

देश को आजाद करने के लिए जिन असंख्य देशवासियों ने किसी भी सुख-सुविधा की अपेक्षा किए बिना अपना सबकुछ बलिदान किया—उनके सपनों को साकार किए बिना क्या हमें अपनी सुख-सुविधाओं में बढ़ोतरी करने का नैतिक अधिकार हो सकता है?

विराट् पुरुष

उपर्युक्त परिस्थिति में मैं अपना बढ़ा हुआ वेतन स्वीकार नहीं कर सकता। अतः आप मेरा बढ़ा हुआ वेतन आठ हजार रुपया प्रतिमाह 'प्रधानमंत्री राहत कोष' में जमा करने का कृपया प्रबंध करें। मैं इसकी सूचना राज्यसभा के माननीय सभापति महोदय को भी दे रहा हूँ।

47

27 सितंबर, 2001

प्रिय श्री जसवंत सिंहजी,

आतंकवाद के खिलाफ अमरीका ने युद्ध की घोषणा की है। भारत ने योगदान देने का फैसला किया है। यह उचित ही है। आतंकवाद मानवीयता का दुश्मन है।

1993 में मुंबई में आतंकवादियों ने कितने विस्फोट किए थे, कितनी जनहानि हुई थी, कितना आर्थिक नुकसान हुआ था, कश्मीर में पिछले दशक में कितने हमले हुए, कितने निरपराधियों की प्राण-हानि हुई, कितने सैनिक मारे गए। कारगिल में कितना कठिन युद्ध लड़ना पड़ा। संभवतः भारत ने अमरीका से अधिक ही प्राण-हानि सही है। किंतु विश्व के लोकतांत्रिक देशों ने इस बर्बरता के संबंध में कोई आवाज नहीं उठाई। ऐसा क्यों हुआ?

अब अमरीका में इन्हीं आतंकवादियों के बर्बर हमले के कारण अमरीका ने युद्ध छेड़ने की घोषणा की है। विश्व के देश उसका समर्थन कर रहे हैं। कारण, अमरीका विश्व का सबसे बलशाली देश है। जो भी हो, आतंकवादियों के उन्मूलन की दिशा में कदम बढ़ाया जा रहा है, यह अच्छी बात है।

मैं मानता हूँ कि डिप्लोमेसी में हर बात कहने की नहीं होती। किंतु रणनीति के रचनाकार अपनी बात मना लेते हैं। मेरा विश्वास है, आप भारत के खिलाफ पाकिस्तान में बने आतंकवादियों के अड़डे इस संकट काल में समाप्त कराने में सफल होंगे। कश्मीर में आतंकवादियों का निर्मूलन करा लेंगे। पाकिस्तान ने कश्मीर का जो भू-भाग जबरन हड़प रखा है, उसे छोड़ा लेंगे। तभी आतंकवाद को विश्व से मिटाने में यह युद्ध सफल होगा। केवल अमरीका अपना बदला लेने में सफल होने से संसार से आतंकवाद का उन्मूलन नहीं होगा।

48

05 अप्रैल, 2002

प्रिय श्री लालजी,

जम्मू-कश्मीर विषय पर राज्यसभा में हुई बहस के उत्तर में आपने पाकिस्तान द्वारा जम्मू-कश्मीर में आतंकवादियों की घुसपैठ को तथा विश्व में फैल रहे आतंकवाद को एक-दूसरे से

47 आतंकवाद के खिलाफ कुछ ठोस कदम उठाने पर जोर।

भिन्न कहा है। यह एक विश्लेषण तो हो सकता है किंतु क्या इसे वास्तविकता मानना उचित है?

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, विशेषतः रूस के विघटन के बाद अमरीका दुनिया में उपस्थित होनेवाली हर समस्या में चौधरी बनना चाह रहा है। ऐसी स्थिति में हमारा उससे कहना कि पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर में आतंकवादियों की घुसपैठ नहीं रोकता, तब तक हम उससे बात नहीं करेंगे, कहां तक उचित है?

किसी भी देश द्वारा अपने देश में हो रही घुसपैठ को रोकना हमारा अपना दायित्व है। स्वतंत्र देश को अपनी सुरक्षा स्वयं करना उसका आद्य कर्तव्य होता है। अपनी सुरक्षा को हम किसी अन्य देश से अपेक्षा करते हैं तो हम स्वयं अपनी समस्या को अंतरराष्ट्रीय बना देते हैं। इसी कारण अमरीका जम्मू-कश्मीर में किसी न किसी रूप में सक्रिय होना चाह रहा है।

कुछ ही दिन पूर्व 'वर्ल्ड बैंक' ने 'आजाद कश्मीर' के विकास के नाम पर पाकिस्तान को कर्ज दिया है। 'वर्ल्ड बैंक' यह साहस क्यों कर पाया? इसका कारण है हमारी विदेश नीति की विफलता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही पाकिस्तान ने कबालियों के नाम से आक्रमण कर हमारा जम्मू-कश्मीर का भू-भाग हड़प लिया है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। विश्व के सभी देशों को यह तथ्य हमें समझाना चाहिए था। पाकिस्तान हमें हमारा भू-भाग लौटा दे। अन्यथा हमें उसे वापस लेने के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे। इस प्रश्न पर हमने विश्व मत अपने अनुकूल नहीं बनाया। यह हमारी अपनी कमी रही है।

पाकिस्तान के द्वारा हुए हर एक आक्रमण को हमारी सेनाओं की रणकुशलता तथा पराक्रम की पराकाष्ठा ने परास्त किया है। किंतु हमारे नेतृत्व ने कूटनीतिक धरातल पर सफलता अर्जित नहीं की है।

पुरानी सरकारों ने गलतियां की हैं, उन्हें सुधारना नई सरकारों का दायित्व बनता है।

आज अमरीका के विदेश मंत्री जम्मू-कश्मीर को अंतरराष्ट्रीय समस्या कह रहे हैं। इसका कारण है कि हमने विश्व को यह समझाया ही नहीं कि पाकिस्तान ने जबरदस्ती हमारा भू-भाग दबा रखा है। पाकिस्तानी घुसपैठ को ही हमने मुद्दा बना रखा है, जो हमारी अपनी समस्या है। इसी कारण हमारा पक्ष कमजोर पड़ा है।

49

08 अप्रैल, 2002

प्रिय श्री दादाजी,

दिन-प्रतिदिन देश की स्थिति अधिकाधिक चिंता का कारण बन रही है। ऐसी स्थिति में अपने देश के भविष्य का क्या होगा, यह प्रश्न मन को कचोट रहा है? गुजरात में जो कुछ हुआ या हो

48 तत्कालीन उपप्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी को लिखा एक व्यक्तिगत पत्र, जिसमें कश्मीर में जारी आतंकवाद में पाकिस्तान की भूमिका पर चिंता जताई गई है।

विराट् पुरुष

रहा है, वह अपने देश के लिए कोई नई बात नहीं है। ऐसी घटनाएं पता नहीं कितनी बार हुई हैं। उनकी भयानकता की तुलना में गुजरात की घटनाएं अधिक भयानक है, यह कहना वास्तविकता नहीं है। किंतु गुजरात की घटना को लेकर विशेषतः अंग्रेजी मीडिया ने जो चित्र प्रसारित किया है, उसने चिंता को कई गुना बढ़ा दिया है।

क्या हमारे देश का पुनर्विभाजन करने की दिशा में हमें बढ़ना चाहिए? हिंदुस्तान में 1947 के विभाजन के बाद भी बारह-साढ़े बारह करोड़ मुसलमानों की संख्या अपने देश में है। यह वस्तुस्थिति स्पष्ट रूप से बताती है कि हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमान सामंजस्य से नहीं रहेंगे तो देश का भविष्य खतरे में पड़ेगा। किंतु इन दोनों समुदायों में सामंजस्य के रास्ते पर चलने की मानसिकता में कोई है, ऐसा दिखाई नहीं देता। कारण, सभी की नेतागिरी समाज के विघटन पर चल रही है। इस दृष्टि से प्रश्न केवल हिंदू-मुसलमान का ही नहीं है।

व्यावहारिक जीवन में वर्तमान काल में जातियों का कोई उपयोग दिखाई नहीं देता। इसके बावजूद राजनीतिक लाभ उठाने के लिए जातियों की भावनाएं भड़काने का काम व्यापक स्तर पर हो रहा है। उत्तरांचल, झारखंड और छत्तीसगढ़ के राज्यों का निर्माण किया गया है। उसके पीछे इन क्षेत्रों के विकास की आकांक्षा नहीं रही है। कुछ राजनेताओं की सत्तापिपासा की पूर्ति का प्रश्न ही सर्वोपरि रहा है।

यह समझने के लिए विशेष बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। ये सब बातें जब स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं तो देश की एकता एवं अखंडता की चिंता करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता। तब व्याकुलता और बढ़ती है।

अब देशभक्ति की प्रेरणा गायब है। सत्ता प्राप्ति की प्रेरणा ही सर्वोपरि बन गई है। हर एक नेता की नेतागिरी का आधार बहुत संकुचित हो गया है। व्यक्तिगत लाभालाभ की तराजू पर तौलकर हर छोटा-मोटा नेता कदम बढ़ा रहा है। इस कारण, नई पीढ़ी को भविष्य निर्माण के लिए सिद्ध करने की आवश्यकता अनुभव हो रही है। यह रास्ता लंबा अवश्य है। किंतु इसके अतिरिक्त कोई विकल्प दिखाई नहीं देता।

मेरी आयु बहुत अधिक होती जा रही है। फिर भी देश की अवस्था को देखकर मन चुपचाप बैठना नहीं चाहता।

50

10 अप्रैल, 2002

प्रिय श्री वेंकैयाजी,

देश की शासनारूढ़ पार्टी के आप अध्यक्ष हैं। देश के भविष्य निर्माण की दृष्टि से यह पद बहुत ही महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक सत्ता का आकर्षण एवं महत्व सर्वोपरि

49 श्री के.डी. जोशी के साथ सांप्रदायिकता की समस्या पर विचार।

बन गया है। इस कारण भी सत्तारूढ़ दल के अध्यक्ष पद की अहमियत अधिक बढ़ गई है। मैं एक वयोवृद्ध नागरिक हूँ। इस कारण, देश के भविष्य की चिंता अधिक सताती है। कारण, अब आयु के कम दिन बचे हैं। अतः मैं यह पत्र लिखने के लिए विवश हूँ।

अध्यक्ष बनने के बाद आपका दिया हुआ नारा सभी समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिला। “एक हाथ में भाजपा का झंडा तथा दूसरे हाथ में राजग का एजेंडा”। तुकबंदी की दृष्टि से नारा सुनने में अच्छा लगा। किंतु विचार करने के बाद मन में कुछ प्रश्न उपस्थित हुए हैं।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने अपने एजेंडे के रूप में कुछ बातें घोषित की हैं। चुनाव के समय प्रकाशित किए जानेवाले ‘घोषणा-पत्र’ जैसा ही यह एजेंडा है, जिसके कार्यान्वित होने की संभावना नहीं होती। व्यावहारिक धरातल पर जो कुछ हो रहा है, उसे नजरअंदाज करना हितावह नहीं है।

भाजपा गत लोकसभा चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी है। अतः उसके द्वारा सरकार बनाना अवश्यंभावी था। शासन चलाने के लिए संसद् में बहुमत चाहिए था। प्रादेशिक पार्टियों को भी केंद्रीय सरकार से सहायता की आवश्यकता थी। फलस्वरूप, लक्ष्यों की समानता न होते हुए भी अपने-अपने हित के लिए वे भाजपा के साथ जुड़ने के लिए राजी हुईं। इस प्रकार भाजपा की सरकार को संसद् में बहुमत मिला है।

आश्चर्य की बात है कि जीवन भर संघ, जनसंघ तथा भाजपा की घोर निंदा करनेवाले शरद यादव जैसे अनेक लोग भी राजग से जुड़ गए हैं। घोषित एजेंडा जो भी हो, प्रमुख बात तो सत्ता-सुख की अभिलाषा ही अधिक रही है।

इस तथ्य का मैंने इसलिए उल्लेख किया है कि आपका दायित्व बड़ी ही कुशलता चाहता है। आपके साथ जुड़ी हुई पार्टियाँ हों या व्यक्ति हों, उन सबको लेकर देश को अच्छा शासन एवं प्रशासन उपलब्ध कराना प्रधानमंत्री तथा भाजपा के अध्यक्ष का सम-समान दायित्व है। इसकी आपको अनुभूति अवश्य होगी।

इस दायित्व को अपेक्षित रूप में निभाने का अर्थ है कि सत्तारूढ़ दल के साथ जुड़नेवाले लोग चाहे जिस हेतु से जुड़े हों, उनमें अखिल भारतीय महत्ता की मानसिकता विकसित करने का पूरा प्रयास करना शासनारूढ़ दल का अनिवार्य कार्य है। इसके अभाव में शासकीय नेतृत्व को इन जुड़े हुए लोगों के क्षेत्रीय तथा व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में ही उलझना पड़ रहा है। फलस्वरूप, सरकार पर आम लोगों का भरोसा जम नहीं पा रहा है। भविष्य की दृष्टि से यह स्थिति ठीक नहीं है।

दिल्ली में अभी हुए आपके अधिवेशन की कार्यवाही समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिली। चुनकर आए हुए आपके दल के विधायकों एवं सांसदों को अपनी लक्ष्यसिद्धि की दृष्टि से परिणामजनक बनाने का काम नजर से ओझल हुआ सा लगा। इसके लिए आवश्यक कदम उठाने का किसी को स्मरण रहा है, यह पढ़ने को नहीं मिला। क्या पार्टी में अनुशासनहीनता बढ़ने का यह कारण नहीं है? दल के नेताओं का स्वाभाविक दायित्व है अपने व्यवहार से सब विधायकों एवं सांसदों

विराट् पुरुष

को साथ लेकर चलने का। उसके बिना उनकी क्षमताएं न विकसित हो पाती हैं, न काम में आती हैं। अपितु उनकी गतिविधियां नुकसान भी पहुंचा सकती हैं।

वस्तुतः बिना मांगे सलाह देना उचित नहीं होता, इसे मैं जानता हूं। किंतु आप भाजपा के द्वारा देश का शासन चला रहे हैं और मैं देश का एक नागरिक हूं। एक नागरिक के नाते मैंने आपको सूचित किया है कि नागरिक क्या सोचते हैं? उन पर विचार करना या न करना आपकी मर्जी पर है।

51

25 मई, 2002

प्रिय सुनंदा बहनजी,

समाज के विभिन्न वर्गों के तथा संप्रदायों के लोगों में सामंजस्य होना कठिन नहीं है। विभिन्न वर्गों में तथा संप्रदायों में कटुता तब निर्माण होती है जब राजनीति प्रवेश करती है। स्वतंत्र भारत में राजनीति का एक ही काम चल पड़ा है, वह है वोट प्राप्ति का, और वोट प्राप्ति के लिए विभिन्न वर्गों तथा संप्रदायों में विभेद निर्माण करने का।

दैनंदिन जीवन में विभिन्न वर्गों तथा संप्रदायों में टकराव की स्थिति नहीं होती, यदि हमें सबके विकास का कार्य करना है तो एक-दूसरे में पूरकता बढ़ाने को प्राथमिकता देनी होगी।

यह हम सभी जानते हैं कि मानव अकेला नहीं रहता। जिस परिवार में वह रहता है, वह परिवार भी अकेला नहीं रहता। आबादी के रूप में रहता है। बड़े शहरों की आबादी भी मोहल्लों के रूप में अस्तित्व में आती है। अतः जैसे परिवार में परिवार के सदस्य एक-दूसरे के लिए पूरक बनकर सुखानंद से रहते हैं, वैसे ही मोहल्लों के या ग्रामीण आबादी के लोग आपस में पूरक बनकर रहें तो आबादी में सुखानंद का जीवन विकसित होगा। यदि इस दिशा में काम किया गया तो समाज में एकता एवं एकात्मता विकसित हो सकती है।

52

29 जुलाई, 2002

प्रिय श्री यशवंतजी सिन्हा,

आपने अमरीका के विदेश मंत्री श्री पॉवेल को बड़ी कुशलता से किंतु साफ शब्दों में बताया है कि "आप कृपया ओसामा बिन लादेन और अलकायदा द्वारा विश्व में फैलाए जा रहे आतंकवाद

51 *नाजानी का अटूट विश्वास था कि राजनीति के कारण ही सांप्रदायिकता पनपती है, इसमें आम लोगों का कोई हाथ नहीं होता।*

52 *आजाद कश्मीर के प्रति सरकारी नीति के मद्देनजर विदेशी नीति में परिवर्तन की आशा।*

के खात्मे की चिंता अधिक करें। पाकिस्तानी आतंकवाद से हम स्वयं निपट लेंगे।''

आपकी इस स्पष्टवादिता से स्वतंत्र भारत का गौरव बढ़ा है तथा देश के नागरिकों के आत्मविश्वास को बल मिला है। आपके इस कदम के लिए मैं आपका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

मैं पिछड़े हुए ग्रामीण अंचल का एक देहाती नागरिक हूँ। देश-विदेश की बातों को समझ पाना मेरे बूते की बात नहीं है। फिर भी 'वर्ल्ड बैंक' ने 'आजाद कश्मीर' के विकास के लिए पाकिस्तान को कर्ज देने का साहस क्यों किया? क्या यह हमारी विदेश नीति की विफलता का द्योतक नहीं है? हम दुनिया के शक्तिशाली देशों से आग्रह कर रहे हैं कि वे पाकिस्तान पर दबाव डालकर पाकिस्तान द्वारा भारत में आतंकवादियों की घुसपैठ रोकें। क्या यह कार्य स्वतंत्र देश के लिए सम्मानजनक है? यह तो हमारा अपना दायित्व है कि हम स्वयं अपने देश की ऐसी सुरक्षा करें, जिससे विदेशी आतंकवादी बनकर हमारे घर में घुसने न पाएँ।

पाकिस्तान ने 1948 में कबायली के रूप में हमारे देश पर हमला कर हमारे देश का कश्मीरी भूभाग आक्रमण करके अपने कब्जे में कर रखा है। हमें यू.एन.ओ. तथा दुनिया के देशों से मांग नहीं करनी चाहिए कि वे पाकिस्तान के द्वारा कब्जा किया हुआ कश्मीर का भूभाग हमें वापस दिलाएं? हमें सबको यह बताना चाहिए कि यदि पाकिस्तान ने निश्चित समयावधि में वह भूभाग हमें वापस नहीं किया तो हम अपना भूभाग अपने ढंग से वापस ले लेंगे।

यदि हमने दुनिया भर में इस पहलू को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया होता तो 'वर्ल्ड बैंक' 'आजाद कश्मीर' के विकास के नाम पर पाकिस्तान को कर्ज देने का साहस ही नहीं करता। मेरा विश्वास है, आप विदेशी नीति को उपर्युक्त दिशा में आगे बढ़ाएंगे।

कश्मीर के मामले में पुरानी सरकारों ने सही कदम नहीं उठाया यह कहकर हम अपना दायित्व टाल नहीं सकते। नई सरकारों को पुरानी सरकारों के द्वारा की गई गलतियों को सुधारने का काम करना होता है। यह किस प्रकार से करना, यह नेतृत्व को तय करना होगा। देश के नागरिक आप लोगों से यही अपेक्षा करते हैं।

53

03 सितंबर, 2003

प्रिय बंधु,

गत 25 अगस्त को दिन-दहाड़े मुंबई की घनी बस्ती में दो जबरदस्त बम विस्फोटों से 'मुंबादेवी परिसर' एवं 'गेट वे ऑफ इंडिया' आतंकवादी मंसूबों का शिकार बना। 45 निर्दोष नागरिकों की दर्दनाक मृत्यु और डेढ़ सौ घायलों की चीत्कार से न केवल मुंबई अपितु संपूर्ण देश दहल उठा। अरबों रुपयों की संपत्ति नष्ट हुई।

53 मुंबई धमाकों की पृष्ठभूमि में आतंकवाद की विवेचना।

विराट् पुरुष

मुंबई में आतंकियों का यह कोई अनपेक्षित या अप्रत्याशित क्रूर-कर्म नहीं था। वास्तव में मुंबई में विगत कुछ वर्षों में आतंकवादियों के द्वारा कई अवसरों पर ऐसे ही हृदयविदारक दृश्य उपस्थित किए गए। आतंकवाद ने केवल मुंबई में ही नहीं, संपूर्ण भारत में अपनी जड़ें जमा ली हैं। यहां तक कि राजधानी दिल्ली में संसद् भवन एवं लाल किला भी इनके आक्रमण से बच नहीं पाए।

ये आतंकवादी कार्यवाहियां बहुत सोची-समझी रणनीति के अनुसार सुनियोजित ढंग से लगातार चल रही हैं। उनका उद्देश्य एक ही है—भारत में अव्यवस्था एवं अस्थिरता पैदा करना। ये विध्वंसकारी तत्व अपने कुकृत्यों में काफी मात्रा में सफल हो रहे हैं।

ऐसी हर आतंकी घटना के बाद अपने देश के राजनेता एवं प्रबुद्ध नागरिक सरकार को, विशेषकर गुप्तचर एजेंसियों एवं सुरक्षा व्यवस्था को कोसने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मानते हैं, दुर्घटना की गंभीरता को अनुभव न कर उसकी कारण मीमांसा में निरर्थक तर्क प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि यह बात भी उपेक्षणीय नहीं कि स्वतंत्र भारत में जो भी सरकारें बनी, उन्होंने इस समस्या की गंभीरता का सही आकलन कर योग्य निदान ढूंढने का प्रयास ही नहीं किया है। यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि केवल सरकार या सुरक्षा बलों के बल पर आतंकवाद का निर्मूलन सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। ऐसे देश-विघातक षड्यंत्रों में सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण होते हुए भी सीमित ही होती है। इसमें आतंकवादी भोले-भाले एवं अभावग्रस्त लोगों में पनाह पाकर अपना षड्यंत्र सिद्ध कर लेते हैं। इनकी सफलता का रहस्य छिपा रह जाता है। उनके अप्रत्याशित तीव्र गति से कार्य करने में उन्हें सफलता मिलती है। ये विध्वंसकारी अपनी दुर्दांत गतिविधियों को तब तक क्रियान्वित नहीं कर सकते, जब तक इन्हें किसी प्रकार का स्थानीय सहयोग या आश्रय न मिले। अतः इन आतंकवादी कार्यवाहियों का सफलतापूर्वक उपाय तभी किया जा सकेगा, जब सरकार व सुरक्षा बलों के साथ संपूर्ण समाज एकजुट होकर खड़ा हो। यह तभी संभव है, जब समाज के सभी वर्गों का नेतृत्व दलगत या संकुचित भावनाओं एवं वैचारिक मतभिन्नताओं से ऊपर उठकर काम करें।

किंतु ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा है? आजादी के पूर्व देश में सर्वत्र उत्कंठ देशभक्ति की भावना हिलोरें लेती थी। बाल, युवा, वृद्ध, महिला-पुरुष स्वाधीनता की वेदी पर अपना सबकुछ न्योछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। आज यह देशप्रेम, राष्ट्रीय-ऐक्य एवं देश के लिए सर्वस्वार्पण की भावना लुप्त क्यों हो गई है?

सदियों तक गुलामी का कलंक ढोने के बाद अब स्वाधीन होने पर भी हम सुदृढ़ एवं समृद्ध भारत के निर्माण की अपनी आकांक्षा को क्यों भुला बैठे हैं? इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए किसे उत्तरदायी माना जाए? राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या धार्मिक क्षेत्र के प्रतिनिधि होने के नाते क्या हम सभी को इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं करना चाहिए? राजनीतिक क्षेत्र में कार्यरत दलों या उनके नेताओं का स्वाधीनता के बाद इस दिशा में क्या योगदान है? क्या

सचमुच ही हम सामाजिक एकता, देशप्रेम और राष्ट्रीय संकल्प को सुदृढ़ करने में कोई सार्थक भूमिका निभा रहे हैं?

अभी पिछले हफ्ते ही लोकसभा में तथाकथित अविश्वास प्रस्ताव पर लंबी चर्चा के दौरान जो दृश्य उपस्थित हुआ, उसे टेलीविजन पर देखकर देश-विदेश के लोगों में कौन सा संदेश पहुंचा है? उस दौरान विभिन्न नेताओं ने जो दृश्य उपस्थित किए—एक-दूसरे के प्रति अनर्गल शब्दों की बौछार करते हुए उनकी देशभक्ति पर ही प्रश्नचिह्न लगाने की अभद्र वारदातें हुईं, क्या उससे हमारे देश या उदीयमान लोकतंत्र की गरिमा बढ़ी है?

अपने कतिपय राजनीतिक नेताओं के व्यवहार को देखकर ऐसा लगता है कि उनके लिए 'राष्ट्र' से बड़ा 'दल' और दल से बड़ा 'मैं' बन गया है। ऐसा नेतृत्व नई पीढ़ी में देशभक्ति, समाज-निष्ठा और सौहार्द की भावना भरने में कैसे सफल होगा? क्या यह भावी पीढ़ी को किसी उदात्त ध्येय के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा प्रदान करेगा?

आजादी पाने के बाद देशभक्ति की भावना बनाए रखने की चिंता किसे है? क्या इसके बिना हम देश का भविष्य बना पाएंगे? इन सवालों से मन अस्वस्थ हो रहा है। इसी कारण इस पत्र द्वारा आपको कष्ट देने के लिए विवश हुआ हूं। आशा है, आप अपने विचारों से अवगत कराने की कृपा करेंगे। इस अवस्था में भी यदि हम गंभीरतापूर्वक कारगर कदम न बढ़ा पाए तो भावी पीढ़ियां हमें क्षमा नहीं करेंगी।

54

29 दिसंबर, 2003

प्रिय श्री विनयजी,

शिवाजी के काल में विदेशी शासक इसलाम के मतावलंबी थे। उनके चंगुल से हमें अपनी आजादी छीन लेनी थी। ऐसी अजब परिस्थिति में भी शिवाजी ने समुद्री सेना का प्रमुख ऐसे व्यक्ति को बनाया था, जो इसलाम का अनुयायी था। इससे स्पष्ट होता है कि शिवाजी उस काल में भी राजनीति में मजहब को महत्त्व नहीं देते थे।

परिस्थितियां काल के अनुसार बदलती रहती हैं। जिस कारण परिस्थिति के अनुरूप अर्थात् काल की आवश्यकता के अनुरूप कार्यक्रमों की रचना करनी होती है। इस कारण समयानुकूल कार्यक्रम भिन्न होना अनिवार्य है। किंतु जीवन-दृष्टि पर काल का प्रभाव हुआ नहीं करता। इसी कारण शिवाजी की जीवन-दृष्टि आज के दिनों में भी उतनी ही प्रासंगिकता अनुभव होती है, जितनी उनके काल में थी। वस्तुतः चरित्र का इस रूप में चित्रण करना आवश्यक हुआ करता है।

54 शिवाजी की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का प्रतिपादन। विनय सहस्रबुद्धे विचारक स्तंभकार एवं रामभाऊ म्हालगौ प्रतिष्ठान से संबद्ध हैं।

डॉ. एपीजे अब्दुल कलॉम,
महामहिम राष्ट्रपति महोदय,

देश की वर्तमान स्थिति का गंभीर चिंतन और गहरा मंथन करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि हमारा देश अराजकता और कुशासन की ओर बढ़ रहा है। हमारी नीतियों पर सहमति का अभाव है और राष्ट्रीय आर्थिक एवं सामाजिक नीति पर भी विभिन्न मत हैं। इस स्थिति को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय स्तर के दोनों गठबंधन विवाद की राजनीति करते हैं। उनकी पूर्ण शक्ति एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगी हुई है। यह स्थिति बाहरी ताकतों के खतरे के प्रति हमारी चेतना का हास करेगी, जिससे फिर से हमारे शोषण का खतरा पैदा हो सकता है। यहां तक कि देश के टुकड़े करने की जमीन भी इससे तैयार हो सकती है।

जबकि हर गठबंधन ने गरीबी उन्मूलन के दावे और वादे किए हैं, लेकिन अब लगातार इस मुद्दे से उनका ध्यान हट रहा है। 'जनोन्मुखी तकनीकों' का विकास करके किस प्रकार इस आधारभूत समस्या का निराकरण हो सकता है, यह तो किसी सत्ताधारी वर्ग की चिंता ही नहीं। 'ग्राम स्वराज' जो आज के पंचायती मॉडल या किसी विदेशी मॉडल से बिलकुल अलग हो, कैसे विकसित हो, यह लक्ष्य भी सत्ता के गलियारों में खो चुका है। अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए सत्ता प्राप्त करना, दूसरे की कुरसी खींचना राजनेता का जीवन-लक्ष्य बन गया है। इस रुख को बढ़ावा मिला तो एक दिन सभी राष्ट्रीय और प्रांतीय दल कई नए टुकड़ों में बंट जाएंगे। देश बरबाद हो जाएगा। मुझे उम्मीद है आप मूक दर्शक बनकर यह तमाशा नहीं देखेंगे। 2020 तक भारत को विकसित देश देखने के आपके सपने को यह चकनाचूर कर देगा। जहां लोगों की एकता और उम्मीदें टूट रही हों, वहां क्या सुधार हो सकता है।

मेरी आपसे अपील है राष्ट्रपति महोदय कि भारत के शासनाध्यक्ष और एक स्वजन्मदृष्टा के नाते इस बीमारी को दूर करने के लिए आप पहल करें। आप दोनों राष्ट्रीय दलों, कांग्रेस व बीजेपी के शीर्ष नेतृत्व को विचार विमर्श के लिए बुलाएं। उनसे अपील करें कि देश की एकता मजबूत करने और जरूरी मुद्दों को सुलझाने के लिए कुछ रास्ता खोजें।

आपके स्पष्ट प्रश्न, सांप्रदायिक नफरत, जातीय संकीर्णता, प्रांतीय और भाषायी भेदभाव के बारे में आत्मनिरीक्षण का अवसर प्रदान कर एक नई सोच का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

आप बुद्धिजीवियों, नीति-निर्धारकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं में भी इस चेतना का संचार करने की क्षमता रखते हैं।

प्रिय श्री लालजी,

संघ, जनसंघ तथा भाजपा में आपने अपने जीवन का तीन-चौथाई समय बिता दिया है। अब आपको फिर से भाजपा के अध्यक्ष पद का दायित्व संभालना पड़ रहा है। बिना मांगे सलाह देना मूर्खता है। यह जानते हुए भी मैं आज मूर्खता करने जा रहा हूँ। कृपया क्षमा करें।

देश की हालत अत्यधिक चिंताजनक है। आम लोगों का न किसी पार्टी पर भरोसा बचा है, न किसी नेता पर। सत्ताप्राप्ति की आकांक्षा रखनेवाली कोई भी पार्टी अपना मंत्रिमंडल सफलता से चलाने के लिए योग्य, मंत्रालय के कार्य की जानकारी रखनेवाले तथा उस विषय के भविष्य की नवरचना करने की क्षमता रखनेवाले मंत्रियों का निर्माण नहीं करते। इसके बावजूद वे सत्तारूढ़ होना चाहते हैं। उनके द्वारा सतत बढ़ रहा भ्रष्टाचार रोका नहीं जा पा रहा है। चारों ओर फैलती डकैतियों तथा अपहरण पर काबू पाना संभव नहीं हो रहा है। ऐसी सरकारें करोड़ों लोगों की गरीबी घटा नहीं पाती और नई पीढ़ी के करोड़ों नौजवानों को रोजगार भी उपलब्ध नहीं करा पाती। इसके बावजूद वे सत्ता से चिपकी रहना चाहती हैं। इसी कारण, देश की सभी पार्टियां सार्वदेशिक स्तर पर बहुमत पाने में असमर्थ हुई हैं। प्रदेशों में भी वही स्थिति बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में देश के भविष्य का क्या होगा?

हिंदू समाज बहुत पुराना है। उसकी समयानुकूल पुनर्रचना करने का आवश्यक कार्य उपेक्षित पड़ा हुआ है। उसका जीवन व्यवसायों पर आधारित जाति-प्रथा पर चलता रहा, किंतु तकनीकी प्रगति ने जाति-प्रथा को पूर्णतः अप्रासंगिक बना दिया है। व्यावहारिक जीवन में अब जातियों का कोई स्थान बचा ही नहीं है।

जाति-प्रथा के स्थान पर वैकल्पिक व्यवस्था निर्माण करने की नेतृत्व ने परवाह नहीं की है। अतः बेकार बनी जातियों का दुरुपयोग होना अवश्यभावी है।

हिंदू समाज में प्रचलित अस्पृश्यता जाति-प्रथा का ही अभिन्न अंग है। आज भी अस्पृश्य जाति का दूल्हा अपनी बारात में घोड़े पर सवार नहीं हो सकता। ऐसी अनेक अपमानजनक परंपराएं अभी भी प्रचलित हैं। संविधान में इन जातियों के लिए उपलब्ध आरक्षण उनकी न आर्थिक दशा सुधार पा रहा है, न सामाजिक कुरीतियों को ही मिटा रहा है। सदियों से अपने ही बंधु-बांधवों को हिंदू समाज ने तुच्छता के गर्त में पटक रखा है। सुधारवादी कहे जानेवाले हिंदू नेतागण भी इन जातियों के लोगों के साथ पारिवारिक आधार पर एकात्मता का व्यवहार नहीं करते। इस कारण, समस्या का निराकरण नहीं होता। इनके लिए संवैधानिक आरक्षण का काल बढ़ाने का प्रयास राजनीतिक नेतृत्व का निजी स्वार्थ साधन मात्र है। ऐसी स्थिति में स्वयं को हिंदू मानने से इन जातियों के लोगों का इनकार करना क्या हमारे ध्यान में नहीं आना चाहिए? सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों से भाजपा का हरिजन उम्मीदवार विजयी बनता है सवर्णों के समर्थन से। कारण, सवर्ण समझते हैं कि भाजपा का हरिजन सांसद

56 हिंदुओं का वैशिष्ट्य उजागर कर आतंकवाद पर नियंत्रण का सुझाव। इस पत्र की प्रति श्री अटल बिहारी वाजपेयी को भी भेजी गई।

विराट् पुरुष

या विधायक हमारे वर्चस्व के लिए खतरा नहीं बनेगा, इस अपेक्षा से। क्या यह संतोषजनक है?

आरक्षण की आंधी चल पड़ी है। मानो स्वराज्य प्राप्ति का सामान्य जनों के लिए कोई उपयोग ही नहीं रहा। मंडल आयोग ने सामाजिक एकता, एकात्मता तथा समरसता की घोषणाओं को सवर्णों की चालबाजी माना है। अतः पिछड़ी कही जानेवाली जातियाँ अब अपना-अपना अलग अस्तित्व मानने लगी हैं। उन्हें स्वयं को हिंदू कहलवाना चाहिए? आरक्षण का लाभ पाने के लिए रामकृष्ण मिशन तक ने स्वयं को हिंदू समाज का अंग मानने से इनकार किया था। इस वास्तविकता को नजरअंदाज करना कहां तक उचित होगा? क्या इस अलगाववादी लहर को रोकने का हम लोग कारगर उपाय कर रहे हैं?

स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए हमारे नेतृत्व ने मुसलिम तुष्टीकरण को अनिवार्य माना था, उसकी परिणति देश-विभाजन में हुई। इसके बावजूद स्वतंत्र भारत में सत्ता पाने के लिए मुसलिम तुष्टीकरण का खतरनाक खेल खेला जा रहा है। परिणामस्वरूप, अप्रासंगिक बन बेकार पड़ी जातियों को जातिवाद के रूप में उभारकर मुसलिम तुष्टीकरण के द्वारा उत्पन्न अलगाववाद से गठबंधन कर सत्तासुख भोगने का तरीका अस्तित्व में आया है। बिहार में लालू प्रसाद यादव ने इस तरीके का सबल उदाहरण प्रस्तुत किया है। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह उसी राह पर सफलता पाने लगे हैं। यदि यह प्रक्रिया देशव्यापी रूप में अपनी करामात दिखाने लगी तो देश खंड-खंड हुए बिना बच नहीं सकता।

महाराष्ट्र में अभी-अभी हुए विधानसभा चुनाव में भाजपा-शिवसेना गठबंधन को मिली पराजय के बाद जो प्रतिक्रियाएं प्रकट हुई हैं, उनसे मैं अधिक चिंतित हुआ हूँ। आपने अभी अपनी ढलती आयु में भाजपा के अध्यक्ष बनने के बाद जो वक्तव्य दिए हैं, वे अखबारों में पढ़ने को मिले। उनसे भी मैं आश्चर्यचकित हुआ हूँ। मुझे लगने लगा है, चुनावों में हुई पराजय से अनजाने में ही क्यों न हो, आप लोग लालू और मुलायम सिंह के द्वारा मुसलमानों से जो गठजोड़ हुआ है, उसे और अधिक बल पहुंचा रहे हैं। मुसलिम तुष्टीकरण की नीति भारत के लिए जितनी खतरनाक है, उन्ती ही एंटी-मुसलिम नीति भारत को नुकसान पहुंचाने जा रही है।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के सर्वथा प्रतिकूल है। हिंदू समाज सदैव अपनी संस्कृति के अनुसार सकारात्मक प्रवृत्ति पर अडिग रहा है। यही एक विश्व के धरातल पर हिंदुओं का वैशिष्ट्य रहा है। यदि उसी को हमने तिलांजलि दी तो भारत के अस्तित्व का लक्ष्य ही मिट जाएगा। मैं तो यहां तक अनुभव करता हूँ कि भारत के इस सकारात्मक वैशिष्ट्य को आधार बनाकर भारत में काम करें तो केवल उसी के द्वारा विश्व में बेकाबू हो रहा मुसलिम आतंकवाद परास्त किया जा सकता है। उसे परास्त करने का इससे अन्य उपाय कदापि सफल नहीं होगा।

प्रतिक्रियात्मक मार्ग अपनाना संघ निर्माता परम पूज्य डॉक्टरजी ने कभी स्वीकार नहीं किया था। उनके देहांत के तुरंत बाद छपी उनकी संक्षिप्त जीवनी में छपे उनके भाषण इसके प्रमाण हैं।

सन् 1934 में जिस रूप में मध्य प्रदेश था, उसकी प्रादेशिक अंग्रेजों की सरकार ने स्थानीय निकायों एवं सरकारी कर्मचारियों पर संघ-शाखों में जाने पर रोक लगाई थी। सीमित मताधिकार के आधार पर 'मध्य प्रदेश प्रादेशिक लेजिस्लेटिव काउंसिल' कार्यरत थी। उसके बजट-सेशन

में संघ की शाखाओं में जाने पर प्रतिबंध लगाना अनुचित है, उस आदेश को निरस्त करनेवाला कटमोशन प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। मुसलिम विधायक ने भी उसका खुलकर समर्थन किया था। अतः वह प्रस्ताव बहुमत से पारित हुआ। सरकार को सरकारी कर्मचारियों को संघ-शाखाओं में जाने पर लगाया गया प्रतिबंध वापस लेना पड़ा था। परम पूज्य डॉक्टरजी की सकारात्मक हिंदुत्व की कार्यशैली का क्या हमें पालन नहीं करना चाहिए?

संभवतः आपको स्मरण होगा कि जनसंघ के निर्माण के पूर्व स्व. डॉ. मुखर्जी हिंदू सभा के नेता थे। हिंदू सभा की नीति प्रतिक्रियात्मक एवं कालाबाह्य थी। स्वतंत्र भारत में वह अप्रासंगिक है। अतः भारतीय सिद्धांतों पर आधारित सकारात्मक नीतिपूर्ण राजनीतिक दल की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए परम पूज्य गुरुजी से जनसंघ निर्माण के लिए संघ से कार्यकर्ता मांगे गए थे। उसी आधार पर जनसंघ का निर्माण हुआ था।

यह भी आपको पता है कि अपने देश में ही प्रतिक्रियात्मक तौर-तरीके अपनाने के कारण आर्य समाज और हिंदू महासभा की जो गति हुई है, क्या इक्कीसवीं सदी में हमें उसी प्रतिक्रियात्मक नीति को अपनाना चाहिए?

उपर्युक्त तथा अन्य अनेक बातों का विचार कर भविष्य के गर्भ में छिपी हुई संभावनाओं का आकलन कर स्व. दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का मंत्र हम लोगों के लिए खोज लिया था। वह मंत्र हिंदू जीवन का ही सनातन मंत्र है। वह मानव मात्र के कल्याण का आधुनिकतायुक्त मार्ग है। उसकी व्यापकता असीम है। उसे कोई संकुचित या सांप्रदायिक नहीं कह सकता है। वह 'ग्लोबलाइजेशन' का भारतीय रूप है।

57

25 दिसंबर, 2007

प्रिय श्री नरेंद्रजी,
स्नेहपूर्ण शुभाशीर्वाद।

अपनी ही पार्टी के मूर्धन्य नेतागणों के खुलकर विरोध के बावजूद आपकी विजय आपके कर्तृत्व की द्योतक है।

जवाहरलाल नेहरू ने प्रधानमंत्री के नाते घोषणा की थी कि हमारे शासन में हर एक भ्रष्ट व्यक्ति लैंप-पोस्ट पर लटका मिलेगा। किंतु आज देश भ्रष्टाचार में आकंट डूबा है। आपने भ्रष्टाचार को निर्मूल कर शासन की कुशलता सिद्ध की है।

देश जातिवाद और क्षेत्रीयतावाद के कारण खंड-खंड होता जा रहा है। मैं आपको प्राप्त सुयश में अनेक संभावनाओं की अपेक्षा करता हूँ।

57 दिसंबर 2007 में तीसरी बार गुजरात के मुख्यमंत्री बनने पर नरेंद्र भाई मोदी को बधाई पत्र।

माननीय प्रधानमंत्री महोदय,
प्रिय डॉ. मनमोहन सिंहजी,

देश की आर्थिक स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है। देश के सत्तर फीसदी से अधिक लोग अपने भविष्य के संबंध में निराश हैं। उनमें से कतिपय लोग आत्महत्या कर रहे हैं। आगामी 20 वर्ष में भारत का उज्ज्वल भविष्य देखने की स्थिति में वे लोग नहीं हैं। यह दुर्दशा बदलने की सरकार में शक्ति नहीं है। यह आम लोगों की राय बनी है। लेकिन यह सत्य नहीं है। भारत अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ एकजुट होकर काम करने लगे तो भारत का भविष्य निश्चित उज्ज्वल बन सकता है।

देश में स्वार्थ और भ्रष्टाचार असीम हो गया है। सरकार इस पर काबू पाने में असमर्थ है। इसलिए मैं विवश होकर आपको कुछ सुझाव देना चाह रहा हूँ। देश अभी अच्छे लोगों से शून्य नहीं है। लोगों पर विश्वास रखनेवाले लोग आज भी मौजूद हैं। उनके सहारे हम अपने देश का भविष्य बना सकते हैं। उसके लिए उचित उपाय करने की जरूरत है। मैं राजनीति की बात नहीं करता। देश में गैर राजनीतिक क्षमता काम में नहीं ली जा रही है। यदि उस शक्ति का उपयोग किया गया तो हम अपना भविष्य आनेवाले बीस साल में बना सकते हैं। आज आर्थिक संकट से देश परेशान है। 70 प्रतिशत लोग बेहाल हैं। देश अकाल की स्थिति से जूझ रहा है। हमें प्रथम इस अकाल की स्थिति से छुटकारा पाना होगा। उसके लिए निम्न सुझाव के अतिरिक्त उपाय नहीं दिखता। इस कारण मैं यह पत्र माननीय प्रधानमंत्रीजी के नाम से लिख रहा हूँ। कारण, आपने चाहा तो आप ही ये बातें कर सकते हैं।

- देश में अपार शक्ति है। उस शक्ति का उपयोग किया गया तो आज का संकट देखते-देखते समाप्त हो सकता है। देश में धन की विशाल राशि खड़ी की जा सकती है। जिसका उचित उपयोग अवैतनिक आधार पर खड़ा किया जा सकता है। देश में विश्वासपात्र और क्षमतावान लोगों की कमी नहीं है। किंतु वे राजनीति में रुचि नहीं रखते। वे लोग देश का संकट दूर करने के लिए सिद्ध भी हैं। आवश्यकता इतनी ही है कि उनकी शक्ति का सदुपयोग किया जाए। आज मान्यवर डॉ. एपीजे अब्दुल काम जैसे कर्तुव्यवान व्यक्ति मौजूद हैं। जिन पर आम लोगों का विश्वास है। उन्हीं के नाम से गैर सरकारी अथाह धन एकत्र किया जा सकता है तथा उसका ठीक से सदुपयोग भी संभव है। आपके द्वारा आवश्यकता से अधिक रुपया बांटा जा रहा है। अभी-अभी आपने सांसदों की निधि बेहद बढ़ाई है। उसमें से 25 प्रतिशत प्राकृतिक आपदाओं के संकट को दूर करने के लिए प्राप्त करना सहज संभव है। देश के

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को आप जो वेतन दे रहे हैं, उसका 75 प्रतिशत धन सहज में ही इस कार्य के लिए काम में लाया जा सकता है। उसी प्रकार हर प्रदेश में विधायकों को भी पर्याप्त सरकारी धन प्राप्त होता है। उनमें से भी 25 प्रतिशत धन प्राप्त करना कठिन नहीं है। इस देश में महाराणा प्रताप जैसे नेता घास की रोटी खाकर समाज की शक्ति खड़ी कर सकते थे तो आज भी अपने समाज की शक्ति खड़ी करना कठिन नहीं है।

- सरकारी अफसरों की तनखाह में से 25 प्रतिशत आपदाओं से निपटने के लिए फंड एकत्रित करना कठिन नहीं है। अपने देश में पंचतारा होटलों में रहनेवालों की भीड़ कम नहीं है। उनके बिल पर भी 10 प्रतिशत चार्ज लगाना कठिन नहीं है। उसी प्रकार बड़े-बड़े व्यापारियों को इस फंड में रुपया देना खुशी की बात होगी। हमारे देश में कई लोग करोड़पति हैं। उनसे भी पर्याप्त धन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक लाख तनखाहा पानेवाले द्वितीय श्रेणी के कर्मचारी इस फंड में सहज एक चौथाई धन दे सकते हैं। विदेश में रहनेवाले लोग भी अपार धन दे सकते हैं। इस प्रकार समाज के द्वारा काम किया गया तो धन की कोई कमी नहीं रह सकती है। और समाज के द्वारा काम किया गया तो धन भी आधे से कम लगता है। आवश्यकता है समाज के द्वारा काम करने की। देश में सामाजिक काम करनेवाले लोगों की कमी नहीं है। हर जिला स्तर पर समाज का काम करने को अनेक लोग इच्छुक हैं। उन्हें कर्तृत्वान नेतृत्व की आवश्यकता है। यह शक्ति खड़ी की गई तो विषमता एवं गरीबी से निजात हंसते-हंसते मिल जाएगी। इसके लिए सर्वमान्य व्यक्ति के नेतृत्व में सामाजिक जीवन संगठन खड़ा करना सहज सुलभ है। यह संगठन हर जिले में अपनी शाखाएं खड़ी कर सकता है। इस संगठन के द्वारा हर जिले में निष्पक्ष, निरस्वार्थ और लगन से काम करनेवाले अवैतनिक लोग सहज में ही प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार के कामों में धन का आधे से कम का व्यय होगा।

59

23 जुलाई, 2008

सम्मानীয় डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलामजी,

आज दुनिया जिस नाजुक दौर से गुजर रही है और उसमें देश के सामने जो चुनौतियां खड़ी हुई हैं, उससे आप खूब परिचित हैं। अपनी अनूठी सभ्यता की ताकत पर आज अपना देश दुनिया को एक टिकाऊ व समतामूलक विकास का रास्ता दिखा सकता था, वह खुद विषम परिस्थितियों से जूझ रहा है। पूरा देश एक निराशा के अंधकार में डूबा हुआ है। हमारा संस्थागत ढांचा भ्रष्टाचार से ऊपर से नीचे तक इस कदर डूबा हुआ है कि हमें नुकसान पहुंचाने की मंसूबे रखनेवाली

59 देश की परिस्थितियों से चिंतित नानाजी ने पूर्व राष्ट्रपति का आह्वान किया कि वे ही देश की बागडोर संभालें, लेकिन लोकतांत्रिक ढांचे की सीमाओं में ही।

विराट् पुरुष

ताकतों का काम आसान हो गया है। इसका फायदा उठाकर वे देश में विघटन पैदा कर रही हैं। सांप्रदायिक आधार पर एक एकीकृत मोरचा खड़ा करने में असमर्थ हैं। हम एक अंधकारमय व अनिश्चतता भरे भविष्य की गर्त में फिसलते जा रहे हैं—बेबस और लाचार। जिन लोगों के हाथों हमने अपना भविष्य सौंप रखा है, वे देशवासियों के विश्वास पर खरे नहीं उतर रहे हैं। दिशाहीन से, वे बस चलते जा रहे हैं। आम जनता से उनका संपर्क टूट चुका है। जनता की भावनाओं, आकांक्षाओं व आवश्यकताओं से वे पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। देश व स्वप्रेरित ज्ञान तथा दूरदृष्टि से उनका दूर तक का वास्ता नहीं है। हताश होकर वे विदेशी लेखकों, विदेशी अर्थशास्त्रियों व विदेशी विचारकों का सहारा ले रहे हैं। उनके सुझाए गए नुस्खों को वे बिना ना-नुकुर के स्वीकार कर लेते हैं। इन लोगों ने देश को एक ऐसे रास्ते पर ला खड़ा किया है, जो हमारी संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था स्वावलंबन और स्वाभिमान के लिए बेहद घातक है।

सचमुच, इन लोगों ने देशवासियों की जरूरतों का आकलन करने तक का कष्ट नहीं उठाया है। संकीर्ण विचारों व अपने निहित स्वार्थों से ये लोग इस कदर त्रस्त हैं कि दलगत राजनीति से ऊपर उठकर देश के सामने मुंह फाड़े खड़ी चुनौतियों का सामना करने लायक भी नहीं रह गए हैं। अपने सभी तथाकथित नेता सिर्फ अपनी पार्टी, पंथ, संप्रदाय, जाति या वर्ग के नेता के रूप में जाने जाते हैं। कोई भी सिर्फ सच्चा भारतीय होने का दावा नहीं कर सकता।

ऐसे अंधकारमय वातावरण में आप एक प्रकाशपुंज की तरह दिखाई देते हैं। राष्ट्रपति के रूप में अपने पांच साल के कार्यकाल में अपने देश को एक नई सोच दी। आप सिर्फ अलंकार की वस्तु ही नहीं थे। आपने पूरी नई पीढ़ी को प्रेरणा दी। आप अपनी किताबों, भाषणों व वेबसाइट के जरिए उस तक पहुंचे, उससे संवाद बनाया। आपने उसके साथ अपना सपना बांटा—एक विराट् सपना, भारत को सर्वशक्तिशाली बनाने का सपना। आपने उसके सामने प्राथ्य व गणनीय लक्ष्य रखे। इस सबसे ऊपर, आपने उसके सामने अपने आचरण का उदाहरण पेश किया। सच पूछें, तो इस पूरे देश में मुझे आप अकेले भारतीय नजर आते हैं। आपने राजनीति से ऊपर उठकर देश का मान बढ़ाया। निस्स्वार्थ भाव की मिसाल पेश की। एक वैज्ञानिक और एक मनुष्य, दोनों के रूप में आपने सच्चाई का साथ दिया। आपने सत्य को बुलंद आवाज दी। आपने सच बोलने में कभी संकोच नहीं किया। मैंने स्वयं इसका अनुभव किया, जब तीन वर्ष पूर्व आप चित्रकूट पधारे थे। इन सब कारणों से आपके पास देश की जनता का नेतृत्व करने की अनूठी योग्यता है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि अगर आप देश का भविष्य सुधारने में आगे आते हैं तो देश की जनता एकमत से आपके पीछे आ खड़ी होगी।

मैं 92 वर्ष का हो चला हूं। मुझे दिखता नहीं है। मैं चल नहीं सकता, लेकिन मुझे चित्रकूट क्षेत्र में 500 गांवों को एक परिवार में पिरोने का संतोष है। आपने इसे स्वयं देखा है। मुझे इस महान् राष्ट्रीय यज्ञ में स्वयं आपके साथ आहुति देकर बेहद खुशी होती, लेकिन मैं इस महायज्ञ के लिए आपका आह्वान करने का संतोष तो अनुभव करना ही चाहता हूं। कृपया इस देश को एक परिवार के रूप में पिरोएं और परिवार का मुखिया बन उसे गतिशील व सार्थक नेतृत्व प्रदान करें।

□

रिपोर्टर नानाजी



बहुमुखी प्रतिभा के धनी नानाजी ने पाञ्चजन्य के प्रारंभिक दिनों में उसके संवाददाता के रूप में भी रिपोर्टिंग की। रेल प्रदर्शनी से लेकर तत्कालीन समस्याओं पर टिप्पणी सहित रिपोर्टिंग उनकी गहरी समझ की बानगी प्रस्तुत करती है। _____



प्रदर्शनी में समग्रता का अभाव

सभ्यता के परिवर्तन में रेल का बहुत बड़ा स्थान रहा है। सर्वप्रथम उसी ने मनुष्य को मनुष्य के समीप ला दिया, मीलों को गज, फुट और इंचों में बदल दिया। आज भी यदि हम पुरायुग के मनुष्य होते तो निश्चय ही रेलों को पूजने लग जाते।

भारत में सबसे पहली रेल 16 अप्रैल, 1953 की सायंकाल बंबई से थाणे तक चली थी। बीस मील का सफर इसने एक घंटे से कम में ही तय कर लिया था। उस समय भले ही लोगों ने इस घटना पर ध्यान न दिया हो, आज सौ साल बीतने के बाद जब हम समस्त बीते हुए युग की प्रगति पर दृष्टि डालते हैं तो तत्काल उसकी महत्ता समझ में आ जाती है। अतः इस शतवर्षीय प्रगति का सिंहावलोकन करने के लिए भारत सरकार के रेल विभाग द्वारा दिल्ली में नियोजित प्रदर्शनी अत्यंत उपयुक्त और सराहनीय कार्य है।

भारत सरकार द्वारा प्रचारित पुस्तिका में कहा गया है, “इस प्रदर्शनी का मुख्य उद्देश्य भारतीय रेलों की शतवर्षीय प्रगति तथा सेवाओं का दिग्दर्शन कराना है,” परंतु साधारण दर्शक को सहसा यही लगता है कि इसी उद्देश्य पर असामान्य रूप से कम ध्यान दिया गया है। रेल विभाग की प्रदर्शनी में भी एक बड़ी गलती यह की गई है कि शतवर्षीय प्रगति की दृष्टि से विभागों की योजना करने के बजाय उनका विभाजन रेलवे के छह विभागों (उत्तरी रेलवे, दक्षिणी रेलवे आदि) में कर दिया गया है। चाहिए यह था कि क्रमिक विकास का चित्रण किया जाता और उत्तरी, दक्षिणी रेल विभागों को उसी वर्ष में दिखाया जाता, जब उनका निर्माण किया गया। यह काम सिर्फ एक नक्शे से चलाने की चेष्टा की गई है। यदि उस भांति चलते हुए दिखाते तो बहुत अच्छा होता। जिस ढंग से उसका मॉडल मात्र रखकर संतोष कर लिया गया है, वह बहुत अपूर्ण और अनुपयुक्त है।

कुछ विभागों ने अपना प्रदर्शन करने में बहुत कुशलता से काम लिया है और समझाने के लिए भी अच्छे लोग नियुक्त किए हैं, परंतु कुछ विभागों ने जैसे बोझ की तरह काम को टाला प्रतीत होता है। दक्षिणी रेलवे का प्रदर्शन इस दृष्टि से सबसे गिरा हुआ है, जबकि अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी में वही सर्वश्रेष्ठ था।

समझाने के लिए नियुक्त अनेक व्यक्ति राष्ट्रभाषा हिंदी ही नहीं जानते, इसलिए जनसाधारण

को बातचीत करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। वे थोड़ा-बहुत देख-देखकर ही अपनी राह लेते हैं।

चित्तरंजन लोकोमोटिव के स्टॉल पर मैंने पूछा कि इस फैक्टरी का नाम 'चित्तरंजन' क्यों रखा गया। मुझे बताया गया कि यह एक बड़े महापुरुष थे। इस पर मैंने प्रश्न किया कि "उस महापुरुष का चित्र बनाना चाहता हूँ, जिसके नाम पर यह महान् कार्य खड़ा किया जा रहा है।" अब तो मैं बहुत परेशान हुआ, क्योंकि समस्त क्षेत्र में देशबंधु चित्तरंजनदास की मूर्ति या फोटो कहीं भी नहीं थी। बेमन से स्टॉल बनाए जाने का यह एक उदाहरण है। फिर भी कुछ चीजें बहुत अच्छी तरह दिखाई गई हैं, जैसे दिल्ली से बंबई और पूना के बीच चलती हुई गाड़ियां और कंचनजंगा स्टेशन आदि।

यह प्रदर्शनी प्रायः 30 एकड़ भूमि में लगी हुई है और शवल से तिकोनी है। पहले विभाग में पुनर्गठित रेलों के छह विभाग, चित्तरंजन कारखाना तथा डीलर बुकरस्टॉल है। दो विभागों में विदेशी निर्माताओं, विशेषकर रेलों से संबद्ध सामग्री के निर्माताओं के स्टॉल हैं। अन्य विभागों में भारतीय निर्माताओं के, बिस्कुटों से लेकर हवाई जहाज बनाने के स्टॉल हैं। भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों ने भी अलग-अलग अपने स्टॉल लगाए हैं। एक विभाग में योजना आयोग का विशालकाय स्टॉल है।

अन्य औद्योगिक प्रदर्शनी में हिंदुस्तान एयरक्राफ्ट, सिंधिया स्टीम नैवीगेशन, टेलीफोन, इंडस्ट्रीज, वन अनुसंधानशाला, साइकिल कंपनी, बर्मा शेल आदि दर्शनीय हैं। भारत में सर्वप्रथम जमालपुर और अजमेर में (छोटी लाइन) के इंजन बनाए गए। 55 वर्ष के अंतर्गत लगभग 750 इंजन बनाए गए, परंतु काम जारी नहीं रहा।

प्रथम विश्व युद्ध के अनुभव के बाद सरकार के प्रोत्साहन से पेनिनसुलर लोकोमोटिव कंपनी का गठन हुआ, परंतु तटकर बोर्ड द्वारा कोई संरक्षण न मिलने के कारण कंपनी को कारोबार बंद करना पड़ा। सरकार ने कारखाने को अपने हाथ में ले लिया और वहां पर रेलों के कैरेज और वैगन के आंतरिक ढांचे बनने लगे। परंतु एक रेलवे इंजन निर्माण उद्योग की मांग देश में जारी रही और इंपीरीज श्रीनिवासन समिति ने, जिसकी नियुक्ति 1936 में हुई थी, कचरापाड़ा में रेलवे इंजन निर्माण की सिफारिश की।

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण कुछ भी नहीं किया जा सका। 1945 में पुनः इस ओर ध्यान दिया गया और जमशेदपुर स्थित सरकारी रेलवे कारखाना-पुराना पेनिनसुलर लोकोमोटिव कंपनी का कारखाना टाटा लोकोमोटिव ऐंड इंजीनियरिंग कंपनी को 16 वर्ष के एक समझौते के अंतर्गत दिया गया। कचरापाड़ा में भी एक अलग सरकारी कारखाने की स्थापना का निर्णय हुआ। बाद में एक अधिक महत्वाकांक्षी योजना बनाई गई। इस उपनगर और कारखाने का निर्माण 3 वर्षों से कम समय में हुआ और देशबंधु चित्तरंजनदास के नाम पर इसका नामकरण हुआ। कारखाने का उद्घाटन देशबंधु की विधवा पत्नी श्रीमती वासंती देवी के द्वारा 1950 के जनतंत्र दिवस पर हुआ।

यह उल्लेखनीय है कि 100 वी.जी. रेलवे इंजन के लिए लगभग 7,400 टन इस्पात सेक्शन

विराट् पुरुष

1,600 टन इस्पात कास्टिंग की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही 500 टन बायलर ट्यूब्स और 150 टन विविध सामान, जैसे रबड़, काठ आदि भी लगते हैं। प्रति वर्ष 120 रेलवे इंजिन और 50 फालतू बायलर निर्मित करने की योजना है। एक रेलवे इंजिन बनाने के लिए आवश्यक सामानों में अधिकांश देश में प्राप्त हो जाते हैं। परंतु अभी 30 प्रति सैकड़ा तक हिस्सों का बाहर से आयात करना पड़ता है।

भारतीय रेलों के लिए, इंजिनों के डिजाइन का स्तर निर्धारित किया गया है और चित्तरंजन में इसी डिजाइन के अनुसार निर्माण कार्य आरंभ हुआ और जारी है। डब्ल्यू.जी. लोकोमोटिव बड़ी लाइन का सबसे भारी मालगाड़ी का इंजन है। डिजाइन का काम रेलों के केंद्रीय स्टैंडर्ड ऑफिस में, जो चित्तरंजन में ही स्थित है, होता है। किसी उद्योग को अपने पैरों पर खड़े होने के लिए आरंभिक अवस्था में सरकारी संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है। वर्तमान समय में भारतीय लौह और इस्पात, मोटरकार उद्योग, साइकिल उद्योग तथा अन्य कई उद्योगों को संरक्षण प्राप्त है।



कुटीर उद्योग प्रादेशिक संगठन जरूरी

उत्तर प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर पुरातन काल से कई कुटीर उद्योग चल रहे हैं। उनका व्यापार देश में ही नहीं, विश्व भर में फैला हुआ है। इस समय सरकार की अंतरराज्यीय कर-नीति के कारण इन उद्योगों की स्थिति खराब होती जा रही है। इन उद्योगों में अधिकतर अशिक्षित लोग होने के कारण इन्हें बहुत सी कानूनी परेशानियां उठानी पड़ रही हैं। इनकी इन बातों में सहायक होने पर यह अनुभव हुआ कि इन सभी उद्योगों का प्रादेशिक संगठन आवश्यक है। कारण, इन विभिन्न कुटीर उद्योगों की कई समस्याएं एक सी हैं। अतएव उत्तर 'प्रदेश कुटीर उद्योग संघ' के नाम से एक संगठन खड़ा करने का निर्णय प्रादेशिक कार्य समिति ने किया। मुरादाबाद में जहां का पुरातन कुटीर उद्योग पूर्णतः अपने प्रभाव में है, उसको इसका केंद्र स्थान बनाने का निश्चय हुआ। इसका प्रथम सम्मेलन 7 मई को होगा। इसमें प्रदेश के विभिन्न स्थानों के विभिन्न कुटीर उद्योगों के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे।

भारतीय किसान संघ

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में पिछले 6 साल से किसानों में भारतीय किसान संघ के आने से कार्य प्रारंभ हुआ है, जिसका केंद्र गोरखपुर है और इसके संयोजक श्री हरिशचंद्र श्रीवास्तव हैं। जिन मंडलों में इस कार्य के लिए योग्य कार्यकर्ता मिले हैं, उन मंडलों में ही कार्य प्रारंभ किया जा सका है। इस प्रकार अभी तक 5 मंडलों में कार्य चल रहा है, जिसकी कुल सदस्य संख्या लगभग 400 है, अभी सदस्यता या समितियों के गठन पर विशेष जोर न देते हुए किसानों की समस्याओं को सुलझाने की ओर ही विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देवरिया जिले के खंडु मंडल में नारायण नदी के कछार के 200 किसानों की कई सौ एकड़ भूमि, जो वर्षों से उन्हीं के द्वारा जोती और बोई जा रही थी, परंतु कागज में लेखपाल और ग्राम-सभा पति की धांधली से किसानों के नाम लिखी नहीं गई। इस समस्या के लिए इस क्षेत्र में किसान संघ कार्य कर रहा है। गोरखपुर जिले के डाटा मंडल की कई सौ एकड़ भूमि जो पहले चरागाह थी और जिसे जमींदारों ने जबरदस्ती जोत डाला था, उसे पुनः चरागाह के रूप में कराया गया है। बस्ती जिले की बांसी तहसील में

विराट् पुरुष

हजारों ऐसे किसान हैं, जिनकी भूमि सरकार की कई नई योजनाओं में लगाई गई है, परंतु किसानों को उसका मुआवजा अभी तक नहीं मिला है। इसके लिए किसान संघ के कार्यकर्ता उनके प्रार्थना पत्र एकत्रित कर रहे हैं। दो बार किसानों द्वारा अधिकारियों के सम्मुख बांसी में प्रदर्शन भी हुआ है। बाढ़ पीड़ित क्षेत्र के किसानों द्वारा अब तक कई प्रदर्शन किए गए हैं, जिसके कारण उनकी तकाबी और लगान माफ हुई है। गोंडा जिले के 40 किसानों का एक प्रतिनिधिमंडल संगठन मंत्री श्री प्रताप नारायण तिवारी के नेतृत्व में प्रादेशिक सरकार से मिला। अंत में लगान में 2700 रुपए की छूट प्राप्त हुई।

अभी तक की प्रगति को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि किसान भारतीय किसान संघ की ओर आसानी से खिंच रहा है। किसानों में ही गन्ना उत्पन्न करनेवाले किसानों का एक मोर्चा 'गन्ना उत्पादक संघ' के नाम से गत 2 मास से बस्ती में प्रारंभ किया गया है। इसका केंद्रीय कार्यालय बस्ती में ही है। अभी तक कुल 350 सदस्य बने हैं। इस वर्ष सीजन की समाप्ति पर कार्य प्रारंभ हुआ है। इस कारण गन्ना विकास संघ तथा मिल से संबंधित किसानों की समस्याओं को सुलझाने का कार्य नहीं किया जा रहा है। इस समय सदस्य बनाने का कार्य चल रहा है। दिनांक 24 अप्रैल को बस्ती में ही गन्ना उत्पादक किसानों का एक सम्मेलन भी होने जा रहा है।

गोहत्या पर हृदय परिवर्तन

उत्तर प्रदेश में गो-हत्या बंदी के लिए जनता अत्यंत उत्सुक थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने गो-हत्या बंद के लिए हस्ताक्षर संग्रह करने का निर्णय किया था। उस समय भारतीय जनसंघ ने कार्य पूरी शक्ति लगाकर सहयोग देने का आश्वासन दिया। यह राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न है, अतः हमने अन्य दलों से भी इसमें सम्मिलित होने की अपील की थी। हस्ताक्षर संग्रह आंदोलन के समय ही जनता की जगह-जगह यह मांग थी कि इसके लिए कुछ और कड़ा कदम उठाया जाए। यह सरकार हस्ताक्षरों से नहीं मानेगी। हुआ भी यही। सरकार ने करोड़ों हस्ताक्षरों की परवाह नहीं की, परंतु गो-हत्या बंदी कानून बने बिना चुप रहना उचित नहीं था। अतः हम लोगों ने पू. प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी तथा श्री ला. हरदेव सहायजी से, जो गो-हत्या निरोध समिति के प्रधान तथा मंत्री हैं, से प्रार्थना की कि वे हमारे प्रदेश में गो-हत्या-निरोध आंदोलन का नेतृत्व करें। वे भी हमारे प्रदेश से ही यह आंदोलन प्रारंभ करना चाहते थे। गोपाल भूमि मथुरा में यह आंदोलन पू. ब्रह्ममचारीजी के नेतृत्व में प्रारंभ करना तय हुआ। जन्माष्टमी के अवसर पर यहां मथुरा में आंदोलन करने की घोषणा हुई। उस जिले में व्यापक रूप से अर्थात् 170 स्थानों पर हमने सत्याग्रहियों की भांति के केंद्र बनाए। इसमें जनता ने उत्साह से सहयोग देना प्रारंभ किया।

इस वातावरण को देखकर कसाइयों का भी हृदय परिवर्तित हुआ। उन्होंने कसाईखानों पर ताले लगा दिए और गो-हत्या बंदी के हमारे इस आंदोलन में सहयोग दिया। वहां का सत्याग्रह सफल हुआ। हम जो चाहते थे कि कसाई ही, जिनकी आड़ में सरकार गो-हत्या कानून बंद करना नहीं चाहती, सरकार का पर्दाफाश करें।

इसके उपरांत फिर भी उत्तर प्रदेश सरकार से अनुनय-विनय की गई, परंतु सरकार ने हमारी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। अतः पू. ब्रह्मचारीजी की ओर से घोषणा की गई कि दिनांक 27 सितंबर, 1954 से लखनऊ में विधानसभा के सम्मुख गोहत्या-निरोध समिति की ओर से सत्याग्रह प्रारंभ हो जाएगा। हमने फिर से एक प्रयास करने का विचार किया एवं जनसंघ का एक प्रतिनिधि मंडल, जिसका नेतृत्व प्रादेशिक प्रधान श्री राजकुमार एडवोकेट ने किया था, तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. गोविंद वल्लभ पंत से मिला। उस समय यहां तक प्रार्थना की, “यदि सीताराम कमेटी कानूनन पूर्ण गोहत्या बंदी की सिफारिश करे तो क्या आपकी सरकार गोहत्या बंदी कानून बनाएगी।” परंतु उन्होंने इसका जवाब यह दिया कि हम इस संबंध में कुछ नहीं कह सकते और न कुछ कहना ही चाहते हैं। अतः सत्याग्रह में पूर्ण शक्ति से सहयोग दिए बिना अन्य रास्ता जनसंघ के पास नहीं रहा। जनसंघ ने घोषणा कर दी कि गोहत्या-निरोध समिति का सत्याग्रह सफल करने के लिए जनसंघ अपनी पूरी शक्ति लगा देगा। हमने इसे प्रदेश व्यापी बनाया। प्रदेश के विभिन्न स्थानों से सत्याग्रहियों की टोलियां लखनऊ की ओर रवाना होना प्रारंभ हुईं। महिलाओं ने भी पर्याप्त संख्या में भाग लिया। हमने इसमें 2613 सत्याग्रही जेल में भेजे, जिन्होंने सब प्रकार की यातनाएं सहनकर अपनी गो-भक्ति का परिचय दिया। सत्याग्रह का वेग दिनोदिन बढ़ते हुए तथा सरकार की जनता की ओर से भर्त्सना होते हुए देखकर उत्तर प्रदेश सरकार को विचार करना पड़ा। सभी कांग्रेसियों ने अपना भविष्य खतरे में देखकर, न कि गो भक्ति के कारण कानूनन गो-हत्या बंदी की घोषणा करने के लिए सरकार पर जोर डाला। श्री राज्यपाल ने 10 फरवरी, 1955 को कानूनन पूर्ण गोहत्या बंद करने का विधेयक प्रस्तुत किए जाने की घोषणा की।

खाद फैक्टरी हटाई गई

देहरादून नगर में एक खाद की फैक्टरी थी जो चारों ओर बहुत दुर्गंध फैलाती थी। उसको दूर हटाने के लिए जागृति की गई, सभाएं तथा जुलूस निकाले गए। जुलूस में जनसंघ समर्थकों के साथ साधारण जनता ने भी भारी संख्या में भाग लिया। बस्तियां पास में होने के कारण इस आंदोलन में वहां के लोगों ने भी बहुत कार्य किया। आंदोलन सफल हुआ। फैक्टरी अपने स्थान से हटा दी गई।

यात्री टैक्स-विरोधी आंदोलन

हरिद्वार के यात्रियों पर प्रवेश करते समय तथा बाहर जाते समय 4-4 आने कर वसूल किया जाता है। पास ही पास में तीन स्थान होने के कारण एक व्यक्ति पर 1 रुपया 3 आना प्रति यात्री टैक्स पड़ता है। इस कर के विरोध में जन-जागृति की जा रही है। बड़ी-बड़ी सभाएं की गईं तथा सत्याग्रह का भी विचार किया जा रहा है।

बिजली के तारों का मुकदमा

मुहर्रम के अवसर पर स्थानीय मुसलमानों ने सड़कों पर के बिजली के तारों को कटवाने का

विराट् पुरुष

प्रयास किया, ताकि उनके ऊंचे ताजिए आसानी से निकल सकें। परंतु जनसंघ की ओर से इसका इस आधार पर विरोध किया गया कि अभी तक अनेक वर्षों से कभी तार नहीं काटे गए तथा ताजिए आसानी से निकलते रहे। अतः सार्वजनिक धन की बरबादी तथा परेशानी (कई दिन तक बिजली के अभाव में) बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। न्यायालय में अभियोग लड़ा गया और उसमें विजय प्राप्त हुई। मुसलमानों की इस योजना में उत्तर प्रदेश के न्याय मंत्री श्री अली जहीर भी सम्मिलित थे।

खेतिहर मजदूरों की समस्या

जिले के अधिकांश ग्रामों में गरीब जनता भूतपूर्व तालुकेदारों के मकानों में निवास करती है। यद्यपि तालुकेदारों की जमींदारियां समाप्त हो गई हैं तथापि मकान से निकाल देने का भय दिखाकर ये तालुकेदार बेगार कराते रहे हैं तथा अत्याचार करते हैं। जो जिस मकान में रहता है, उसका उस पर अधिकार होना चाहिए, इस आशय का आंदोलन प्रारंभ करने के लिए योजना बनी है। शीघ्र ही यह आंदोलन प्रारंभ होगा।

पुलिस-अत्याचारों का विरोध

श्री गणपति शर्मा प्रधान जनसंघ को पुलिस ने विरोधी पार्टियों से मिलकर हत्या के झूठे षड्यंत्र में फांसने का प्रयत्न किया। झूठे गवाह तैयार किए गए। जनसंघ की ओर से इसके विरोध में 37 सभाएं की गईं। जनमत का इतना प्रभाव पड़ा कि पुलिस के सारे गवाह टूट गए। उनका जो मुख्य तथा विश्वस्त गवाह था, उसने कचहरी में साफ-साफ कह दिया कि पुलिस ने एक घंटे तक मारा-पीटा तथा जबरदस्ती झूठी गवाही के लिए तैयार किया। पुलिस कप्तान का तबादला हो गया है। जनसंघ की ओर से स्थानीय पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध उन्हें कठोर दंड देने का आंदोलन चल रहा है।

बेकारी-निवारण आंदोलन

आंदोलन की भूमिका के रूप में सारे प्रांत में बेकारी की गणना कराए जाने का आदेश दे दिया गया है, जिनमें फैजाबाद, बस्ती, आजमगढ़, मुरादाबाद तथा कानपुर में बेकारी की गणना का कार्य प्रारंभ होने की रिपोर्ट आई है। साथ ही ज्ञात हुआ है कि यह कार्यक्रम जनसंघ के लिए जन-संपर्क की दृष्टि से विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है।

□

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी भारतमाता की बलिवेदी को सुशोभित कर गए

चु नाव का काल था। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी प्रदेश के दौरे के लिए आए हुए थे। प्रदेश की राजधानी लखनऊ में उनका भव्य स्वागत हुआ। विश्वविद्यालय में अत्यंत उत्साही कार्यक्रम का सफल आयोजन किया गया। सायंकाल सहस्रावधि लोगों की जनसभा में डॉ. साहब का ओजस्वी भाषण हुआ। रात्रि को छोटी सी कार अपने प्रिय नेता को लेकर गोंडा चल पड़ी। मैं भी डॉ. साहब के साथ था। मार्ग में डॉ. साहब के हास्य-विनोदपूर्ण व्यवहार के कारण साथ में यात्रा करनेवाले कार्यकर्ताओं का समय अत्यंत आनंदपूर्वक व्यतीत हो रहा था। विशेष रूप से ऊँघते हुए कर्नल भादुड़ी के साथ जो हंसी-मजाक चली, वह हमारे मानस-पटल पर सदैव अपने स्मृति-चिह्न बनाए रखेगी। ठीक रात्रि के 12 बजे कार गोंडा पहुंची। विश्राम किया। सुबह कार्यक्रम हुआ। फिर बस्ती के लिए प्रस्थान किया। बस्ती में भी कार्यक्रम था। कार्यक्रम और विश्राम के पश्चात् हम लोग गोरखपुर को चल पड़े।

मार्ग में कहीं कार्यक्रम निश्चित नहीं किया गया था। किंतु जैसे ही कार सहजनबा के समीप पहुंची, हजारों की संख्या में एकत्र जनता ने 'डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी की जय हो', 'जनसंघ अमर है' के नारे लगाने प्रारंभ कर दिए। कार रोक ली गई। डॉ. साहब कार से उतरे। उपस्थित जनसमूह में अधिकांश अर्धनग्न थे। नवंबर-दिसंबर के शीत की चिंता न कर ये लोग अपने प्राणप्रिय नेता के दर्शन करने के लिए एकत्र हुए थे। उनमें से एक वृद्ध ने इधर-उधर बिखरे फूलों की बनी हुई माला डॉ. मुखर्जी के गले में डाली और गद्गद होकर पूछा, 'बाबू हमारा दुःख कैसन दूर होइन?'

डॉ. मुखर्जी का हृदय भर आया। उनकी आंखों में आंसू भर आए। मुश्किल से समीप में खड़े व्यक्ति का सहारा लेकर पास में पड़ी चौकी पर चढ़कर उन्होंने अवरुद्ध कंठ से उत्तर दिया, 'निर्धन, अर्धनग्न लोगों की समस्या सुलझाने के लिए ही जनसंघ काम कर रहा है। नेहरूजी शहरों को सुधारने में लगे हुए हैं। जनसंघ गांवों की समस्या सुलझाएगी।' स्वयं को ऐसे महापुरुष के संपर्क में पाकर प्रत्येक घन्य अनुभव कर रहा था। बाहर के लोगों को समझना कठिन था, नेता कौन...अनुयायी कौन?

इसी प्रकार हंसते खेलते समय कट गया। फिर वही कार की यात्रा। पौने दो बजे रात्रि को

विराट् पुरुष

कार मऊ पहुंची। सभा हुई। भोजन का प्रबंध होने लगा। काफी देर होते देख मैंने प्रबंधक को शीघ्रता करने के लिए कुछ कहना प्रारंभ ही किया कि डॉ. साहब बोल उठे, “काहे को डांटता है? हर रोज थोड़े ही आता है।” दो बजे भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर शयन के लिए गए। प्रातः फिर सामान्य रूप से उठकर कार्यक्रम प्रारंभ हो गए। अथक परिश्रम करने की उनकी कितनी क्षमता थी।

आजमगढ़ में डॉ. साहब का कार्यक्रम पब्लिक कॉलेज में हुआ। लोगों का विश्वास था कि मुखर्जी राजनैतिक नेता हैं तथा चुनाव का काल है, ऐसे समय में उनका भाषण राजनैतिक ही हो सकता है। किंतु लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जबकि उन्होंने देखा कि संपूर्ण भाषण में डॉ. साहब ने एक भी शब्द राजनीति एवं चुनाव के संबंध में उच्चारित नहीं किया। उन्होंने केवल राष्ट्रीय चरित्र, छात्रों के चरित्र-निर्माण तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान में छात्रों का कर्तव्य आदि विषयों को ही स्पष्ट किया। अध्यापकों, उपस्थित विद्यार्थियों तथा जनता के मुख से एक ही बात सुनाई देती थी, जैसे जनतंत्रवादी संगठन के नेता के लिए वही शोभाकारी है “इस सबके साथ है। हम हमेशा कोठी में रहते हैं। क्या यहां आकर भी हम कोठी में रहना पसंद करेंगे? हम सबके साथ ही रहेंगे।”

सहृदयता की मूर्ति

कानपुर का स्टेशन खचाखच भरा हुआ था। डॉ. मुखर्जी के स्वागत के लिए अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। ‘भारत माता की जय’, ‘डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की जय’ के जयघोषों से स्टेशन गूंज रहा था। ट्रेन की ओर सबकी आंखें लगी हुई थीं। गाड़ी आई, लोग आतुर होकर झधर-उधर दौड़ने लगे। फर्स्ट एवं सेकंड क्लास के डिब्बे झांके जाने लगे। किंतु मुखर्जी कहीं नहीं। लोगों को निराशा होने लगी, वे बोल उठे ‘क्या मुखर्जी नहीं आए?’ किंतु इसी समय सबसे पीछे के डिब्बे से मुखर्जी ने अपना सिर बाहर निकाला। सब लोग साश्चर्य उस ओर दौड़े। कुछ कार्यकर्ताओं ने मुखर्जी से पूछ ही लिया “डॉ. साहब, हम तो समझते थे आप फर्स्टक्लास में आएंगे किंतु आप तो थर्ड क्लास में……”

बात पूरी होने के पूर्व ही डॉ. मुखर्जी ने उत्तर प्रस्तुत कर दिया, “मैं जनसंघ के अधिवेशन में आया हूं। हमारे साथ 40 प्रतिनिधि और हैं। इनका साथ छोड़कर फर्स्ट क्लास में कैसे बैठता?”

सब लोग अपने नेता के मुख से सच्ची सभ्यता की बात सुनकर मंत्रमुग्ध हो गए। उनके मूक अंतःकरण अपने महान् नेता के चरणों में शत-शत श्रद्धांजलि अर्पित कर उठे। करते भी क्यों न, सहृदयता एवं करुणा की साकार मूर्ति सम्मुख उपस्थिति थी।

प्रतिनिधि सभा की बैठक चल रही थी। प्रतिनिधि प्रस्तावों पर अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे। सभी कुछ-न-कुछ कहना चाहते थे। समय काफी होता चला जा रहा था। भोजन तैयार था। मैंने भोजन की पूर्ण तैयारी से सूचित किया, किंतु प्रतिनिधियों का विचार-प्रवाह बढ़ता ही चला जा रहा था। वे रुकना ही नहीं चाहते थे। महामंत्री महोदय ने बीच में ही वार्ता रोकना चाही।

परंतु मुखर्जी तुरंत बोल उठे “हम सबका विचार सुनेगा। सब को अपनी-अपनी बात कहने दो। आखिर मैं हम अपना विचार रखेंगे।”

फिर किसी का साहस नहीं हुआ कि वार्तालाप को रोकता। भोजन टंडा होता रहा किंतु खाने की अपेक्षा मुखर्जी ने अपने सहयोगियों के विचार सुनना अधिक महत्वपूर्ण समझा। सब लोगों के विचार सुनने के पश्चात् ही वे भोजन करने के लिए उठे। अपने सहयोगियों की बातों को समझने एवं सुनने की मुखर्जी कितनी आवश्यकता समझते थे, यह इस घटना से स्पष्ट है। इस प्रकार के तो अनेक उदाहरण उनके संपर्क में आकर देखने को प्राप्त हुए, जिनसे यह समझना कठिन नहीं कि वे अपने विचार किसी पर लादने की उपेक्षा दूसरों के विचार समझकर अपने विचारों से सहमत करने की कोशिश करते थे।

जम्मू-सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। मुखर्जी को नजरबंद किया गया। किंतु उनकी ओर से सर्वोच्च न्यायालय में ‘हैबियस कॉर्पस’ दायर कर दी गई। मुखर्जी को उनके साथियों को जेल में कोर्ट तक लाया जाता था। एक दिन जब सब को लाया जा रहा था तो उनके (मुखर्जी के) तो हथकड़ी नहीं डाली गई किंतु अन्य साथियों के हथकड़ी डाली जाने लगी। इस पर वे रुष्ट हो उठे, “हमारा हथकड़ी नहीं फिर इनका हथकड़ी क्यों? इनका क्या पाप है?”

हैबियस कॉर्पस के कारण मुक्त होने पर भी मुखर्जी को बाहर रहना एक क्षण भी भाया नहीं। वे सदैव कहते, “हमारा साथी जेल में है, फिर हम बाहर कैसे रह सकते हैं? अब हमको मत रोको, अब हम बाहर रहना नहीं चाहते।” काफी दिन तक हम उनको किसी प्रकार रोके नहीं, लेकिन फिर एक दिन वे बोल उठे “अब हम किसी तरह रुक नहीं सकता। अब हम कश्मीर जाएगा। बिना परमिट लिए कश्मीर के बार्डर में घुसेगा। क्योंकि आंदोलन को दूसरा रूप देने का जरूरत है। मगर दीनदयाल को मत पकड़ने देना। वह बहुत अच्छी तरह आंदोलन चला रहा है। हमको विश्वास है, वह आंदोलन सफल बनाएगा। अब हमको कश्मीर जाना ही है।”

उसके पश्चात् क्या हुआ, यह हम जानते ही हैं। किस प्रकार वे परमिट बिना प्राप्त किए कश्मीर में घुसे और अपने जीवन की अंतिम आहुति चढ़ाकर भारत माता की बलिवेदी को सुशोभित कर गए। यह किसी के लिए रहस्य नहीं रहा है। 23 जून को उनका बलिदान दिवस है, इस निमित्त मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अपने आदर्श नेता के चरणों में अर्पित करता हुआ लेखनी को विश्राम प्रदान करता हूँ।

□

बाढ़ का समाधान उचित प्रबंधन से ही होगा

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले हमेशा ही बाढ़ से पीड़ित रहे हैं। गत वर्ष तो इन जिलों का अत्यधिक नुकसान हुआ। गांव के गांव बह गए। हजारों लोग बे-घरबार हुए। जंगलों का सहारा लेकर बेचारे जान बचा पाए। फसल से लहलहाती हुई सैकड़ों एकड़ भूमि नष्ट हो गई। पहले से इस आनेवाले संकट का सामना करने की सरकार ने कोई योजना नहीं बनाई थी। बाढ़ आने पर कतिपय महानुभावों तथा सरकार ने धन से सहायता की, परंतु उसका पूर्ण लाभ लोगों को प्राप्त नहीं हो सका। बाढ़ से घिरे पेड़ों पर जान बचाने के लिए बैठे लोगों को सुरक्षित स्थानों पर लाने के लिए नावों का अभाव था। जिस समय जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने इधर-उधर से नावें मांगकर काम करना प्रारंभ किया, ऐसे 2 लोग मिले, जो उस समय नौ-नौ दिन पेड़ पर सहायता की अपेक्षा में भूखे तड़प रहे थे। इसके विशेष उदाहरण देवरिया जिले के भगड़ वांज्योत और विंध्याचलपुर ग्राम निवासी हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर उक्त क्षेत्र को बाढ़ से बचाने के लिए सम्यक् व्यवस्था के संबंध में सुविस्तृत सुझाव मैंने तत्कालीन मुख्यमंत्री मान्यवर श्री गोविंद वल्लभ पंतजी की सेवा में प्रस्तुत किए थे। उन्होंने उन पर पूर्ण ध्यान देने का आश्वासन भी दिया था। इस वर्ष वर्षा के प्रारंभिक दिनों में ही सरकार ने क्या प्रबंध किया है, यह देखने के लिए मैंने स्थानीय जन प्रतिनिधियों को साथ में लेकर उक्त क्षेत्रों का भ्रमण किया। सरकार द्वारा चलाई गई योजनाएं देखीं। ग्राम-ग्राम में जाकर वहां के निवासियों से मिला, उनसे वार्ता की और सब परिस्थिति देखकर जिस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, उसे विस्तृत रूप से लिपिबद्ध कर रहा हूं, जिससे सरकार उस ओर ध्यान देकर अविलंब आवश्यक कार्रवाई कर सके।

बांध की आवश्यकता

इस क्षेत्र के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता बांध बांधने की है। बिहार और उत्तर प्रदेश की सीमा पर उत्तर-दक्षिण में नारायणी नदी (बड़ी गंडक) बहती है। बाढ़ का सबसे बड़ा संकट इसी के कारण पैदा होता है। जब-जब नदी बाढ़ से उन्मत्त होकर बहने लगती है तो गोरखपुर तथा देवरिया

जिले के उत्तरी भाग में हाहाकार मच जाता है। इसका पानी कई स्रोतों के रूप में उलटकर इस भाग को जलमग्न कर देता है। यह संकट बांध बांधकर ही टाला जा सकता है। सरकार ने इस वर्ष यहां बांध बांधना प्रारंभ किया है। अतः सर्वप्रथम मैंने इसी का निरीक्षण किया। यह बांध आज इस अवस्था में नहीं कि वह पूर्ण हो सके।

यदि सरकार को इसकी पहले ही कल्पना थी तो इस बांध का निर्माण बिलकुल अन्य ढंग से होना चाहिए था। मैंने गत वर्ष ही सुझाव दिया था कि बांध गोरखपुर जिले में स्थित डोमाखंड या कनलई जंगल से आरंभ कर देवरिया जिले में स्थित बुलहवा की ओर मदनपुर मेडीहारी भैंसहा, होता हुआ जानना चाहिए। कारण, बाढ़ का जल-प्रवाह इसी दिशा में (उत्तर-दक्षिण) गतिमान रहता है। परंतु सरकार द्वारा एकदम इसके विपरीत बांध का काम प्रारंभ किया गया है तथा बीच में कई जगहों पर खंडित एवं अधूरी स्थिति में बांध इस समय केवल भैंसहा तक पहुंच पाया है। यह बांध इन दिनों इससे आगे बढ़ नहीं सकता। इस कारण वहां की जनता में सुरक्षा भाव के स्थान पर यह आशंका उत्पन्न हो रही है कि गत वर्ष से अधिक संकट आएगा। यह भय ठीक भी है। क्योंकि निम्नलिखित परिस्थिति से वह स्पष्ट हो जाता है। सुविधापूर्वक स्थिति समझी जा सके, इसलिए आवश्यक जानकारी से युक्त उक्त क्षेत्र का मानचित्र प्रस्तुत कर रहा हूं।

अधूरे बांध का दुष्परिणाम

बाढ़ के दिनों में नारायणी के जल का एक बहुत बड़ा स्रोत मदनपुर, भेंडीहारी तथा भैंसहा के उत्तर में बहता हुआ नारायणी और स्वयं के बीच स्थिति अनेक गांवों को जलमग्न कर देता है। साथ ही बाढ़ के दिनों में उसने गत वर्ष मदनपुर के पास दक्षिण की ओर राह बनाकर एक अति प्रबल जल-प्रवाह निर्माण किया, जिस कारण मदनपुर, सिखाई दधीचि, मेडीहारी, भैंसहा, अनेक ग्राम नष्ट-भ्रष्ट हो गए। वहां के सैकड़ों गरीब लोग अब भी अपने घरों को आबाद नहीं कर सके हैं तथा बुडवा, गहनई, जंगलों में वनवासी जीवन बिता रहे हैं।

इस जल-प्रवाह ने सहस्रों एकड़ फसल नष्ट की। यह इस वर्ष अधिक भयंकर रूप धारण कर व्यापक क्षेत्र में नुकसान पहुंचाएगा। नवनिर्मित बांध उसकी कोई रोक नहीं कर सकता। अपितु यह जल-बांध और रेलवे लाइन के बीच में फैल जाएगा। बांध से सुरक्षित समझे जानेवाले स्थानों का भी बचना संभव नहीं होगा। इस कारण बांध के दोनों ओर पानी फैल जाएगा।

भूल के परिमार्जन का उपाय

इस समय इस भयंकर भूल का परिमार्जन करने का एक उपाय शेष है। मदनपुर के उत्तर में जहां बाढ़ के दिनों में दक्षिण के पानी में फैलकर रास्ता बना लिया है, उस रास्ते को रोकना। इस स्थान पर लगभग सौ गज लंबा बांध मूल बांध के 3 भाग के रूप में ही अविलंब तैयार करना चाहिए। यदि बांध डोमाखंड या कुलनई जंगल से प्रारंभ कर बुलहवा की ओर बढ़ाया होता तो यह संकट तथा अन्य जो परेशानियां बाढ़ के दिनों में निर्माण होनेवाली हैं, नहीं होतीं।

विराट पुरुष

बांध-निर्माण के साथ ही बाढ़ के समय जो अन्य संकट उपस्थित हुए, उनकी ओर भी मैं सरकार का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

बाढ़ से पूर्व व्यवस्था हो

बांध के उत्तर में कई ग्राम तथा सहस्रों एकड़ उपजाऊ भूमि स्थित है। यह बाढ़ के कराल गाल का निश्चित भक्ष्य बनेगी। अतः इन गांवों में बसनेवाले साधारणतः 10,000 ग्रामीणों को बांध के दक्षिण में बाढ़ के पूर्व ही निश्चित स्थान देकर बसाने की आवश्यकता है। नदी का पानी नित्य बढ़ रहा है। मैंने 27 जून की रात्रि में नारायणी के किनारे बसनेवाले माघी ग्राम में रह कर देखा है। लोग भयभीत हैं और बह जाने की चिंता में रात को सो भी नहीं पाते। अन्य आवश्यक बात यह है कि इस बांध के उत्तर में सुवरी नाला, धुचिहवा नाला तथा नारायणी का दूसरा बड़ा स्रोत बहता है। इस जल को गढ़िहवा के उत्तर में बांध द्वारा रोका गया है। नारायणी के पानी के बढ़ने के साथ यह जल भी बढ़ रहा है। परंतु निकल जाने के लिए कोई रास्ता न होने से बाढ़ के विशाल स्वरूप लेने के पूर्व ही यह जल बांध के उत्तरी क्षेत्र में स्थित हजारों एकड़ भूमि तथा उसमें उगी अच्छी फसल के लिए संकट उपस्थित कर रहा है। बांध के उत्तर में प्रारंभ से आखिर तक गड्ढे बने हुए हैं। उन गड्ढों को जोड़कर उनका दक्षिण की ओर बहाव कर देने से यह जल बहकर नारायणी में बुलहवा के पास मिल जाएगा और काफी मात्रा में बांध के उत्तर की फसल बच जाएगी।

जनसंघ का सुझाव

बांध के लिए आवश्यक सामान पहुंचाने के हेतु खड्डा से भगवानपुर तक जो रेल लाइन बिछाई गई है, उसके कारण इस लाइन के पश्चिम के पानी का बहाव रुक गया था। उस क्षेत्र के जनसंघ के कार्यकर्ता श्री रामप्रकाशजी पांडे ने जनता की मांग को वहां के अधिकारियों के सम्मुख रखा और आवश्यकताओं से उन्हें परिचित कराया। परिणामतः बगही के पास लाइन के नीचे से पानी निकल जाने के लिए रास्ता बनाया गया। परंतु दो स्थानों पर जल के प्रवाह ने स्वयं रास्ता बना लिया है। परंतु यदि वहां पक्की पुलिया बनाकर पानी बह जाने की उचित व्यवस्था न की गई तो लाइन को तो क्षति पहुंचेगी ही, खेती को भी बहुत नुकसान होगा।

इन बातों के अतिरिक्त बाढ़ आने के पूर्व निम्नलिखित व्यवस्था करना नितांत आवश्यक है।

आश्रय-गृहों का निर्माण

बाढ़ के दिनों में जो ग्राम निश्चित रूप में बाढ़ग्रस्त होंगे, वहां के निवासियों के अस्थायी आश्रय के लिए ऊंची जगहों पर आश्रयगृह निर्माण करने की आवश्यकता है। यहां टिन-शेड का प्रबंध करने से काम चल सकता है। कहीं-कहीं तो लोग स्वयं टीन के दाम देने को तैयार हैं। जैसे लक्ष्मीपुर के निवासी 500 टीन खरीदने को तैयार हैं। इस क्षेत्र के लोगों के लिए लक्ष्मीपुर टांड में पनाह-घर बन सकता है। यह क्षेत्र 2500 लोगों के लिए बहुत अच्छा सहारा रहेगा। सरकार

उन्हें केवल लकड़ी, बढई की मजदूरी और स्थान दिला दे। अन्य स्थानों पर सरकार को शायद टीम भी देनी पड़ेगी।

इस क्षेत्र में सरकार को सात स्थानों पर आश्रयगृह बनाने चाहिए। मानचित्र में इन स्थानों के लिए त्रिकोणात्मक चित्र बनाए गए हैं। 10 मदनपुर फार्म, 20 भैंसहा, 3 लक्ष्मीपुर टांड, 4 नौतार जंगल, 5 सिसवा गोपाल, 6 खड्डा, और 7 छितौनी। ये आश्रयगृह 20 जुलाई के पूर्व तैयार हो जाने अति आवश्यक हैं।

नावों का प्रबंध

गत वर्ष का अनुभव है कि बाढ़ में फंसे लोगों को बचाकर ऊंची जगह पहुंचाने के लिए उनके ग्रामों में नाव नहीं थी, अतः बाढ़ में फंसनेवाले गांवों में नाव का प्रबंध होना आवश्यक है। मैंने कई गांवों में देखा, वहां नावों का एकदम अभाव है। बुढ़वा ग्राम के लोगों को जंगल से नाव के लिए लकड़ी तो मिली है, परंतु वे लोग गरीब हैं। उन्होंने कई बार सरकार से बढई की मजदूरी और कांटी के लिए मांग की, परंतु उन्हें अभी तक वह सहायता प्राप्त नहीं हुई। अतः सरकार उस क्षेत्र में आवश्यक संख्या में नावों की व्यवस्था करे, जिससे लोगों को आश्रयगृह तक समय से निकालकर ले जाने में सफलता प्राप्त हो सके।

राशन एवं दवा का प्रबंध

साधारणतः हर आश्रय-गृह में दो से ढाई हजार तक बाढ़ पीड़ित एकत्रित होंगे। केवल गोरखपुर देवरिया के उत्तरी क्षेत्र में इस प्रकार, आश्रयगृह बनाने होंगे। अतः इसी क्षेत्र में लगभग 17 से 20 हजार तक लोगों के राशन की व्यवस्था करना जरूरी है। शेष जिलों की भी तुरंत जांच-पड़ताल कराकर सब व्यवस्था करना आवश्यक है। बाढ़ के दिनों में पीड़ित लोगों को चिकित्सा की बहुत आवश्यकता रहती है। गत वर्ष इसके बिना अनेक लोगों को मृत्यु का भक्ष्य बनना पड़ा। अतः नावों पर घूमते-फिरते छोट-छोटे चिकित्सालयों का प्रबंध भी सरकार को करना चाहिए।

गत वर्ष देखा गया कि लोगों को कई रातें अंधेरे में काटनी पड़ी, क्योंकि मिट्टी के तेल का प्रबंध अधिकतर स्थानों पर नहीं हो पाया। प्रातःकाल कई स्थानों पर लोगों के पास सांप दिखाई पड़े। भगवान् की कृपा से इनके कारण प्राण-हानि नहीं हुई, यह बात अलग है। अतः इस वर्ष तेल का प्रबंध आवश्यक है।

इन सब क्षेत्रों में सब लोग किसान हैं। उनके पास जानवर हैं। बाढ़ के दिनों में जानवरों को भी चारा नहीं रहता। अतः जानवरों के लिए चारे का प्रबंध सरकार को कर देना चाहिए।

कपड़े का प्रबंध

गत वर्ष कपड़े का पहले से प्रबंध न रहने के कारण लोगों को कपड़ा बहुत विलंब से दिया गया

विराट् पुरुष

और वह भी अति अपर्याप्त मात्रा में। अतः अभी से सरकार कपड़े का आवश्यक प्रबंध करके रखे।

इसके अतिरिक्त वहां की अन्य समस्याएं हैं, जिनकी ओर ध्यान देकर उचित व्यवस्था करनी चाहिए। जैसे—

बाढ़ के क्षेत्र में गन्ना काफी मात्रा में बोया जाता है। अतः संकट के समय इससे प्राप्त धन उनका सहारा बन सकता है। लोग पहले से ही कर्ज से लदे हैं। अतः उन्हें नया कर्ज देने के लिए भी कोई तैयार नहीं। यद्यपि इधर उन्होंने मिलों में भी गन्ना दिया है, तथापि उन्हें उसका केवल आंशिक मूल्य दिलवाने का प्रबंध हुआ है। इस क्षेत्र में सरकार ने सड़कों और बांध का जो निर्माण किया है, उससे लोगों के खेत दब गए हैं। इसको साल भर होने आया है परंतु अभी तक उसके मुआवजे का कोई प्रबंध नहीं हुआ और न उसका हिसाब ही हुआ है।

साथ ही बांध बांधते समय उसमें पड़नेवालों के खेतों में फसल खड़ी थी। किसान की फसल नष्ट हुई। उसके मुआवजे का भी सरकार को प्रबंध करना है। किसान इस संकट की घड़ी में, जबकि उसको बाढ़ के दिनों में बैठकर कई मास गुजारा करना पड़ेगा, उसके पास जो कुछ थोड़ा बहुत धन है, उसे ही आवश्यकता पूर्ति के लिए चाहता है। सरकार को चाहिए कि उस मुआवजे के धन को देने का तुरंत प्रबंध करे। मुआवजे के संबंध में सरकार ने जो तरीका अपनाया है, वह अद्भुत है। 'पेड़' की फसल का मुआवजा दिया जाए।

इस क्षेत्र में गन्ना-उत्पादन का विशेष ढंग है। एक तो बावग यानी गन्ने का बीज लगाकर उससे गन्ना निर्माण करने का तरीका, दूसरा पेड़ी के द्वारा। प्रथम तरीका साधारणतः सब जगह काम में आता है। सरकार ऐसे गन्ने की फसल का मुआवजा देने को तैयार है। परंतु इस क्षेत्र में लोग पेड़ी द्वारा गन्ना पैदा कर रहे हैं अर्थात् एक साल बीज से गन्ना तैयार कर फसल काटते हैं, परंतु उसी गन्ने की जड़ों से दूसरे साल फसल तैयार करते हैं, इसी को 'पेड़ी' कहते हैं। यह पेड़ी की फसल बावग से लगभग डेढ़ गुनी होती है। और खर्च भी कम आता है (बीज का दाम लगता नहीं)। ऐसी 'पेड़ी' की फसल भी बांध में पड़ी थी। परंतु इसका मुआवजा न देने का सरकार से निर्णय किया है। यह उन गरीब किसानों के साथ घोर अन्याय है। अतः मैं सरकार से अनुरोध करूंगा कि उनकी 'पेड़ी' की फसल का भी सरकार पूरा मुआवजा दे।

पानी की व्यवस्था हो

कुछ स्थानों पर बाढ़ ने बालू को इतना एकत्र कर दिया है कि वहां कुओं का निर्माण ही नहीं हो सकता। निर्माण करते ही वहां कुआं ढह जाता है। उन स्थानों पर लोगों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था होनी आवश्यक है। इसीलिए हाथ के पंप लगवाने का सुझाव मैंने गत वर्ष दिया था। सरकार ने लगवाने का आश्वासन भी दिया था, परंतु इस समय देखा कि कुछ स्थानों पर पंप ले जाए गए परंतु लगवाए नहीं गए। और आखिर सरकार ने उन्हें उठवाकर वापस भी मंगा लिया। उदाहरणार्थ, बुढ़वा जंगल, नौका टोला और मदनपुर में वहां के लोगों को तीन-तीन मील से पीने का पानी लाना पड़ता है। सरकार को इन स्थानों पर नलों की व्यवस्था करनी चाहिए। साथ ही

जहां आश्रयगृह बनेंगे, वहां भी नल लगवाने चाहिए। अन्यथा बाढ़ का पानी पीने से लोग रोगों से पीड़ित होंगे तथा जीवन की हानि होगी। सरकार को चाहिए कि वह इस सवाल को टालने की भूल न करे।

जमीन पर कब्जा

लगभग 600 घर आबाद हैं। सरकार ने उन्हें तथा अन्य बाढ़-पीड़ितों को वहां बसने की अनुमति दी है। वह एक बहुत घना जंगल था, पर अब आबाद हो रहा है। सरकार ने इसे बाढ़-पीड़ित लोगों को बसाने का स्थान घोषित भी किया है। परंतु कुछ लोग वहां धांधली कर रहे हैं जबकि यह स्थान बाढ़-पीड़ित लोगों के बसने के लिए ही पर्याप्त होगा। एक देवरिया जिले के पेशकार वहां 14-15 एकड़ जमीन पर खेती के लिए कब्जा कर रहे हैं। यह सज्जन बाढ़-पीड़ित क्षेत्र के भी रहनेवाले नहीं हैं। सरकार ने इस नवीन गांव को आदर्श रीति से बसाने की योजना बनाई है। वहां सरकारी योजनानुसार जो बस्ती का नक्शा बना है, उसके एक चौराहे पर ही यह खेती करने का काम प्रारंभ हुआ है। उक्त पेशकार साहब ने 1953 में पटवारी को जो कुछ घूस दी होगी, वही इस जमीन की कीमत उन्होंने अदा की है। इसी वर्ष गत माघ मास में इन्होंने यहां का जंगल काटा, जिसकी लकड़ी खड़ड़ा मिल को बेची है। इस ग्राम की ग्राम सभा के (मितौली ग्राम सभा) के सभापति ने पुलिस थाने में रिपोर्ट की। उन पर मुकदमा चलाया, काम रुकवाया, परंतु पंचायत इंसपेक्टर ने सभापति का साथ न दिया, जिसके कारण वह इसे आगे न बढ़ा सके और अब पेशकार वहां खेती कर रहे हैं। इसके कारण वहां झगड़ा होने की भी संभावना है। सरकारी नौकर भी इस प्रकार धांधली कर रहे हैं। इस ओर सरकार को अविलंब ध्यान देकर और कड़ी कार्यवाही करते हुए बाढ़ पीड़ितों को इस संकट से मुक्त करना चाहिए।

इसी प्रकार उस क्षेत्र में एक दूसरी धांधली हो रही है। देवीपुर, माघी और विंघ्याचलपुर में रेतें पड़े हुए हैं। वे स्थान बलुचरा के एक सज्जन के थे। उन्होंने 6 साल पूर्व टेंगरा, बुलहवा कतकी, पतशवहा पसहिवा, श्यामपुर, बरंगहा के लोगों को नजराना लेकर जोतने के लिए दिए। यह कई सौ एकड़ जमीन है। और इन गरीब ग्रामीणों के पास एक एकड़ से 5-6 एकड़ तक के खेत के रूप में है। यह सब रेत होने के कारण सरकार इनसे अभी तक लगान भी नहीं लेती थी। परंतु अब लगान के लिए पड़ताल हो रही है। लेखपालों ने घूस लेकर इन खेतों की पड़ताल दूसरे ही लोगों के नाम करना प्रारंभ की है। इस धांधली से यहां खेती करनेवाले परेशान हैं। अतः सरकार उस धांधली को बंद कराकर जो लोग उसे गत 6-7 सालों से जोतते तथा बोते आ रहे हैं या जिन्होंने वहां का जंगल काटा है या उस समय तक जमींदारों को नजराना दिया है या उसे इनाम में पाया है, उन्हीं के नाम भूमि पड़ताल करानी चाहिए। कृषक लगान देने के लिए प्रस्तुत हैं, परंतु बेचारे घूस देने में असमर्थ हैं। अतः सरकार इस समस्या की ओर भी अविलंब ध्यान दे।

□

बाढ़ विभीषिका पंगु सरकारी तंत्र

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में अत्यधिक आबादी है। इन जिलों का जनजीवन हमेशा संकटों से पीड़ित रहता है। परंतु इस वर्ष वर्षा एवं बाढ़ ने इस क्षेत्र में जल-प्रलय का रूप धारण किया है। आवश्यक साधनों के अभाव में भी संवाददाताओं के सहयोग से लगभग सभी अखबारों ने इस स्थिति की गंभीरता का समुचित प्रकाशन किया। विभिन्न दलों के कार्यकर्ता भी भ्रमण कर स्थिति को प्रकाश में लाए। प्रादेशिक एवं केंद्रीय सरकार के मंत्रीगण भी हवाई जहाज से भीषण परिस्थिति का दिल दहलानेवाला दृश्य देखकर आए हैं।

इस वर्ष का जल-प्रलय बहुत भयंकर है। लाखों लोग हैं, जिनके घर नष्ट हुए हैं। केवल बस्ती जिले में लगभग 5 लाख एकड़ की फसल नष्ट हुई है। किसानों का भविष्य अंधकारमय है। लोगों को खाने के लिए राशन बचा नहीं। जानवरों को चारा उपलब्ध नहीं। इस समय जनता एवं सरकार दोनों को मुक्तहस्त से इन पीड़ित मानवों की सहायता करनी चाहिए। केंद्रीय एवं प्रांतीय सरकार ने गल्ले एवं धन की मदद करने का आश्वासन दिया है, यह प्रसन्नता की बात है।

परंतु प्रबंध की व्यवस्था बड़ी ही दोषपूर्ण है, यह बड़े दुःख से कहना पड़ता है। जौनपुर, आजमगढ़, गोरखपुर और बस्ती क्षेत्र का दौरा करने पर जो अनुभव किया है, उसके आधार पर मैं यह कह रहा हूँ। सरकारी प्रबंध तथा कई अन्य लोग नगर के लोगों में ही तथा उसके आस-पास के गांवों में ही सहायता पहुंचा रहे हैं। सहायता करना चाहनेवाली जनता एवं संस्थाओं के कार्यकर्ता साधनहीन हैं। उनके पास नावों का प्रबंध नहीं है। चारों ओर मीलों पानी फैला हुआ है। केवल सरकार ही ग्राम-ग्राम में सहायता पहुंचा सकती है। परंतु सरकार की कोई सहायता नगरों से दूर भयानक बहाव में फंसे लोगों के पास नहीं पहुंच रही है। मैं स्वयं शहरों के अतिरिक्त बाढ़ से घिरे दूरस्थ देहातों में घूम आया हूँ। वहां केवल जनसंघ के कार्यकर्ता ही पहुंचे हैं। परंतु साधन के बिना वे भी 5-6 प्रतिशत से अधिक जगह पहुंच नहीं पाए हैं। सरकार से हम केवल नावों की सहायता चाहते हैं, परंतु वह भी मिलती नहीं।

इस समय सहायता-कार्य में संलग्न कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। किंतु खेद से कहना पड़ता है, उन्हें डांटकर अलग कर दिया जाता है। सरकार इतना गल्ला और धन दे रही है, परंतु वह शहरों के आस-पास ही बंट रहा है।

गोरखपुर में मैंने देखा कि देहात के लोग, जो केवल 4000 के लगभग हैं, उनको ही राशन बांटा जा रहा है। वहां जनता के लोग सहायता पहुंचा सकते हैं। गीता प्रेस यह कार्य सुचारु रूप से कर रहा है। सरकार को चाहिए कि मोटर बोटों तथा नावों से दूर-दूर बाढ़ में फंसे गांवों में सहायता पहुंचाए।

आजमगढ़ के जिलाधीश ने मेरी उपस्थिति में जनसंघ के जिला प्रधान से कहा कि हम जहां कहीं गए, जनसंघ की वहां सहायता पहुंची हुई थी। मेरा सरकार से अनुरोध है कि वह इस समय जनसंघ के कार्यकर्ताओं को नावों का प्रबंध कर दे, ताकि वे हर संकट के स्थान पर पहुंचकर ठीक-ठाक सहायता पहुंचाने के कार्य में सहयोग दे सकें।

सरकार से अपेक्षित सहायता

- इस समय बाढ़ कुछ कम होती दिख रही है। परंतु बरसात समाप्त नहीं हुई है। फिर से बाढ़ का संकट आ सकता है। अतः जगह-जगह टिन शेड से पनाह-घर बनाए जाएं।
- राशन की व्यवस्था बाढ़ से घिरी सब जगहों के लिए की जाए। इस प्रबंध में साथ में जनता के भी लोग रखे जाएं। सरकारी कर्मचारियों के साथ केवल कांग्रेस के नेता रहते हैं। इसका परिणाम दलगत लाभ में होता है। इससे सरकार कभी जन सहयोग नहीं पा सकेगी।
- मिट्टी का तेल, नमक, दीया-सलाई की लोग अत्यधिक आवश्यकता अनुभव करते हैं। उसका प्रबंध किया जाए।
- जो संस्थाएं काम करना चाहती हैं तथा जिनके पास बांटने की सामग्री है, उनके लिए नावों का प्रबंध कर दिया जाए तथा उनके लिए क्षेत्र निश्चित कर दिए जाएं। अन्यथा कुछ जगह सब लोग सहायता करते हैं और अधिकतर जगहों पर लोग बिना सहायता के पड़े रहते हैं।
- जानवरों के लिए सरकार भूसे की व्यवस्था कर दे अन्यथा किसान का भविष्य नष्ट हो जाएगा।
- इस समय भी कहीं-कहीं लगान, पंचायत टैक्स तथा गत वर्ष दी गई तकनीकी वसूली हो रही है। सरकार बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में यह काम अविलंब बंद कर दे।
- लोगों के मकान ध्वस्त हुए हैं। सरकार उन्हें देखकर तत्काल गरीबों को मकान बनवाने का पूरा खर्चा दे।
- इस क्षेत्र में बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों के विद्यार्थियों की फीस माफ कर दी जाए।
- जिनके खेत बाढ़ से नष्ट हुए हैं, उनका लगान माफ कर दिया जाए।
- ओषधि तथा घूमते हुए अस्पतालों की व्यवस्था करें, क्योंकि लोग साधारणतः सब जगह बीमार हैं। कहीं-कहीं हैजा और चेचक प्रारंभ हुई है।
- सस्ते गल्ले की दुकानें खोली जाएं एवं बीज का प्रबंध किया जाए।

जनता द्वारा अपेक्षित सहायता

- जनता कपड़ा, गल्ला एवं संभाव्य धन से सहायता करे।

विराट् पुरुष

- नवयुवक जनता से एकत्रित किया हुआ गल्ला, कपड़ा बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के उन भागों में, जहां सहायता पहुंच नहीं रही, सहायतार्थ पहुंचाएं।

सरकार द्वारा स्थायी सहायता की उपेक्षा

- हर साल यह क्षेत्र बाढ़ से पीड़ित रहता है। अतः घाघरा, राप्ती, गोमती, सर्ई, रोहिन, बड़ी गंडक, छोटी गंडक आदि नदियों के बाढ़ के नियंत्रण की व्यवस्था करे। हर साल सहायता से जीवन नहीं चल सकता। ग्रामीण जनता ने कई जगह कहा कि हमें पश्चिम में बसाया जाए। हम यहां नहीं रहेंगे। अतः इस काम को सरकार यथाशीघ्र अपने हाथ में लेने का प्रबंध करे। इसी में लोगों को मजदूरी मिलेगी।
- इस क्षेत्र में रबी की फसल के समय अकसर सूखा पड़ता है। इसी योजना के अंतर्गत सिंचाई का प्रबंध किया जाए।
- कई गांव के गांव नष्ट हुए हैं। एक भी मकान बचा नहीं। उन गांवों की पुनर्चना सुनियोजित योजना देकर करवाई जाए।

स्थायी योजना बनाते समय सरकार एक बात का ध्यान अवश्य रखे, वह यह कि जनता के लोगों का भी विचार ले—कम-से-कम जिससे संबंधित योजना है—अन्यथा उसकी योजनाएं कई बार घातक सिद्ध हुई हैं। जैसे देवरिया जिले के हाटा तहसील के उत्तरी क्षेत्र का बांध घातक सिद्ध हुआ है। आजमगढ़ में नगर की रक्षार्थ बांध बनाते समय इंजीनियरों की सलाह भी गलत सिद्ध हुई, वैसे ही वहां की सड़क ऊंची करने से ही मऊ तक खतरा पहुंचा, बस्ती जिले में बांसी एवं नवगढ़ तहसील के देहातों के चारों ओर मिट्टी डालकर बाढ़ से बचाने की योजना ने उन गांवों को और भी तबाह कर दिया। घरों के अंदर का पानी बाहर नहीं निकला और देहातों के चारों तरफ ऊंचा करने के लिए मिट्टी लेने के कारण घरों की नींव के नीचे तक गढ़े बन गए, जहां 10-15 हाथ पानी भरा रहा और वे सब घर ढह गए। गांवों में नावें नहीं हैं, अतः लोग शौच के लिए गांव के बाहर नहीं जा सकते। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है।

उन देहातों में इतनी गंदगी फैली कि वहां बीमारियां फैल रही हैं। देहातों में एकत्रित मिट्टी से कीचड़ हो गई है, जिसमें जानवर फंसे पड़े हैं, जिनका निकलना कठिन हो जाता है। अतः योजना प्रथम प्रकाशित की जाए। लोकमत उस पर क्या है, यह देख कर ही उसे कार्यान्वित किया जाए। अन्यथा पैसा खर्च तो होता ही है, परंतु लाभ के स्थान पर अनेक बार नुकसान ही उठाना पड़ता है।

□

पंडित प्रेमनाथ डोगरा सर्वस्व की आहुति देने वाले नायक

अखिल भारतीय जनसंघ के वयोवृद्ध अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा वह महान् व्यक्तित्व हैं, जिन्हें आपत्ति और विपत्ति की घड़ियों में राष्ट्र के सम्मान के लिए सर्वस्व की आहुति देने में भी किंचित् संकोच नहीं होता।

एक समय था जबकि भारत के प्रधानमंत्री पं. नेहरू के लाडले, कश्मीर के तथाकथित भाग्य विधाता शेख अबदुल्ला ने सुसुप्त राष्ट्र की आंखों में धूल झाँककर राष्ट्र पद का बाना पहनना शुरू किया था। अमरीका और पाकिस्तान के हाथ कश्मीर को बेचने की योजना बना ली थी। उस समय एक हाथ में तिरंगा लेकर दूसरे में भारतीय संविधान लेकर और गले में राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद का चित्र डालकर 'एक विधान, एक निशान, एक प्रधान' का नारा लगाते हुए भारत-माता के लाडलों का, मौत के दीवानों का एक दल कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में निकल पड़ा था—शेख की शेखी को मिटाने के लिए, देश की अखंडता को कायम रखने के लिए। यही दल था—प्रजा परिषद् और प्रजा परिषद् के नेता थे, जनसंघ के वर्तमान अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा।

अंग्रेजी शासन में तिरंगा ध्वज फहराते हुए गोली का शिकार होनेवालों की संख्या कम नहीं है किंतु कांग्रेसी शासन के अंतर्गत तिरंगा लहराते हुए यदि किसी को गोली का शिकार होना पड़ा हो तो वह है—प्रजा परिषद् और जनसंघ के कर्मवीर देशप्रेमी कार्यकर्ता। इतना ही नहीं तो देश की एकसूत्रता को चिरस्थायी एवं अमरत्व प्रदान करने के प्रयास में भारतीय जनसंघ के महान् संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने स्वयं को बलिदान कर दिया। भारत के भाल की रक्षा के पावन प्रयास में जनसंघ को अपने शीश से हाथ धोना पड़ा।

प्रदेश पर्यंत आतुरता

आज कश्मीर भारत में है। इसका श्रेय किसको है? उन वीर सपूतों को, जिन्होंने सीने पर गोलियां खाकर भी 'एक विधान, एक निशान, एक प्रधान' का नारा नहीं छोड़ा। पंडित प्रेमनाथ डोगरा को जिन्होंने कारागार की कराल कोठरियों की भीषणतम यंत्रणाओं का सहर्ष आलिंगन

विराट् पुरुष

करने में ही जीवन की सार्थकता समझी। इस प्रकार के महान् नेता के दर्शन के लिए किसके नयन आतुर नहीं होते?

जिस समय उत्तर प्रदेश की जनता और जनसंघ के कार्यकर्ताओं को ज्ञात हुआ कि उनके प्राणप्रिय नेता श्री डोगराजी प्रदेश में पधारनेवाले हैं, उनके उल्लास का ठिकाना न रहा। सर्वत्र स्वागत, अभिनन्दन की तैयारियां होने लगीं। संपूर्ण देश में दौरे का कार्यक्रम होने के कारण उत्तर प्रदेश को केवल 20 दिन प्राप्त हो पाए। 51 जिले और 20 दिन! सबका समाधान होना असंभव था। किंतु फिर भी अत्यंत व्यस्त कार्यक्रम बना लिया गया। पंडितजी को सूचना देने में संकोच का अनुभव होता था। 76 वर्ष की अवस्था में इतना व्यस्त कार्यक्रम स्वीकार करेंगे अथवा नहीं? साहस करके किसी प्रकार कार्यक्रम स्वीकृतार्थ प्रस्तुत किया। किंतु आश्चर्य, बिना किसी आपत्ति के उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार कर लिया।

अभी तक पंडितजी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। हमारा विचार था कि पंडितजी प्रातः 7 बजे से पूर्व कोई कार्यक्रम नहीं ले पाएंगे, दोपहर में भी विश्राम के लिए उन्हें कुछ-न-कुछ समय चाहिए होगा ही और रात्रि में कोई भी कार्यक्रम लेना उनके लिए अनुकूल न होगा। पर संपर्क में आने पर ज्ञात हुआ, हमारी धारणाएं गलत थीं। पंडितजी प्रातः 6 बजे तक स्नानादि से निवृत्त हो जाते थे। दोपहर में विश्राम के स्थान पर वे समाचार-पत्रों का अध्ययन किया करते थे। किसी भी कार्यक्रम के लिए उनसे आग्रह नहीं करना पड़ता था, वरन् वे स्वयं उसके लिए तैयार रहते थे। बीस दिन के दौरे में पंडितजी का 76 स्थानों पर स्वागत किया गया। 55 स्थानों पर उनकी सभाएं आयोजित की गईं। लगभग ढाई हजार मील का उन्होंने प्रवास किया तथा लगभग 10 लाख लोगों ने मार्गदर्शन प्राप्त किया।

पंडितजी का अधिकांश प्रवास मोटर द्वारा हुआ। पंडितजी का सदैव आग्रह रहता था कि प्रत्येक कार्यक्रम समय से हो, किंतु किसी भी परिस्थिति में कभी वे खिन्न प्रतीत नहीं हुए, न कभी किसी से एक कठोर शब्द ही कहा। सतत प्रसन्न रहना उनका स्वभाव है। जिस स्थान पर पंडितजी जाते, उस स्थान की शोभा अनोखी रहती। नगर-नगरियां अद्भुत रूप में सजाई जातीं। जिस मार्ग से पंडितजी का जुलूस निकलता, उस मार्ग के दोनों ओर नर-नारियों का अपार जन समूह खड़ा रहता। छतों पर, छज्जों पर खड़े लोग पुष्पों की वर्षा करते। सड़कें पुष्पों से पट जातीं। माताएं-बहनें तिलक करने और आरती उतारने के लिए आतुर रहतीं। फोटो लेने के लिए लोग आतुर रहते। पंडितजी के लिए बनाए गए द्वारों की शोभा तो अनोखी थी। पुष्प-पत्र-वस्त्रों से सजे द्वार तो सभी के स्वागत के लिए प्रयोग होते हैं, किंतु पंडितजी के स्वागत में बरतनों के, मटकों के द्वार बनते। अनुभव होता था मानो समाज के अपने प्राणप्रिय नेता के स्वागत में लोग उमड़ पड़े हों। अत्यंत व्यस्त कार्यक्रम के कारण डोगराजी की सभाएं कड़कती धूप और कभी कड़कती सर्दी में होती, किंतु हजारों की संख्या में जनता दर्शनार्थ तथा भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय संदेश को सुनने के लिए रहती।

रोचक भाषण

पंडितजी के भाषण भी अत्यंत रोचक रहे। भारतीय जनसंघ की ओर से खतौली निवासी नेत्र

विशेषज्ञ के द्वारा संचालित हापुड़ चक्षुदान कैंप में भाषण करते हुए पंडितजी ने भी बड़ी प्रसन्नता दिखाई कि हमारे लोगों को चक्षुदान की महत्ता पता है। हम अनेक ऐसे लोग हैं, जिनके चक्षु हैं किंतु राष्ट्र-दृष्टि नहीं है। स्वयं संलग्नता की पंडितजी ने प्रशंसा की और अन्य कार्यकर्ताओं को उनका कार्य अपनाने का आदेश दिया।

मुरादाबाद रोटरी क्लब में बोलते हुए पंडितजी ने कहा, “गृहमंत्री पंडित के इस जिले की परिस्थिति काफी बदल चुकी है। अब जनमत संग्रह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। कश्मीर निवासियों को भी संतोष हुआ था किंतु पंडित नेहरू ने जनमत की बात कहकर अनिश्चितता का भाव उनके मन में उत्पन्न कर दिया था, वह अनिश्चित स्थिति समाप्त होनी चाहिए। भारत का संविधान कश्मीर में जाएगा। प्रादेशिक सुव्यवस्था के निमित्त मत प्रदान करने का अधिकार एक बार दिया भी जा सकता है। नेहरूजी के मतानुसार जिस प्रकार स्वतंत्र नागा राज्य की मांग अनुचित है, उसी प्रकार स्वतंत्र कश्मीर राज्य की मांग भी घातक है।”

एकात्म शासन की आवश्यकता

राज्य पुनर्गठनायोग की रिपोर्ट पर बोलते हुए श्री डोगराजी ने कहा, “किसी भी पार्टी के सामने संपूर्ण देश का नक्शा नहीं है। नेता लोग अपने स्वार्थ के लिए प्रदेशों का झगड़ा खड़ा किए हुए हैं। कोई पुराना राज्य बनाने का इच्छुक है। प्रश्न यह है भारत राष्ट्र एक है, उसमें निवास करनेवाला समाज एक है, उस समाज की युगयुगांत पुरानी संस्कृति एक है, फिर इस राष्ट्र में एक राज्य ही क्यों नहीं होना चाहिए। जनसंघ का स्पष्ट विचार है, देश में एक लोकसभा हो और वही संपूर्ण देश का शासन चलाए। इससे संपूर्ण राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना का उदय होगा। राष्ट्रीय व्यय में कमी होगी। जनसंघ ने ही नहीं तो श्री राजगोपालाचारी, श्री पी. कोट्टंडराव जैसे कुशल राजनीतिज्ञ भी इसी बात को स्वीकार करते हैं।” एक सज्जन ने प्रश्न किया, “दिल्ली राज्य यदि स्वतंत्र बना रहेगा तो जनसंघ वहां मंत्रिमंडल बना भी सकेगा, क्योंकि वहां उसका प्रभाव काफी मात्रा में है अन्यथा वह संभावना भी चली जाएगी। फिर क्यों जनसंघ स्वयं अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना चाहता है।” जनसंघ के नेता ने तुरंत उत्तर दिया, “जनसंघ संस्था-हित को नहीं राष्ट्रहित को प्रमुखता प्रदान करता है।”

हिंदू उत्तराधिकार विधेयक अनुचित

हिंदू उत्तराधिकार विधेयक की आलोचना करते हुए पंडितजी ने संयुक्त परिवार प्रणाली पर जोर दिया। एक पत्रकार द्वारा प्रश्न किए जाने पर, “संयुक्त परिवार प्रणाली समयानुकूल नहीं है।” पंडितजी ने कहा, “ठीक है, समय बदला होगा किंतु क्या लोगों का वृद्ध होना, रुग्ण होना या पंगु होना बंद हुआ है? इसकी व्यवस्था की देश में कोई योजना है क्या? सरकार इनकी जिम्मेवारी लेने को तैयार है क्या? आत्मीयता के साथ उनकी सेवा-सुश्रूषा करनेवाला कोई है क्या? यदि नहीं तो संयुक्त परिवार प्रणाली को बना रहना चाहिए। संयुक्त परिवार ही

विराट् पुरुष

ऐसे लोगों का एकमात्र सहारा है।''

नारियों तथा जायज संतान को संपत्ति में अधिकार मिलने के प्रश्न के संबंध में बोलते हुए पंडितजी ने कहा, ''नारियों को अधिकार पति-गृह में मिलना चाहिए, क्योंकि वे वहीं स्थायी रूप में रहती है। जहां तक जायज संतान का प्रश्न है, उसे अधिकार प्रदान कर नर-नारियों को अनैतिक बनाने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। एक ओर विवाह चालू रखना और दूसरी ओर इस प्रकार अनैतिकता को प्रोत्साहन देना अत्यंत अनुचित है।''

जनसंघ और आर्थिक समस्या

जनसंघ की आर्थिक नीति पर बोलते हुए जनसंघ के अध्यक्ष ने कहा, ''जनसंघ का विश्वास है कि छोटे, गृह एवं ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन प्रदान करने से ही देश से बेकारी दूर हो सकती है। इन उद्योगों का संगठन विकेंद्रित पद्धति पर किया जाना चाहिए। बड़े उद्योगों का संगठन सहकारी आधार पर एवं छोटे उद्योगों के पूरक के रूप में होना चाहिए।'' पंडितजी के प्रदेशव्यापी दौरे में महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय, संयुक्त मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा उ.प्र. जनसंघ के मंत्री श्री पीतांबरदासजी साथ रहे। उनके भाषणों से भी जनता अत्यधिक प्रभावित हुई।

पंडितजी के दौरे ने उत्तर प्रदेश भर के कार्यकर्ताओं में अत्यंत उत्साह का संचार कर दिया है। आगामी 31 दिसंबर तथा 1 जनवरी को लखनऊ में होनेवाले प्रादेशिक अधिवेशन के लिए जोर-शोर से कार्यकर्ताओं ने तैयारी प्रारंभ कर दी है। आशा की जाती है कि यह अधिवेशन प्रादेशिक जनसंघ के इतिहास में एक अनूठी चीज रहेगा। इस अधिवेशन का विशेष आकर्षण इसलिए भी है कि उसमें श्री डोगराजी व श्री दीनदयालजी के अतिरिक्त अ.भा. जनसंघ के उपप्रधान श्री देवप्रसाद घोष तथा अ.भा. मजदूर संघ के महामंत्री श्री डी.एस. टेंगड़ी भी उपस्थित रहेंगे। इस अवसर पर ग्रामोद्योग प्रदर्शनी भी विशेष आकर्षक रहेगी। इस अधिवेशन में कुछ ऐसे कार्यक्रमों की निश्चित योजना भी बनाई जाएगी, जिनके आधार पर चुनाव से पूर्व प्रदेश भर में जनसंघ को जनता के और अधिक निकट लाया जा सकेगा।

□

सत्तालोलुप कांग्रेस अपनाती है सभी हथकंडे

कांग्रेस के शासन में लोकतंत्र का मजाक हो रहा है। जनता के अधिकारों पर कुठाराघात किया जा रहा है। सरकारी निर्णय किसी सिद्धांत के आधार पर नहीं, तो नेताओं की इच्छा पर निर्भर है। सहारनपुर नगरपालिका का विस्तृत विवेचन इसका एक नमूना है। न्यायपालिकाओं के गत आम चुनाव में सहारनपुर नगरपालिका में किसी भी एक दल का बहुमत नहीं हो सका था। 40 सदस्य तथा एक अध्यक्ष में से 14 सदस्य जनसंघ के, 11 सदस्य कांग्रेस के तथा 15 सदस्य एवं अध्यक्ष 'जमूरी महाज' पार्टी के निर्वाचित हुए।

'जमूरी महाज' कोई स्थायी संस्था नहीं है। कांग्रेस के अंदर की गुटबाजी के परिणामस्वरूप ही उसका निर्माण हुआ है। नगर में ठा. फूलसिंह का (उप मंत्री) गुट प्रभावशाली है। अतः अध्यक्ष पद के लिए श्री फूल सिंह के दाहिने हाथ श्री भगवान दासजी को कांग्रेस का टिकट मिला। अतः श्री अजीत प्रसाद जैन ने (जो केंद्र में मंत्री हैं तथा श्री फूल सिंह के विरोधी हैं,) जमूरी महाज के नाम से 40 सदस्यों तथा श्री कुंवर जमशेद अली खां का अध्यक्ष पद के लिए कांग्रेस के विरोध में खड़ा किया। जिसके परिणामस्वरूप उपर्युक्त स्थिति रही। चुनाव के बाद बोर्ड में जनसंघ ने प्रस्ताव रखा कि जनहित को ध्यान में रखकर हम सब मिलकर कार्य करें। जमूरी महाज के लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया तथा कार्य प्रारंभ हुआ।

1955 में इस बोर्ड से पहले के बोर्ड की ऑडिट रिपोर्ट आई। उसमें 13500 रुपए के गबन का मामला था। पिछले बोर्ड ने श्री भगवानदास से (कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए जो इस चुनाव में प्रत्याशी थे) तारकोल खरीदा था, जिसमें 19500 रुपए का गोल-माल हुआ था। इसकी जांच के लिए वर्तमान बोर्ड की 6 लोगों की एक समिति बनी। इसमें 6 जनसंघ, 3 कांग्रेस तथा 3 जमूरी महाज के सदस्य सर्व-सम्मति से चुने गए। जांच हुई। समिति ने इसके लिए भी जमशेद अली खां, जो पिछले बोर्ड के भी अध्यक्ष थे, श्री माधेप्रसाद एक्जीक्यूटिव ऑफिसर तथा श्री रोशनलाल एकाउंटेंट को दोषी पाया और इसकी रिपोर्ट बोर्ड में पेश की। बोर्ड में एक मत से यह रिपोर्ट स्वीकृत हुई तथा इन तीनों को अविलंब मुअ्तिल करने की सरकार से सिफारिश की गई।

विराट् पुरुष

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक सभाओं में इस प्रकार के प्रस्ताव पारित कर सरकार के पास भेजे गए परंतु आज तक सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपील

इन सब बातों को ध्यान में रखकर तथा वर्तमान बोर्ड में भी भ्रष्टाचार बढ़ता हुआ देखकर जनसंघ ने कांग्रेस तथा जमूरी महाज के अच्छे लोगों से अपील की कि इस भ्रष्टाचार को दूर करने का मार्ग सम्मिलित रूप में निकाल लिया जाए। परिणामस्वरूप 25 सदस्यों ने मिलकर नगरपालिका सुधार समिति का निर्माण किया। इसमें जनसंघ के 15, कांग्रेस के 7 तथा जमूरी महाज की नगरपालिका के 3 सदस्य सम्मिलित हुए। इस प्रकार 25 सदस्यों का यह बहुमत दल निर्मित हुआ। श्री जमशेद अली खां के खिलाफ, जो गबन के केस में शामिल है तथा नित्यप्रति नगरपालिका में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को रोकने में असमर्थ है, सरकार कोई कारवाई नहीं करती, यह देख नगरपालिका सुधार समिति ने श्री जमशेद अली खां (अध्यक्ष नगरपालिका) के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव का दि. 23 सितंबर, 55 को नोटिस दिया, जिस पर 25 सदस्यों ने हस्ताक्षर किए। इसी बीच प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का नगरपालिका के कांग्रेसी सदस्यों के पास आदेश आया कि वे अविश्वास के प्रस्ताव में सम्मिलित न हों। कारण, जनसंघ के हाथ में नगरपालिका आ जाएगी। श्री जमशेद अली खां श्री अजीत प्रसाद जैन के आदमी हैं, अतः वे भी कांग्रेसी सदस्यों को फुसलाने का प्रयास करने लगे, परंतु उसका कोई फल न निकला तथा दिनांक 27 अक्टूबर, 55 को अविश्वास का प्रस्ताव पास हो ही गया। यह प्रस्ताव पास होते ही श्री जमशेद अली ने बोर्ड भंग करने के लिए सरकार के पास लिखित रिप्रजेंटेशन किया तथा हाईकोर्ट में रिट की। 4 नवंबर को उन्हें स्टे ऑर्डर मिला तथा 7 नवंबर को उन्होंने पुनः बोर्ड का चार्ज ले लिया।

परंतु रिट खारिज होगी, यह उन्हें विश्वास था। अतः वे बोर्ड को भंग करने की सतत कोशिश करते रहे। कांग्रेसी सरकार भी जनसंघ के हाथ में नगरपालिका जाने नहीं देना चाहती थी। परिणामस्वरूप 4 जनवरी, 56 को सरकार की ओर से बोर्ड के पास एक चार्जशीट आ गई। 6 जनवरी को बोर्ड की मीटिंग हुई तथा सब आरोपों का उत्तर दिया गया। दि. 13 जनवरी, 56 को भी जमशेद अली खां की रिट खारिज हुई तथा उनका अध्यक्ष पद अंतिम रूप से समाप्त हो गया।

नगरपालिका की सुधार समिति को डर था कि सरकार बोर्ड को कहीं भंग न कर दे। कारण सरकार श्री जमशेद अली की बराबर सहायता कर रही थी। अतः दिनांक 14 जनवरी को नगरपालिका सुधार समिति के 15 सदस्यों ने जिलाधीश को लिखित आश्वासन दिया कि हमें काम करने का अवसर दें, कार्य उत्तम रीति से किया जाएगा, परंतु जिलाधीश सीनियर वाइस चेयरमैन का चुनाव टालते रहे। सतत उनके पीछे पड़ने पर दि. 27 जनवरी को उन्होंने जिला न्यायाधीश को लिखा कि इनके चुनाव के लिए आप दिन निश्चित करें।

जिला न्यायाधीश महोदय ने दि. 7 फरवरी, 56 का दिन सीनियर वाइस चेयरमैन के निर्वाचन के लिए निश्चित किया, परंतु जिलाधीश ने फिर अड़ंगा लगाया तथा जिला न्यायाधीश महोदय

को लिखा कि इतने शीघ्र वह काम नहीं हो सकता, अतः आज 17 फरवरी के बाद की तारीख रखें। परिणामस्वरूप जिला न्यायाधीश महोदय ने 20 फरवरी को दोपहर डेढ़ बजे नगरपालिका के सीनियर वाइस चेयरमैन के निर्वाचन के लिए बैठक रखी। इस बीच बोर्ड सुपरसीड करने की कोशिश होती रही।

विरोधी गुट ने, जो नगरपालिका सुधार समिति में सम्मिलित नहीं था, बोर्ड खत्म करने के लिए सरकार को तार दिए। नगर के गण्यमान्य लोगों ने सरकार की बोर्ड खत्म न करने के लिए तार तथा लिखित निवेदन भेजे। ऐसी स्थिति में बोर्ड खत्म करना अलोकतांत्रिक होगा, जनता की ओर से इस प्रकार का अनुरोध भी किया गया।

दिनांक 27 जनवरी को मुख्यमंत्री हरिद्वार आए हुए थे। उनसे भी नागरिकों का प्रतिनिधिमंडल मिला। नगरपालिका सुधार समिति के लोग भी मिले। बोर्ड ठीक चलाने का उन्हें आश्वासन दिया गया। कहा गया कि आप 6 माह अवसर देकर देख लें, काम ठीक न चले तो बाद में आप बोर्ड को खत्म कर सकते हैं। उनके रुख से आशा दिखाई दी। आचार्य जुगुल किशोर से भी लोग मिले। उन्होंने भी विचार करने के लिए कहा। दिनांक 3 फरवरी को श्री अलीजहीर स्वायत्त शासन विभाग के मंत्री श्यामली आए थे। उनसे भी लोग मिले। सारी स्थिति उनके सामने रखी। लिखित आश्वासन दिया। चार्जशीट पर भी बातचीत हुई। उन्होंने कहा कि सरकार का इरादा बोर्ड सुपरसीड करने का नहीं है, परंतु उनका एक वाक्य अत्यंत अजीब था। उन्होंने कहा था कि जिले के नेता श्री अजीत प्रसादजी वगैरह जैसा कहेंगे किया जाएगा। इसका अर्थ ही था कि सरकार का इरादा न होते हुए भी नेताओं की ही बात मानी जाएगी।

दिनांक 20 फरवरी की दोपहर डेढ़ बजे बोर्ड की मीटिंग हुई। सीनियर वाइस चेयरमैन का चुनाव हुआ। तुरंत उन्होंने बोर्ड का चार्ज लिया और काम प्रारंभ किया तथा दिनांक 24 फरवरी को फिर से बोर्ड की मीटिंग घोषित की। दिनांक 20 की शाम को ही सहारनपुर में इनकम टैक्स ऑफिसर की लड़की का विवाह था। उसमें जिलाधीश महोदय ने बोर्ड सुपर होने की बात कही। श्री जमशेद को भी यह खबर बताई गई, फलस्वरूप उन्होंने नगर में मिटाई बांटी तथा आतिशबाजी भी छुड़ाई। जनता को आश्चर्य हुआ। 20 की रात में जिलाधीश फोन पर मिले नहीं। 21 की प्रातः मुझे उन्होंने बताया कि मेरे पास आशा आ चुकी है।

नगरपालिका के जनसंघी सदस्य श्री मोहनलालजी ने प्रातः 6 बजे जिलाधीश से पूछा कि प्रादेशिक सरकार का वेरीफिकेशन किस दिन निकला है। जिलाधीश ने बताया कि 21 फरवरी को ही निकला है। उन्होंने 20 की शाम को ही यह खबर कहां से दी, पूछने पर वे निरुत्तर रह गए। 21 को ही 12 बजे तक एक्जीक्यूटिव ऑफिसर ने इस नोटिफिकेशन की प्रतियां साइक्लोस्टाइल कराकर नगरपालिका सदस्यों तक पहुंचा भी दी, जिसका क्रमांक निम्न प्रकार है।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विरोधी दल के हाथ में एक साधारण न्यायपालिका को जाते देखकर लोकतंत्र का गला घोटने के लिए कांग्रेस सरकार के दफ्तर कितनी चुस्ती से काम करते हैं। जिस दिन लखनऊ सेक्रेटेरिएट में नोटिफिकेशन होता है, उसी समय सहारनपुर के सब



विराट् पुरुष

सदस्यों के पास उसकी प्रतियां पहुंच जाती हैं। इन सब बातों में कांग्रेस नौकरशाही का किस प्रकार उपयोग कर रही है, यह समस्त घटना से स्पष्ट है। जिलाधीश ने दि. 21 को तीन बजे से नगरपालिका का चार्ज लिया, वह न्यायपालिका के कार्यकारी अध्यक्ष से नहीं, परंतु श्री जमशेद अली खां से लिया, जिनका नगरपालिका से कोई संबंध नहीं रहा था। दुर्भाग्य का विषय है कि अपने न्याय हेतु कांग्रेस संपूर्ण शासन के ढांचे को अनुशासनहीन बनाती जा रही है तथा इस क्षेत्र की आस्था का हनन कर रही है।

□

पुलिस अत्याचार गांव में चरम पर

सीतापुर जिले में विशेष परिस्थिति निर्माण होने के कारण आपकी सेवा में यह लिखने के लिए मैं विवश हुआ हूं। आशा करता हूं कि आप अपने अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम में भी संपूर्ण पत्र को पढ़कर उक्त क्षेत्र की घटनाओं की अविलंब अदालती जांच कराकर अपराधियों को दंडित करेंगे।

सरकार की दलगत नीति की स्थापना का कर्तव्य पालन करने के लिए एडमिनिस्ट्रेशन जगह-जगह पर अशांति पैदा करने का जिम्मेदार बन रहा है। विरोधी दलों को समाप्त करने के लिए गुंडों को भड़का कर दंगे हो रहे हैं और कांग्रेसी सरकार अपने स्वार्थ को ध्यान में रखकर तमाशा देख रही है। जनसंघ को समाप्त करने के लिए पुलिस खुलकर काम कर रही है। 26 जुलाई के विधि निषेध के सभी नियमों का उल्लंघन हर गांव में हुआ। सरकारी दल ने पुलिस के सहारे प्रजातंत्र का गला घोटने का कृत्य किया है। ऐसी स्थिति में कार्यपद्धति के अनिवार्य अंग, विरोधी दल का जीवन असंभव हो रहा है।

ग्राम पंचायतों के चुनावों के ठीक पूर्व, फरवरी 1956 को हर गांव में जनसंघ के कार्यकर्ताओं को बुरी तरह पिटाया गया, जिसमें श्री शीतलजी हैं, जो हर गांव के एक गण्यमान्य व्यक्ति हैं, की हालत अत्यंत चिंताजनक हो गई थी। जनसंघ के कार्यकर्ताओं के खिलाफ झूठे मुकदमे दायर किए गए। इन सब के बावजूद जनसंघ वहां पूर्णरूपेण विजयी हुआ।

जनसंघ-कार्यकर्ताओं पर आघात

हमारे कार्यकर्ता श्री अंगनू जोशी को 14-7-56 को पिटाया गया, जिसके हाथ की हड्डी टूट गई, मगर रिपोर्ट धारा 323 के अंतर्गत लिखकर मामले को रफा-दफा कर दिया गया। श्री इंद्रपाल सिंह, साकिन कल्याणपुर, श्री बड़कऊ सिंह, साकितन फिरोजपुर को भी इसी प्रकार पिटाया गया। हर गांव में जनसंघ के प्रमुख कार्यकर्ता डॉ. बंशीधर का घर करीब 50-60 गुंडे 3 दिन तक घेरे रहे और हर गांव थाना घटनास्थल से एक फर्लांग से भी कम दूरी पर होने के

विराट् पुरुष

बावजूद पुलिस अनजान बनी बैठी रही। बजाय कुछ कार्यवाही करने के, उलटे श्री बंशीधर को ही डकैती में फांसने की कोशिश की गई।

जनसंघ की सभाएं भंग कराने की योजना

अखिल भारतीय जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय के हर गांव आगमन के समय आयोजित जनसभा को भंग करने की पूर्ण तैयारी कराई गई। ग्राम मुंद्रासन में पं. श्यामनारायण एडवोकेट, लखीमपुर की सभा तो उनकी उपस्थिति में ही भंग कर दी गई। जनसंघ के कार्यकर्ता श्री सरन कुर्मी को खूब पिटवाया गया। ग्राम गुरघप्पा के कदिले कुर्मी व श्रीराम लाल इत्यादि व्यक्तियों को मारा गया। 10 दिन तक घर से निकलने तक न दिया गया और आज भी जोगिया पुरवा गांव इसी आतंक के कारण आधे से अधिक खाली पड़ा है। कल्याणपुर के भी बरूर भाट नामक कार्यकर्ता को भी मारा गया, किंतु पुलिस ने गुंडों के विरुद्ध कोई कार्यवाही तो की ही नहीं, उलटे जनसंघ के कार्यकर्ताओं पर दो-दो मुकदमे चलाए। ये दोनों ही मुकदमे दि. 7-2-56 को साफ छूट गए और अदालत ने अपने फैसले में हर गांव पुलिस की तीव्र भर्त्सना की और साफ-साफ कहा कि दलगत नीति से प्रेरित होकर इन्हें झूठे केस में फंसाया गया है। इस प्रकार केस चलाकर जनता के धन को बेकार किया गया है। जनसंघ का कार्य करना इस प्रकार से राजनैतिक क्षेत्र में असंभव सा बनाया जा रहा है।

दयोगा की हटकतें

दि. 19-7-56 और 26-7-56 की घटनाओं ने तो इस प्रकार की ज्यादातियों की हद ही कर डाली है। जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने 12-7-56 की एक बैठक में, 26-7-56 को हर गांव क्षेत्र के किसानों का एक विशाल सम्मेलन हर गांव में, तीर्थ स्थान पर, दिन में दो बजे आयोजित करने की योजना बनाई और 10-7-46 को पूरे क्षेत्र में परचे बंटवाए, बाजारों में दुग्गी से प्रचार कराया और ग्राम-ग्राम में सम्मेलन की सफलता के लिए सभाएं आयोजित कीं। परचे का निकलना था कि पुलिस ने, जिन व्यक्तियों के नाम से पर्चा छपा था, उनको बुलाकर डराया-धमकाया और किसान संघ से संबंध-विच्छेद करने के लिए कहा। इन लोगों ने दारोगाजी का कहना न माना। फलस्वरूप सम्मेलन को दबाने की दूसरी चाल चली गई।

पुलिस की कारस्तानी

16-7-56 को जनसंघ के एक कार्यकर्ता को गुंडों द्वारा पिटवाया गया, उसका घर घिरवा लिया गया और उसकी रिपोर्ट भी थाने में दर्ज की गई तथा असली गुंडों के विरुद्ध कोई काररवाई करने के बजाय जनसंघ के 7 कार्यकर्ताओं को उनके घरों से पकड़कर बुलाया गया और थाने में बिना रिपोर्ट या वारंट के गिरफ्तार कर लिया, साथ में रिपोर्ट लिखाने के लिए आए व्यक्तियों को भी न छोड़ा। इन लोगों से 100-100 रुपए रिश्वत के मांगे गए और उनको इनकार करने

पर बुरी तरह पीटा गया, जिससे सभी को गहरी चोट आई। और भी, सरजू प्रसादजी के तो पैर की एक हड्डी ही तोड़ डाली गई। जिले के पुलिस कप्तान द्वारा कुछ सुनवाई न किए जाने पर, मजबूर होकर हर गांव के थानेदार के विरुद्ध एक इस्तगासा पिट्टे हुए व्यक्तियों को दायर करना पड़ा। यह स्मरणीय है कि मामले की रिपोर्ट इनकी गिरफ्तारी के काफी देर बाद दर्ज की गई।

उक्त कांड में उलझ जाने के पश्चात् सम्मेलन की सभी तैयारियां चलती रहीं और हमें आशा थी कि सम्मेलन बड़ा सफल रहेगा। ग्राम-ग्राम हमारे कार्यकर्ताओं ने दौरे करके देखा कि क्षेत्र में किसी अन्य पार्टी का कोई व्यक्ति नहीं है। परंतु 25-7-56 की रात्रि को हमारे कार्यकर्ताओं को यकायक सूचना मिली कि कम्युनिस्ट पार्टी के नाम से हमारे द्वारा पूर्व निश्चित समय व स्थान पर ही, सभा करने की घोषणा डुग्गी द्वारा की जा रही है और थाने के सिपाही तथा चौकीदार हर गांव क्षेत्र के ग्राम-ग्राम में साइकिलों से दौड़कर उक्त दिन व समय पर लाइसेंसदारों, ग्राम सभापतियों, मुसलिमियों, हिस्ट्रीशीटरों और अन्यान्य अवांछनीय तत्वों को विभिन्न उद्देश्य बतलाकर हर गांव थाने में, लाठी बल्लभ, कांते व बंदूकों से लैस होकर आने को कह रहे हैं और कतिपय लोगों के आने से मना करने पर, उनको डरा-धमका रहे हैं। दूसरे दिन हर गांव पहुंचने पर स्थिति स्पष्ट होने लगी। इसकी सूचना तार द्वारा सीतापुर के जिलाधीश महोदय तथा पुलिस कप्तान साहब को दी गई, किंतु कोई भी सहायता हमें नहीं दी गई। परिणामस्वरूप मजबूर होकर विरोधस्वरूप, हमारे कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया।

आतंक का साम्राज्य

देखते-देखते हर गांव थाने का चौक व सामने की सड़क हथियारबंद लोगों से भर गए। थाने से इन लोगों को हसिया हथौड़ेवाले दो झंडे दिए गए और यहां से करीब 1000 लोगों को कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर के सामने भेज दिया गया। यहां से वे लोग एक जुलूस के रूप में संगठित होकर जनसंघ, किसान संघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध उत्तेजनात्मक नारे लगाते, गालियां बकते हमारे कार्यालय के सामने पहुंचे, वहां बहुत देर तक प्रदर्शन करते रहे और बाद में हर गांव नगर में आतंक फैलाते हुए सभास्थल पर पहुंचे, जहां जी भरकर दो घंटे तक हमें गालियां देते रहे। बाद में वे फिर जुलूस के रूप में संगठित हुए और उन्होंने हमारे कार्यालय को घेर लिया। काफी देर तक भीषण नारेबाजी और गाली-गलौज करते रहे और हमारे कार्यकर्ताओं को ललकारते रहे। हर गांव के दारोगा साहब श्री मदनमोहन सिंह अन्य सिपाहियों के साथ न सिर्फ खड़े तमाशा देखते रहे, बल्कि बलवाइयों को बढ़ावा भी देते रहे और उक्त शक्ति प्रदर्शन के विसर्जित होने पर बीच चौराहे पर खड़े होकर, कितने बुलाए थे और कितने लाए की रिपोर्ट लेते हुए गुंडों की पीठ थपथपाते रहे। इसके पश्चात् करीब 250 गुंडे सरगना थाने के सामने जमा हुए और दारोगाजी ने सभी को सहायता के लिए धन्यवाद देते हुए 1-6-56 को नाहरपुर ग्राम में पुनः जमा होने की दावत दी।



विराट् पुरुष

इसी प्रकार आगामी 1-6-56 को नरहरपुर ग्राम में पुलिस के द्वारा अवांछनीय तत्वों को एकत्रित करके आतंक फैलाया जाएगा। इसी प्रकार के कार्यक्रम संपूर्ण क्षेत्र में आयोजित करके, जनसंघ के कार्य एवं प्रभाव को समाप्त करते हुए, जनसंघ के कार्यकर्ताओं पर सतत मुकदमे चलाने की हमारी रक्षक कही जानेवाली पुलिस की नीति है।



जनसंघ जन आशाओं का केंद्र

आज देश भर में प्रभावी विरोधी दल की आवश्यकता सब अनुभव करते हैं। कांग्रेस शासन के इतने शीघ्र पतन का कारण भी प्रभावी विरोधी दल का अभाव ही माना जाता है। यह सत्य भी है, परंतु विरोधी दल के आदर्श को प्रस्थापित करने का प्रयास कौन कर रहा है? विरोधी दल की जिम्मेदारी कौन अनुभव करता है? इस प्रकार शासन की बागडोर अपने हाथ में आ जाए, बस यही सबका लक्ष्य दिखाई पड़ता है। इसके लिए अधिकतम राजनैतिक दल राष्ट्रीय एकता विनाशक उपाय तक अपनाने में हिचकिचाते नहीं।

राजनैतिक क्षेत्र में 'समाजवादी समाज निर्माण' का आदर्श आमतौर से अपनाने की बात कही जा रही है। अंतर इतना है कि कोई इसे राष्ट्रीय समाजवाद कहता है और कोई अंतरराष्ट्रीय। परंतु ये केवल कोरी घोषणाएं या नारेबाजियां दिखाई पड़ती हैं। चुनाव जीतने के लिए जो उपाय अपनाए जाते हैं, वे इससे एकदम भिन्न हैं।

कम्युनल अवार्ड की पुनरावृत्ति

नए राज्यों का निर्माण होने के बाद नए मंत्रिमंडलों में एक मुसलमान अवश्य लिया जाए, यह घोषणा कांग्रेस हाईकमांड ने की। हमारे उत्तर प्रदेश में मुसलमानों की आबादी के अनुपात से उन्हें कम सीटें नहीं मिलनी चाहिए, यह उत्तर प्रदेश कांग्रेस पार्लियामेंट्री बोर्ड को आदेश मिला है और बरेली जिला कांग्रेस के विरोध के बाद भी मुसलमानों के लिए दो के स्थान पर तीन विधानसभा के स्थान सुरक्षित किए गए हैं। मानो फिर से 'कम्युनल अवार्ड' प्रारंभ हुआ है।

शासन की यह दुर्गति समाज में पृथक्ता की भावना की वृद्धि करनेवाली है। विरोधी दलों को इसका विरोध करना चाहिए था, परंतु हुआ इसके विपरीत ही। मान्यता प्राप्त विरोधी दलों ने भी उत्तर प्रदेश में उर्दू भाषा को क्षेत्रीय भाषा बनाने का आंदोलन अपने हाथ में लेकर मुसलमानों को अपने पक्ष में करने का प्रयास किया। किताब-कांड के समय तो ये विरोधी दल इतने संवेदनशील हुए कि मुसलमानों के देश-विघातक कार्यों को भी अपनी आंख के सम्मुख चुपचाप देखते रहे।

विराट् पुरुष

उसके विरोध में जाना मुसलमानों के वोट खोना समझा गया। यह बात यहां तक ही सीमित नहीं, विभिन्न जातियों को भी एक-दूसरे के विरोध में खड़ा कर चुनाव जीतने का प्रयास चल रहा है। इसके कारण देश में भयानक स्थिति निर्माण हो रही है। कांग्रेस शासन पर से तो जनता का विश्वास उठ ही चुका है, वह विरोधी दलों को भी अविश्वसनीय समझती जा रही है। कुछ गुटबाज अपने स्थानों के लिए राजनैतिक दलों का उपयोग करते दिखाई पड़ रहे हैं।

किंतु ऐसा कौन सा विरोधी दल है, जो शोषित-पीड़ित जनता की पुकार को सुनता हो, उसकी भलाई के लिए कार्य करता हो। भाषावार राज्य रचना के नाम पर लोगों को भड़काया जा सकता है, किंतु जन-जन के कष्टों का अनुभव कर उनको दूर करने का कार्य मानो दलों के नेताओं के मस्तिष्क से दूर ही भागता रहता है।

आशा की किरण-जनसंघ

परंतु जनसंघ एक ऐसा विरोधी दल है, जिसने अपने हितों का विचार न कर राष्ट्र के हितों को सर्वोपरि समझा है। जिस समय देश के सभी दल राज्य पुनर्गठन के प्रश्न को लेकर पृथकतावादी तत्वों को प्रोत्साहन प्रदान कर रहे थे, जनसंघ ने अपने संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बलिदान का आदर्श अपने समक्ष रखकर एकता का शंख तो फूँका ही, साथ ही शोषित-पीड़ित जनता के हितों की उपेक्षा भी नहीं होने दी। वैसे तो किसी भी प्रदेश के जनसंघ-कार्य के आधार पर इस बात को प्रमाणित किया जा सकता है, किंतु उत्तर प्रदेश जनसंघ के कार्य के आधार पर ही मैं उसे प्रमाणित करने का प्रयास करूंगा।

‘लगान आधा हो’ आंदोलन

उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 6,32,15,742 है। उसमें से 5,45,90,042 जन ग्रामवासी हैं। इनकी आजीविका विकास का प्रमुख साधन कृषि है। इनकी दशा शोचनीय है। अधिकतर किसानों के पास खेती करने के ठीक-ठाक साधन भी नहीं हैं। कांग्रेस ने इनके हित में जमींदारी खत्म कर बीच के मुनाफे पर पलनेवाले वर्ग को समाप्त करने की घोषणा की थी। आशा थी कि इससे किसान को राहत मिलेगी, क्योंकि किसान से वसूल होनेवाले लगान का लगभग 60 प्रतिशत जमींदार की ही जेब में चला जाता था। जमींदारी खत्म होने पर किसानों को विश्वास था कि लगान के इस बड़े भाग का लाभ उसी को मिलेगा। परंतु कांग्रेस शासन ने जमींदारी खत्म तो की, पर किसान के हित में कुछ भी नहीं किया। किसान से शत-प्रतिशत लगान वसूल किया जा रहा है। यह अन्याय समाप्त होकर जमींदार उन्मूलन का लाभ किसान को मिले तथा वह खेती के लिए उपयुक्त साधन जुटाकर समाज के लिए पर्याप्त अनाज पैदा कर सके और अपना जीवन भी सुखी बना सके, इसके लिए जनसंघ ने 10 मई, 1956 को ‘लगान आधा हो’ का प्रांतव्यापी आंदोलन प्रारंभ किया। युक्तिसंगत और यथार्थ आंदोलन होने के कारण यह ग्रामीण जनता में अत्यंत लोकप्रिय होता जा रहा है। इसका परिणाम है कि

आजकल ग्राम-ग्राम में किसान इस आंदोलन के निमित्त हस्ताक्षर-संग्रह करने में जुटे हुए हैं।

सिंचाई आंदोलन

सरकार ने इसी प्रकार किसानों के लिए एक और परेशानी बढ़ाई। सिंचाई के कर तिगुने से भी अधिक बढ़ा दिए हैं। किसानों पर इसके कारण अत्यधिक कर्जा बढ़ता जा रहा है। यहां तक कि कई किसान जो अपने खेत में बढ़ी हुई दरों के कारण पानी नहीं दे पाते और अपनी आंखों के सामने मेहनत से खड़ी की हुई फसल को सूखते देखकर आंसू बहाते हैं।

उत्तर प्रदेश में गन्ने की खेती होती है। इसके कारण चीनी की मिलें बहुत भागों में हैं। गन्ना लगाने के लिए किसानों को प्रोत्साहित भी किया जाता है, परंतु दुख के साथ कहना पड़ता है कि जो इन किसानों की दशा की ओर देखने के लिए भी तैयार नहीं, उन मालिकों ने अपने बड़े-बड़े फार्म बना लिए हैं। उनमें वे हजारों और लाखों मन गन्ना तैयार करते हैं। गन्ने में रस होता है, तब मिल मालिक फार्म का गन्ना मिलों में पेरते हैं। पहले इसने किसान पर अन्याय कर उसकी कीमत 1 रुपया 12 आना से 1 आना मन कर दी थी। गत सीजन के अंत में किसान को 14 से 12 आने मन तक गन्ना मिल को बेचने के लिए विवश होना पड़ा। यही नहीं हजारों एकड़ गन्ना भी सूख गया, किंतु इस वर्ष 'सीजन' एक महीना पहले पूरा किया गया है। यह ठीक है कि किसान के हित के लिए यह पर्याप्त नहीं। इसलिए जनसंघ ने मांग की है कि गन्ना मिलों में किसान की गाड़ी मिल के फाटक पर घंटे से अधिक नहीं रुकनी चाहिए। अभी तो तीन-चार दिन सामने खड़ी रहती है और किसानों व उनके बैलों का इंतजाम भी नहीं किया जाता। दूसरी मांग यह है कि भूमिहीन किसानों को उनके दाम हर साल दिए जाएं।

गलत नीति के चलते बेकारी

हमारे प्रदेश में शिक्षित ही नहीं अशिक्षित बेकारों की भी मात्रा बढ़ रही है। कारण है सरकार की नीति।

गांवों में मरे जानवरों का चमड़ा कानपुर या मद्रास टैन होने जाता है और बाटा जैसी बड़ी-बड़ी कंपनियों में चप्पल-जूते या अन्य चमड़े के सामान बनकर कस्बों और गांवों में पहुंचता है। इसी कारण ये वस्तु लोगों को महंगी तो मिलती ही हैं, चर्मकारों की रोजी भी छिन जाती है। परिणामतः बेचारा चर्मकार फटे जूतों पर टांके लगाने भर का काम कर रहा है। जनसंघ ने मांग की है कि उपभोग्य वस्तुओं का निर्माण केवल कुटीर और लघु उद्योग द्वारा ही किया जाए। यह नीति अपनाने पर बेकारी और महंगाई का झगड़ा समाप्त होगा।

बुनकरों की व्यवस्था

अपने प्रदेश में हमने मांग की है कि हर जिले में कम-से-कम एक छोटी टैनरी खोली जाए

विराट् पुरुष

और वह चमड़ा उस जिले में चमड़े का काम करनेवालों को दिया जाए। कला और योग्यता की दृष्टि से आवश्यक ट्रेनिंग भी दी जाए। सहकारी आधार पर उन्हें अपने उद्योग में लगाया जाए और बाटा तथा फ्लेक्स की विशेष सुसज्जित और व्यवस्थित दुकानों पर इनके माल की बिक्री हो या सहकारी संस्थाएं संगठित कर इनके माल की बिक्री की व्यवस्था की जाए। हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि चमड़े के कारीगरों को यह योजना इतनी पसंद आ रही है कि यह मांग प्रांतव्यापी बनकर अवश्य सफलता प्राप्त करेगी और एक बहुत बड़ा बेकार वर्ग काम में लग जाएगा।

इसी प्रकार हमारे प्रदेश के बुनकरों (जुलाहों) को पर्याप्त सूत नहीं मिलता, जिसके कारण जगह-जगह पर उनके करघे बंद हैं और उनके बुनकर बेकार हैं। जनसंघ की मांग है कि उत्तर प्रदेश की सब कपड़ा मिलें कपड़ा बनाने में अपनी शक्ति खर्च न करके केवल सूत का उत्पादन करें और गांव-गांव के बुनकरों को सूत प्रदान करें, जिससे लाखों बुनकर काम में लग जाएं और गांव के लोगों को सस्ता कपड़ा मिले। आज भी मिल के मुकाबले में करघे का कपड़ा सस्ता और मजबूत होता है।

मल्लाहों की समस्या

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में 50 लाख के ऊपर मल्लाह हैं। उनमें भी आज अधिकतम बेकार हो गए हैं। उनका आसाम से जलमार्ग से चलनेवाला व्यापार ठप्प कर दिया गया है। उनके तालाब, पोखरें छीन ली गई हैं। उनके जीवनोपार्जन की दृष्टि से कई सुझाव और मांगें हमने सरकार के सामने रखी हैं, और उनका प्रदेशव्यापी संगठन भी हमारे द्वारा खड़ा किया गया है।

उत्तर प्रदेश में सरकार इस समय चकबंदी की योजना लागू कर रही है। उसमें धनी और प्रभावी लोग सरकारी कर्मचारियों को लालच में फंसाकर अच्छी जमीन हथियाने में लगे हैं। निर्धन एवं अशिक्षित किसान पत्थर से मारा जा रहा है। जनसंघ के कार्यकर्ता उनको सहायता पहुंचाने का प्रयास कर रहे हैं। जनसंघ ने सरकार से मांग की है कि चकबंदी के निर्णय अधिकारियों के दफ्तर में न होकर संपूर्ण गांवों के लोगों के सम्मुख खुले रूप में विचार कर होने चाहिए, अन्यथा यह अन्याय बंद नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार जन-जीवन की कठिनाइयों को दूर कर परस्पर स्नेहमय जीवन निर्माण का आवश्यक कार्य भारतीय जनसंघ कर रहा है। इस प्रकार टोस कार्यक्रमों के आधार पर ही विरोधी दलों को कार्य करना चाहिए। समाज में विघटन, विद्वेष व स्वार्थ और जातीयता भड़काकर चुनाव जीतने का प्रयास करने के अभिशाप के विरुद्ध, दल के नाते अपना अस्तित्व, भारतीय जनसंघ का आदर्श, उस आदर्श की प्राप्ति के लिए सुनिश्चित कार्यक्रम एवं उसको चरितार्थ करने के लिए एक संगठन निर्माण कर राजनैतिक क्षेत्र में आदर्श प्रस्थापित करने का पावन काम करता हुआ सफलता की ओर जा रहा है।

□

इंदिरा की राजनीति

सत्तावाद की पराकाष्ठा

पंडित जवाहरलालजी को देश ने अपना नेता माना था। उनके नेतृत्व में अखंड भारत की स्वतंत्रता का सुहावना सपना जनता ने मन-ही-मन संजोया था। किंतु नेहरूजी ने देश का विभाजन स्वीकार किया और खंडित भारत के वे प्रधानमंत्री बने। आज 22 साल बाद उन्हीं की पुत्री ने स्वयं को प्रधानमंत्री बनानेवाली कांग्रेस को ही खंड-खंड कर डाला है, केवल निरंकुश सत्ता के उपभोग की अपनी कामना की पूर्ति के लिए।

कांग्रेस का विभाजन हुआ। अलग-अलग कार्यसमितियां बनीं और अध्यक्ष भी दो बने। भारतीय स्तर पर हुआ यह विभाजन प्रदेश में पहुंच चुका है। अब वह ग्राम-ग्राम तक पहुंचेगा। इसका परिणाम केवल कांग्रेसियों को ही भुगतना पड़ता तो चिंता का कारण न था। किंतु इससे देश की संपूर्ण राजनीति प्रभावित हो रही है। यही कारण है कि कांग्रेस के विभाजन की चर्चा हर एक की जबान पर है।

गांधीजी की अवहेलना

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय महात्माजी की इच्छा की अवहेलना करके नेताओं ने कांग्रेस को भंग नहीं किया और उसे एक राजनीतिक दल के रूप में परिणत कर दिया। उसके नाम से शासन की बागडोर संभाली। संभव है, वृद्धावस्था के कारण सिद्धांत, नीति और कार्यक्रमों के आधार पर नया दल गठित करने के साहस, विश्वास और परिश्रम-क्षमता की कमी को वे अपने में अनुभव करते रहे हों।

इसी कारण दोनों के मध्य सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण का जमीन-आसमान का अंतर होते हुए भी नेहरू और सरदार पटेल मिलकर शासन संचालन में अग्रसर हुए। इस निर्णय के फलस्वरूप अनजाने में ही क्यों न हो, भारत की राजनीति में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ अवसरवाद को प्रश्रय मिला। उसी का परिणाम आज देश को भोगना पड़ रहा है। इसका एक और भी अनिष्टकारी परिणाम हुआ। संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली

विराट् पुरुष

की सफलता के लिए विचारधारा के आधार पर दो दलों के विकास का मार्ग प्रारंभ में ही अवरुद्ध हो गया।

नेहरूजी अधिनायकवाद की ओर

स्वतंत्रता प्राप्ति के श्रेय से विभूषित कांग्रेस एकमेव देशव्यापी दल निर्द्वंद्व होकर शासन पर जम गया। इसका सत्ता पर एकाधिकार हुआ। सरदार पटेल के निधन के बाद संपूर्ण कांग्रेस नेहरूजी के प्रभावी व्यक्तित्व में समा गई। वे निरंकुश शासक बन गए। जो नेहरूजी कहें, वही कानून व्यवस्था बनी। यह अवस्था साधारणतः किसी भी शासक को 'सत्तानिष्ठ' बना देती है। वह अपने प्रतिद्वंद्वियों को पनपते नहीं देख सकता। इसी में लोकतंत्र के लिए खतरा छिपा रहता है और अंदर ही अंदर प्रशासन में घुन लग जाता है। नेहरूजी इसी अधिनायकवादी वृत्ति के शिकार बन गए। उन्हें स्व. डॉ. मुखर्जी का उभरता हुआ व्यक्तित्व अखरने लगा। जनसंघ की प्रगति उनकी आंखों में गड़ने लगी। उन्होंने जान-बूझकर जनसंघ को बदनाम करना आरंभ किया। मुसलमानों के मन में उसके नाम से वे एक हौवा खड़ा करने में लग गए। इस कारण मुसलमानों के वोटों को वे अपने पक्ष में बनाए रखने में अवश्य सफल हुए, किंतु इसका राष्ट्र के लिए महाभयानक परिणाम हुआ। उनकी इस सत्तावादी नीति के कारण सर्वसाधारण मुसलमानों के मन में मजहब के आधार पर अपना अलग राजनीतिक अस्तित्व बनाए रखने की भावना को बल मिला, जबकि देश विभाजन के बाद शेष भारत में भावात्मक एकता निर्माण करने की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी, किंतु सत्तावादी नीति महान् व्यक्तियों को भी अंध बनाकर कितनी गलत दिशा में ले जाती है, इसका यह एक नमूना है। इसी का परिणाम है कि आजादी के 22 वर्ष बीत जाने पर भी देश में भावात्मक एकता प्रस्थापित न हो सकी।

सत्तावादी समाजवाद का जन्म

शासन पर एकाधिकार होने के दुष्परिणाम प्रगट होने लगे। प्रशासन भ्रष्टाचार से ग्रसित होता गया। कांग्रेसियों में पद लिप्सा बढ़ती गई। भाई-भतीजावाद पनपने के परिणामस्वरूप कांग्रेस का अंतर्द्वंद्व चौराहे पर आने लगा। कांग्रेसी नेताओं के प्रति स्वतंत्रता संग्राम के काल में जनमानस में निर्मित श्रद्धा का बड़ी गति के साथ ह्रास होने लगा। जनता में कांग्रेसी हुकूमत के प्रति असंतोष बढ़ता गया। विरोधी दलों को बल मिलने लगा। यह सब नेहरूजी के लिए सह सकना कठिन था। अतः उन्होंने समाजवादी दलों को कमजोर करने की ठान ली। लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना को ताक पर रखा। कांग्रेस के द्वारा समाजवाद का नारा बुलंद किया गया। प्रतिद्वंद्वी समाजवादी दलों की हवा खिसकाने का उनका यह उपक्रम था। शासक दल की संपूर्ण राजनीति इसी एक दिशा में चली। सर्वसाधारण जन को सुखी करने की घोषणाएं केवल कोरे नारे बनकर रह गईं। सत्ता पर अपना एकाधिकार कायम रखना, यही एकमेव भाव मानस में बना रहा। सत्ता-लोभ शासकों के सिर पर सवार होकर नाचने लगा। अन्य दलों के प्रमुख व्यक्तियों को सत्ता का

प्रलोभन दिखाकर राजनैतिक जीवन में अनैतिकता फैलाई गई। अवसरवाद को बढ़ावा दिया गया। सत्ता के मोह में लोकतंत्रवादी कहे जानेवाले कांग्रेसी नेतृत्व ने इस प्रकार लोकतंत्र की जड़ों पर ही कुटाराघात किया।

सत्तालोभ के नशे में शासक वर्ग अर्थात् कांग्रेसी नेतृत्व आपादमस्तक डूबता गया। भारत के शासक वर्ग की यह हालत विश्व की महान् शक्तियों की नजर से छिपी न रही। एशिया भूखंड का नेतृत्व करने की क्षमता रखनेवाले इस देश की ओर इन सबकी पैनी नजर लगी हुई थी। उनके इरादे भारत को अपने प्रभाव क्षेत्र में रखने के रहे हैं। इसी कारण हमारे सत्तालोभी नेताओं को अपनी ओर आकृष्ट करने का उनके द्वारा प्रारंभ से ही प्रयास होता रहा। नेहरूजी का समाजवाद का मोह उन्हें सहज ही रूस और चीन की ओर अधिक आकृष्ट करता गया। फलस्वरूप अपने देश में इन दोनों देशों की प्रेरणा व सहायता पर चलनेवाले कम्युनिस्टों को पनपने का पूरा अवसर मिला। नेहरूजी की छत्रच्छाया में कांग्रेसी जामा पहनकर अनेक कम्युनिस्टों को सत्ता के अति महत्व के स्थानों पर आरुढ़ होने में भी सफलता प्राप्त हुई।

सत्ता पर कांग्रेसी एकाधिकार खत्म

1967 के चुनाव में अनेक प्रदेशों में कांग्रेस का सत्ता पर एकाधिकार ध्वस्त हो गया। जिन प्रदेशों में कांग्रेस का बहुमत समाप्त हुआ, उनमें से दिल्ली और तमिलनाडु को छोड़कर अन्य किसी प्रदेश में कोई एक वैकल्पिक दल स्वयं को पूर्ण बहुमत में न ला सका। तमिलनाडु में जिस दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ, वह द्रविड़ मुनेत्र कड़गम केवल एक क्षेत्रीय दल है। अतः केवल दिल्ली में ही जनसंघ के रूप में एक अखिल भारतीय दल कांग्रेस का विकल्प बनकर पूर्ण बहुमत में प्रगट हो सका। अन्यत्र किसी एक दल के बहुमत के अभाव में मिली-जुली सरकारें बनीं, किंतु वे कमजोर और अस्थिर सिद्ध हुईं। बंगाल और केरल में चीनवादी कम्युनिस्ट प्रभावित सरकारें बनी थीं। उन्होंने प्राप्त सत्ता का उपयोग जनहित के लिए नहीं किया। अन्य सहयोगी दलों को खत्म करना और राज्य में आतंक एवं अराजकता फैलाना, इसी में उन्होंने अपनी शक्ति व्यय की। उनका साहस इतना बढ़ गया कि आज उनके नेता खुलेआम घोषणा कर रहे हैं कि हम शासन हाथ में लेकर भारत के वर्तमान लोकतांत्रिक संविधान को अंदर से ध्वस्त कर डालेंगे और अपने ढंग की हुकूमत अर्थात् तानाशाही कायम करेंगे।

इन्हीं के माध्यम से रूस और चीन की शक्ति भारत की केंद्रीय सत्ता को अस्थिर और कमजोर बनाने के चिरवांछित कार्य में संलग्न हुई। इंदिराजी की सत्ता-लोलुपता का पूरा लाभ उठाने में वे सफलता पाते गए। इंदिराजी के प्रधानमंत्री बनने के बाद उनको चारों ओर अपना वलय फैलाने का उन्होंने बड़ी कुशलता से काम किया। इसमें अधिक सफलता पाई रूसवादी कम्युनिस्टों ने। इंदिराजी की प्रशंसा के पुल बांधकर उन्हें अहंकार की चोटी पर चढ़ा देने की उनकी चाल सफल होती गई। राष्ट्रपति पद के चुनाव के अवसर का उन्होंने पूरा लाभ उठाया। कांग्रेस को विभाजित कर इंदिराजी को अपने ऊपर अवलंबित बनाने में वे सफल हुए। आबादी अधिवेशन में अपनाए गए समाजवाद

विराट् पुरुष

के नारे के जाल में फंसे सत्तारूढ़ नेतृत्व के सत्ता पर एकाधिकार बनाए रखने का लालच कहां से कहां पहुंचा सकता है, इसका यह अनोखा उदाहरण है।

कम्युनिस्टों पर निर्भर रहने की अपनी विवशता को इंदिराजी जानती नहीं, यह कहना गलत होगा। सत्ता का नशा ऐसा अजब है कि समझकर भी व्यक्ति उसी में डूबे रहना चाहता है। देश का चाहे कुछ भी हो, इंदिराजी अब इस विवशता से छुटकारा नहीं पा सकतीं। वह उसी में छटपटाती रहेगी। उन्हें इस बात का भली-भांति अनुमान है कि भारत की जनता कम्युनिस्टों को पसंद नहीं करती। इसी कारण इंदिराजी आए दिन घोषणा किया करती हैं कि वह न कम्युनिस्ट हैं, न कम्युनिस्टों के प्रभाव में काम कर रही हैं।

उनकी इन घोषणाओं का अर्थ क्या है? वे समझती हैं कि उनका असली रूप जनता पहचान रही है। 1969 के मध्यावधि चुनाव के बाद बंगाल में फिर से कम्युनिस्ट प्रभावित सरकार बनी। कम्युनिस्टों को खुलकर खेलने के लिए श्री धर्मवीर जैसे राज्यपाल चल नहीं सकते थे। अतः धर्मवीर को हटाकर कम्युनिस्टों के लिए पूर्ण रूप से अनुकूल श्री धवन को इंग्लैंड से बुलाकर इंदिराजी ने कम्युनिस्टों के इशारे पर बंगाल का राज्यपाल बनाया। इसी प्रकार कहीं दूर से संदेश पाकर केरल में चीनवादी नंबूदरिपाद मंत्रिमंडल के पतन के बाद वहां रूसवादी कम्युनिस्ट श्री अच्युत मेनन को, विधानसभा में उनका बहुमत है या नहीं, इसकी जांच किए बिना ही मुख्यमंत्री पद पर आरूढ़ कर दिया।

इंडियन एयरलाइंस कॉरपोरेशन के चेयरमैन की जगह खाली होते ही इस अति महत्व के स्थान पर कम्युनिस्ट मानस के श्री मोहन कुमार मंगलम को अधिष्ठित करने के संकेत का चुपचाप पालन किया गया। केवल सत्ता में ही नहीं तो इंदिरा गुट की कांग्रेस की नीति निर्धारण करनेवाली कार्यसमिति में भी तीन कम्युनिस्टों को प्रविष्ट कर नीति-निर्धारण का कार्य कम्युनिस्टों के हाथ में सौंपने का मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं सब पापों के कारण जनता की आंखों में धूल फेंकने हेतु इंदिराजी “मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ, मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ” यह रट लगाए रहती हैं।

अराजकता की गोद में देश

इसके अतिरिक्त भी अनेक बातें हैं, जो जनता देख रही है। बंगाल में न किसी का जीवन सुरक्षित है, न महिलाओं की इज्जत। वहां के मुख्यमंत्री असहाय बनकर शांति और व्यवस्था की भीख के लिए भूख हड़ताल कर अपनी विवशता प्रगट कर रहे हैं। इतने पर भी इंदिराजी की केंद्रीय सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी है।

कम्युनिस्टों के खिलाफ कोई कदम उठाने का वे साहस नहीं कर सकतीं। प्रधानमंत्री का कुरसी के प्रति मोह जन साधारण और देश के अस्तित्व के लिए कितना खतरनाक बन सकता है, इसका श्रीमती इंदिराजी एक नमूना पेश कर रही हैं।

इस स्थिति में सर्व साधारण जन असमंजस में पड़ा हुआ है। कांग्रेस के दो गुट हो जाने के कारण वे केंद्र में भी अल्पमत में हो गई हैं। अन्य कोई एक दल बहुमत पाने की स्थिति में नहीं

है। 1967 के बाद मिली-जुली सरकारों का अनुभव निराशाजनक रहा। निरंतर बढ़ती हुई अराजकता, दंगों के काल में पुलिस की असफलता और इसी कारण सेना का बुलाया जाना, जनता के मन में भविष्य के प्रति आशंका निर्माण कर रहा है। अहमदाबाद में दंगे के काल में कम्युनिस्ट संसद् सदस्य श्री भूपेश गुप्ता की गतिविधियां खतरे के रूप में प्रगट होती हैं।

कम्युनिस्ट समझ रहे हैं, उनके लिए इच्छित वातावरण तैयार हो रहा है। पाकिस्तानपरस्त मुसलिम लीग जैसे तत्वों को हाथ में लेकर सत्तारूढ़ इंदिराजी उन्हें खुलकर खेलने की छूट दे रही हैं। पूर्व और पश्चिम में फैले पड़ोसी पाकिस्तान एवं उत्तर में रूस तथा चीन की इस दशा को देखकर लार टपक रही है।

इस परिस्थिति में कितना सतर्क रहकर काम करने की आवश्यकता है, इसकी कल्पना राष्ट्रवादी विचारकों के मन में स्थान पा रही है। राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक दलों के नेतागण चिंतित अवश्य हैं, किंतु निर्णयात्मक कदम बढ़ाने में अभी उन्हें समय लगेगा, ऐसा दिखाई पड़ता है। फलस्वरूप आवश्यक मार्ग प्रशस्त करने के लिए विचारपूर्वक पहल करने की स्थिति आ पहुंची है।

वर्तमान परिस्थिति में मिली-जुली सरकारें एक सामयिक अनिवार्यता है, किंतु गत अनुभव से लाभ उठाना होगा। चाहे जिन तत्वों का मिलन लाभकर नहीं होता। राष्ट्रवादी दलों एवं तत्वों का ही परस्पर सहयोग समय की आवश्यकता निभा सकता है।

समाजवाद से ब्राह्मणवाद तक

कांग्रेस के दोनों गुट शक्ति-परीक्षण में जुटे हुए हैं। कौन अधिक समाजवादी है, यह सिद्ध करने की होड़ में वे जुटे हैं। इंदिरा गुट कम्युनिस्टों के हाथ में है। कम्युनिस्ट देश के आर्थिक ढांचे को अस्त-व्यस्त करना अपने लक्ष्य के लिए आवश्यक समझते हैं। अतः समाजवादी नारेबाजी में निजलिंगप्पा गुटबाजी नहीं कर सकता। इंदिरा गुट के कुछ लोग निजी संपत्ति के मूलभूत अधिकार को अमान्य करने की बातें करने लगे हैं। कम्युनिस्ट यही चाहते हैं। समाजवादी नारेबाजी से निजलिंगप्पा गुट अनजाने में और अप्रत्यक्ष रूप से कम्युनिस्ट षड्यंत्र को ही बल पहुंचा रहा है।

इंदिरा गुट अनेक मायावी चालें चला रहा है। एक ओर वह मुसलिम लीग को अनुकूल बनाकर मुसलमानों को आकर्षित करने में जुटा है, द्रमुक, अकाली दल, हरिजन आदि की संकुचित भावनाओं को उभाड़ रहा है, भूतपूर्व नरेशों एवं पूंजीपतियों को अपने शिविर में बटोर रहा है, तो दूसरी ओर ब्राह्मणवाद का भूत भी खड़ा करने की कोशिश में लगा है। इंदिरा-शिविर में ही वह प्रश्न पूछ जाने लगा है कि क्या कारण है, इंदिराजी ने देश का राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति ब्राह्मण को बनाया है? प्रधानमंत्री ब्राह्मण है ही। उनकी कांग्रेस के अध्यक्ष ब्राह्मण, दोनों महामंत्री ब्राह्मण, कोषाध्यक्ष ब्राह्मण, कार्यसमिति में मध्य प्रदेश के चारों प्रतिनिधि ब्राह्मण हैं। उ.प्र. और बिहार में ब्राह्मण विधायकों के कान में कहा जा रहा है कि इंदिराजी चाहती हैं कि उत्तर प्रदेश और बिहार में मुख्यमंत्री भी ब्राह्मण बने। बिहार के संसोपा विधायकों की शिकायत है कि इस प्रचार का

विराट् पुरुष

असर उनके कुछ विधायकों पर भी हुआ है। कृष्णवल्लभ सहायजी के कुछ ब्राह्मण सहायक भी इस जाल में फंस गए हैं। इंदिराजी के सत्तावादी समाजवाद का असली रूप क्या है, इसके ये कुछ उदाहरण हैं।

संयुक्त समाजवादी दल के कुछ नेता इंदिरा गुट के खतरे से परिचित दिखाई पड़ते हैं, किंतु वे अंतर्द्वंद्व से मुक्त नहीं हैं। उनमें से कुछ व्यक्तियों पर इंदिराजी का जादू चलता दिखाई पड़ता है। जीवन भर समाजवाद का नारा लगानेवालों की यह स्थिति देखकर आश्चर्य होता है।

इस माया जाल की कारा से राष्ट्र को मुक्त करा सकनेवाला शस्त्र केवल प्रखर राष्ट्रवाद ही हो सकता है। राष्ट्रभक्ति की भावना सुप्त होगी, किंतु जनमानस में वह विद्यमान अवश्य है। राष्ट्रीय संकट के काल में वह प्रगट हुई है। आज भी जब अंतर्बाह्य संकटों में देश का अस्तित्व खतरे में पड़ा है, यही एक भावना हमारा सहारा बन सकती है। इसी आधार पर हम लोकतांत्रिक राष्ट्रवादी तत्त्वों को, जो विभिन्न दलों में बंटे हुए हैं, एक साथ ला सकते हैं। इनका एकीकरण ही इस अस्थिरता के काल में मिली-जुली, किंतु मजबूत सरकार का निर्माण कर सकता है। वर्तमान कम्युनिस्ट षड्यंत्र विफल करने का यही एक साधन है। हमें राष्ट्रद्रोही अराजक तत्त्वों का केवल चुनाव में ही नहीं सड़कों पर भी मुकाबला कर उन्हें परास्त करना पड़ेगा। कारण, वे राजनीति को सड़कों पर लाने के लिए तुले हुए हैं।

कम्युनिस्ट योजनाएं

वे अनुभव कर रहे हैं कि लोकतांत्रिक पद्धति से उनके लिए बंगाल या केरल में भी इससे अधिक सफलता पाना असंभव है। अन्य प्रदेशों में तो वे इतनी भी सफलता नहीं पा सकते। यही कारण है कि उन्होंने उन दो प्रदेशों में सत्ता का उपयोग आतंक और अराजकतावादी तत्त्वों को ही संगठित तथा मजबूत करने में किया है।

रूसवादी कम्युनिस्ट सत्तारूढ़ इंदिरा का साथ देने के कारण और अपने नारे इंदिरा गुट से लगवाने के कारण वे अपने प्रभाव क्षेत्र में जनता से दूर हटते जाएंगे। उनकी खतरनाक योजना स्पष्ट है कि वे इंदिराजी की सहायता से कांग्रेस के संगठन को अपने प्रभाव में करना चाहते हैं तथा बाद में सेना एवं प्रशासन के महत्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा करने का प्रयत्न करेंगे। अतः इंदिराजी को यथाशीघ्र सत्ता से च्युत करना आवश्यक है। इसी से रूसवादी कम्युनिस्टों एवं रूस के इरादों को विफल किया जा सकता है।

चीनवादी कम्युनिस्ट तो सड़क की राजनीति को ही सार सर्वस्व मानते हैं। वे केंद्रीय सरकार को कमजोर बनाकर सड़क की राजनीति के लिए अनुकूल वातावरण बना रहे हैं। देश में दंगों के द्वारा अशांति और आतंक निर्माण करने की मुसलिम लीग जैसे अनेक पाकिस्तानवादी तत्त्वों की क्षमता का उपयोग करने के कम्युनिस्ट षड्यंत्र को समझ पाना अब कठिन नहीं रहा। इन्हीं सब कारणों से सड़क पर खेली जानेवाली राजनीति का व्यापार बढ़ सकता है। वर्तमान काल स्पष्ट बता रहा है कि अब राजनीति केवल चुनाव, विधानसभा और लोक सभा तक सीमित नहीं रही।

कम्युनिस्टों के प्रयत्नों से वह सड़क पर और मैदान में उतर रही हैं। इसके प्रत्यक्ष दृश्य बंगाल और केरल में नित्य प्रति देखने को मिल रहे हैं।

केंद्रीय सत्ता की अस्थिरता और कमजोरी का लाभ उठाकर विदेश निष्ठा से प्रेरित तत्त्व देश में जहां संभव हो, वहां अपनी प्रभुसत्ता खड़ी करने का भी सोच सकते हैं। बंगाल और केरल में यह खतरा संभव है। इन क्षेत्रों को अपना केंद्र बनाकर अपने विदेशी सत्ताधीश प्रेरकों से प्राप्त आर्थिक एवं शस्त्रों की सहायता के बल पर वे अपना क्षेत्र विस्तार करने की योजना बना सकते हैं।

राष्ट्रनिष्ठा बनाम विदेशी निष्ठा

इन सब संभावनाओं पर गहराई से विचार कर योजनाबद्ध रीति से विभिन्न दलों में बंटे राष्ट्रीय भावना से प्रेरित व्यक्तियों को एकत्र करने के प्रयासों को विशेष गति देनी होगी। इन सब कार्यों के लिए जनसंघ सुसंगठित सुदृढ़ दुर्ग बनकर प्रगट हुआ है। इसी कारण तीनों कम्युनिस्ट दल अपनी गतिशीलता तेजी से बढ़ा रहे हैं। जनसंघ की शक्ति व्यापक और प्रभावी बनकर सभी राष्ट्रवादी तत्वों को एकत्रित करने में सफल हो इसके पूर्व ही वे अपनी लक्ष्य सिद्धि कर लेना चाहते हैं। इसी कारण वे एक ओर जनसंघ को बदनाम करने के लिए उसके विरुद्ध कुप्रचार कर बिखरे हुए राष्ट्रवादी तत्वों को जनसंघ के साथ आने में बाधा-निर्माण करना चाहते हैं, दूसरी ओर अपनी विध्वंसक गतिशीलता तेज करते जा रहे हैं।

अब राष्ट्र-निष्ठा और विदेश-निष्ठा का प्रत्यक्ष संघर्ष छिड़ गया है। राष्ट्र-निष्ठा को विजयी बनाने का भारत की सजग संतान का दृढ़ संकल्प है।



भीषण जलसंकट किसानों की दुर्दशा का कारण

जयपुर में हुई जनसंघ की भारतीय कार्यसमिति के निर्णय के अनुसार मैं महाराष्ट्र के अकाल पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करने गया। धौलपुर जिले से प्रयास प्रारंभ करना था। अंत में बंबई पहुंचा। मुझे बंबई स्टेशन पर ही अकालग्रस्त क्षेत्रों से आए हुए महिला-पुरुष एवं बच्चों की भीड़ देखने को मिली। इसमें अधिकांश किसान परिवार ही हैं। इनसे बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि पेयजल के अभाव से परेशान होकर ही वे शहरों की ओर चल पड़े हैं। चारों ओर भगदड़ है।

धौलपुर, उस्मानाबाद, बीड़ और औरंगाबाद जिले में अकालग्रस्त क्षेत्रों को मैंने व्यापक भ्रमण किया। दिन में गांव के गांव सुनसान नजर आते थे। किसी-किसी घर में केवल अतिवृद्ध या बीमार व्यक्ति देखने को मिले। गांव के कुछ लोग अपने प्यारे जानवरों को लेकर उड़ती खबरों के आधार पर चारे पानी की आशा में कहीं-न-कहीं खाना पाने के लिए गांव छोड़कर जा चुके थे। शेष सब सुबह उठकर मील दो मील यहां तक कि 6-7 मील पर सरकार द्वारा अकाल पीड़ितों के लिए चलाए गए राहत कोषों पर मजदूरी करने पहुंचते हैं।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए हमें अति कृशकाय पशु चारे-पानी की खोज में भटकते नजर आए। कहीं-कहीं मृत्यु की प्रतीक्षा में पड़े दयनीय अवस्था में दिखाई पड़े। कुछ गायों और बैलों के गले में लोगों द्वारा चिपकाए लटकाए कागज देखने को मिले। कौतूहलवश पास में जाकर देखते थे, उन कागजों पर निम्नलिखित बातें पढ़ने को मिलीं—

- अकाल से बचे तो वापस पानी की अपेक्षा है।
- कृपया इसे कसाईखाने तक ले जाएं।
- चारा-पानी दे सकें तो इसे आप अपना ही समझकर रख लें।

इस क्षेत्र में इस समय गाय और बैलों के दाम बकरे की खाल से भी कम है। उस्मानाबाद जिले के निवासी दाबूजी ने दो साल पूर्व पांच-पांच सौ रुपए में खरीदे अपने चार बैलों को डेढ़ साल पहले पंद्रह-पंद्रह रुपए में बेच दिया, किंतु अब इससे भी कम दाम पर कसाइयों के अतिरिक्त जानवरों को खरीदनेवाला कोई नहीं मिलता। चारों ओर भगदड़ मची है।

मनुष्यों का क्या हाल होगा

इस समय के काल में हम लोग धौलपुर जिले के पंडरपुर नगर में पहुंचे। वहां श्री तनपुरे महाराज के आश्रम में 1000 के लगभग गाय देखने को मिलीं। उनका आश्रम इन गायों की सेवा में जुटा हुआ है। आस-पास के लोग अपनी गायों को चुपचाप वहां छोड़ जाते हैं। इन गायों की हालत देखी नहीं जा सकती—इतनी दयनीय है, नई और जवान गाएं भी मरणासन्न स्थिति में पहुंची हुई हैं। अनेक जगहों पर चारे-पानी बिना पशु मरते जा रहे हैं। भूखे कुत्ते इन पशुओं को खाकर पानी के अभाव में हिचकियां लेते तड़प-तड़पकर मर रहे हैं। जल के अभाव की इस समय ही यह स्थिति है, आगे चलकर गरमी के दिनों में इस पूरे इलाके में पानी के अभाव में पशुधन तो नष्ट हो ही जाएगा। मनुष्यों का क्या हाल होगा, यह कहना कठिन है।

भ्रमण करते समय सौ-सौ, दो-दो सौ की संख्या में पशुओं के काफिले चारे-पानी की आशा में विदर्भ की ओर जाते हुए देखने को मिले। उस्मानाबाद जिले के पचाडा तहसील में हांडुमरी नाम का ग्राम है। बहुत सालों से दूध के केंद्र के रूप में वह गांव प्रसिद्ध रहा है। कम-से-कम चार-पांच भैंसें रखने की इस गांवों के किसानों की परंपरा सी है। यह गांव चारे-पानी की दृष्टि से अत्यंत संपन्न माना जाता रहा है, किंतु इसी एक गांव का 600 भैंसों का काफिला लेकर गांव के 300 लोग विदर्भ के पुषद नामक स्थान के लिए चल पड़े हैं। वह महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री नाईक का निर्वाचन क्षेत्र है। सभी जानते हैं कि इस क्षेत्र में सिंचाई के विशेष साधन उपलब्ध होने के कारण यह क्षेत्र चारे-पानी की दृष्टि से संपन्न माना जाता है।

23 हजार गांव प्रभावित

महाराष्ट्र में अकाल की व्यापकता और भयानकता का अंदाज इसी से लग सकता है कि इस प्रदेश से कुल 37 हजार गांवों में से 26 हजार गांव में पीने के पानी का बहुत कष्ट है। लगभग 16 हजार गांवों में इसी समय जल का पूर्ण अभाव है। डेढ़-दो साल के बाद जलविहीन गांवों की संख्या 16-20 हजार गांवों में से 23 हजार गांव में पीने के पानी का बहुत कष्ट है। लगभग 16 हजार गांवों में इस समय जल का पूर्ण अभाव है। डेढ़-दो माह के बाद जलविहीन गांवों की संख्या 16-20 हजार तक पहुंचने का अनुमान है। एक जिले के जिलाधीश ने मुझसे कहा कि डेढ़-दो माह के बाद मेरे जिले में 60-70 प्रतिशत गांवों में पानी की बूंद भी देखने को नहीं मिलेगी।

ये अकालग्रस्त क्षेत्र लगातार तीन वर्षों से अनावृष्टि के कारण ग्रस्त हैं। तीन वर्ष में खेती की उपज नहीं के बराबर हुई है। इस वर्ष तो अधिकांश खेतों में खरीफ की फसल बोई ही नहीं जा सकी। जो खेत किसी ढंग से बोए गए थे, उनमें यह फसल उगी ही नहीं। यही हाल रबी की फसल का हुआ है। फलस्वरूप छोटे-बड़े किसान और खेतिहर मजदूरों की एक सी हालत बनी है। किसी के घर में अनाज का दाना नहीं है। सबके सब एक साथ सपरिवार मिट्टी तोड़ने या सड़क चौड़ी करने के लिए विवश हैं। इसी से वे अपना भरण-पोषण कर रहे हैं।

विराट् पुरुष

किसानों की दुर्दशा

उस्मानाबाद के बांधूली नाम के मिट्टी तोड़ने के केंद्र पर लगभग पांच हजार मजदूर काम पर है। इनमें से कितने खेतिहर मजदूर और कितने किसान हैं, यह जानने का मैंने प्रयास किया। ज्ञात हुआ कि इनमें 70 प्रतिशत से अधिक किसान हैं। बांधूली गांव का सबसे बड़ा किसान श्री दादूजी बाजीराव अपनी पत्नी, बेटी, बहू और लड़के के साथ मिट्टी तोड़ने के काम में जुटा है। इसकी खेती में से 27 एकड़ सिंचाई युक्त खेती थी। उसके खेत में बहुत बड़ा कुआं है। तीन साल पहले तक उसमें 20 फीट पानी रहता था। बिजली से चलनेवाला पंप इस कुएं में लगा हुआ है, उससे वह अपने खेत में से 27 एकड़ का रकबा सींचकर साल में दो फसल निकालता रहा। अड़ोस-पड़ोस के गांव के किसानों को वह बीज देता था। अनेक खेतिहर मजदूरों को उधारी पर अनाज देता था, किंतु दो साल से उसका कुआं सूख गया है। घर के गहने बेच कर डेढ़ साल उसने अपना परिवार का भरण-पोषण किया और लड़के की पढ़ाई के लिए 100 रुपए महीना भेजता रहा, किंतु अब उनके पास कुछ नहीं बचा। फलस्वरूप गत डेढ़ मास से वह सपरिवार मिट्टी तोड़ने में जुटा है। आदत न होने से पत्थर पर हथौड़े चला-चलाकर हाथों में फफोलों और जख्मों से परिवार के सभी सदस्य पीड़ित हैं, किंतु हाथ में पट्टियां बांधकर उन्होंने काम चला रखा है। उसके बिना रोटी की व्यवस्था अस्त-व्यस्त है।

कॉलज में पढ़नेवाला उनका लड़का पढ़ाई छोड़कर घर में बचे दो बैलों से बैलगाड़ी के द्वारा मिट्टी ढोने का काम कर मजदूरी पा रहा है। जब एक संपन्न किसान की यह हालत होती है तो शेष लोगों की क्या स्थिति होगी, सहज ही अनुमाननीय है। गांव के गांव एक ही सेंटर पर पहुंचकर मिट्टी तोड़ने या कहीं-कहीं खेती की बड़िग उभारने, तालाब खोदने और सड़कें चौड़ी करने के कामों में संलग्न हैं। अभी तक 20 लाख से अधिक स्त्री-पुरुष महाराष्ट्र में चलनेवाले लगभग दस हजार राहत केंद्रों पर मजदूरी पर जुटे हुए हैं। इनकी संख्या रोज बढ़ रही है। जनवरी तक ही यह संख्या 25 लाख से अधिक होने का सरकारी अनुमान है।

हृदयहीन व्यवस्था

मिट्टी तोड़ने के काम में वृद्ध और वृद्धाएं भी शामिल हैं। सात-आठ माह की गर्भवती महिलाएं भी कहीं मिट्टी तोड़ने में या मिट्टी पत्थर ढोने के काम में जुटी हुई हैं। यहां तक कि 15 दिन की असूता बहनें भी अपने नाजुक नन्हे शिशु को पीठ पर बांधकर कड़ी धूप में मिट्टी तोड़ने के काम में संलग्न हैं। काम के बिना किसी को मजदूरी मिलने का उदाहरण देखने को नहीं मिला। काम का दाम नाप पर निर्भर है। काम कम होने से दाम कम मिलता है। अतः सभी लोग पूरी ताकत से काम में जुटे दिखाई पड़ते हैं, किंतु उपर्युक्त अवस्था के कारण कई महिला-पुरुष कठोर काम करने की स्थिति में नहीं हैं। उनके लिए कोई विकल्प भी नहीं है। शारीरिक अवस्था के कारण उनके काम का नाप कम बैठता है। फलस्वरूप बहुत कम मजदूरी मिलने की शिकायत करते हुए ऐसी बहनों का कंठ रुंध जाता था और सिसकियां भरने से अधिक बोल नहीं पाती थीं। उनकी व्यथा भरी कथा सुनकर और देखकर हृदय विचलित हो जाता है, किंतु इस हालात में

कानूनी कठोरता की हृदयहीन व्यवस्था अखरने लगती है।

ऊपर वर्णित वस्तुस्थिति से अकाल की विकरालता का सहज में ही अनुमान लग सकता है। लगातार गत तीन वर्षों के अवर्षण के कारण ही अकाल ने इतना व्यापक रूप धारण किया है।

अकाल के स्थायी उन्मूलन का प्रयास हो

इस वास्तविकता से परिचित होते हुए भी सत्तारूढ़ नेतृत्व ने आज तक इस ओर घोर दुर्लक्ष्य किया है। हर तीसरे-चौथे साल आनेवाले अकाल के काल में सरकार लाखों लोगों के लिए राहत कार्य उपलब्ध कराने में ही अपना इतिकर्तव्य मानती है। इस अकाल में भी राहत कार्यों पर प्रति माह 25 करोड़ रुपए मजदूरी पर खर्च हो रहा है और यह बढ़ेगा ही। यह अकाल बहुत लंबा चलेगा। काम पर आनेवालों की संख्या ऊपर पहुंचेगी। राहत कार्यों में लोगों को मजदूरी तो मिलेगी, किंतु अकाल को निर्मूल बनाने में इससे मदद नहीं मिलेगी।

संकल्पवान जिलाधीश

हम उसी जिले से सटे दूसरे जिले में गए। इस जिले में भी पानी का स्थायी स्रोत नहीं है। साठ प्रतिशत लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। इतनी भीषण स्थिति होगी इसकी कल्पना नहीं थी। इसका मुकाबला करने के लिए योजना बनाई। 75 ऐसे स्थान खोजे गए जहां पर कुएं खोदे जा सकते हैं। प्रशासन की औपचारिकता के लिए ज्योलॉजिकल विभाग को राय देने के लिए ये योजना भेजी गई। विभाग ने कहा कि केवल चार जगहों पर कुएं खोदने की संभावना है। दल के नवयुवक सदस्यों को ये बात जंची नहीं। सभी जगहों के अनुभवी बूढ़े लोगों को भी यह राय पसंद नहीं आई। इन सभी जगहों पर खुदाई की गई। आश्चर्यजनक खुशी का विषय है 75 स्थानों में से 69 जगहों पर जल मिला।

दुर्भाग्य है कि ऐसे समय में भी प्रामाणिक अधिकारियों का अभाव रहता है, जहां ऐसे अधिकारी हैं भी, वे भी सत्तारूढ़ नेतृत्व की जी-हजुरी करते नजर आते हैं। हमें अपनी पूछताछ के दौरान ज्ञात हुआ कि अधिकांश किसानों के खेत बिना कुएं और बिना अन्य सिंचाई के साधन के हैं। उनसे बात करने पर उन लोगों ने इस कल्पना को बहुत पसंद किया। उन्होंने इस बात को भी कबूला कि हमारे खेत में पर्याप्त जल का कुआं तैयार कर दिया गया तो हम 15-20 वर्ष में छोटी-छोटी किशतों में उस कुएं पर आया हुआ व्यय वापिस करेंगे। इस क्षेत्र में भी बहुत थोड़े किसानों के खेत में अच्छे कुएं हैं। उन कुओं से पंप के द्वारा 15 एकड़ से 35 एकड़ तक की सिंचाई करनेवाले उदाहरण अकालग्रस्त क्षेत्र में भी आज मौजूद हैं।

सिंचाई व्यवस्था संभव

जिन खेतों में सिंचाई के लिए कुओं का निर्माण नहीं किया जा सकता, उनके लिए भी व्यवस्था संभव है। इस क्षेत्र का दौरा करने के बाद और सिंचाई की दृष्टि से निरीक्षण करने से ध्यान में

विराट् पुरुष

आया कि इस क्षेत्र में सिंचाई की व्यवस्था करना असंभव नहीं है। यह संपूर्ण क्षेत्र छोटी-बड़ी पर्वत शृंखलाओं से व्याप्त है। वर्षा के दिनों में इन पर्वतों पर से जल के बहाव के कारण अनेक नाले-नदियों का स्वाभाविक निर्माण हुआ है। इस प्रयास में दो ढाई सौ से अधिक गांवों के आस-पास से और खेतों के बीच से जाने का अवसर मिला। इनमें से मुझे कोई भी गांव नहीं मिला, जिस गांव के आस-पास दो चार नालों के पाट न हो। साथ ही इस इलाके में बहुत सी नदियों के घाट भी हैं। इन नाले और नदियों में वर्षा के दिनों के अलावा जल नहीं के बराबर रहता है। इन पाटों में ही छह-सात फीट खोदने पर पानी मिलता है। कहीं-कहीं पानी के लिए अधिक भी खुदाई करनी पड़ सकती है, किंतु पानी मिलने में इन पाटों में किसी भी प्रकार की शंका नहीं है। इन पाटों में कम चौड़े, पर्याप्त लंबे और छोटे-छोटे तालाब तैयार कर इस काल में भी लिफ्ट एरिेशन की व्यवस्था संभव है। किंतु इन दिशाओं में अभी तक न सोचा गया है, न कुछ किया ही गया है।

आगामी मानसून ने धोखा दिया तो भी उपर्युक्त रीति से पेय जल की और कुछ मात्रा में कृषि के लिए सिंचाई की व्यवस्था की जा सकती है।

कठिनाइयां व निराकरण

इन सब कामों के संबंध में जब विभिन्न जिलों के प्रशासकों से विचार-विनिमय करने का अवसर मिला उस समय उनके द्वारा कुछ कठिनाइयां उपस्थित की गईं। उनका कहना था कि सुझाए गए सब काम व्यावहारिक, लाभदायक और बहुत जरूरी हैं, इन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए, किंतु इन कार्यों को कार्यान्वित करने में हमें व्यावहारिक कठिनाइयां भी हैं।

सबसे बड़ी कठिनाई है ओवरसियरों की कमी की। इन सब कामों के लिए योग्य और अनुभवी ओवरसियरों की आवश्यकता है। दूसरी कठिनाई है, इन कामों के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, उन साधनों का अभाव और तीसरी कठिनाई जो सीमेंट की आपूर्ति—हो सकता है, यह सरकार पूरी कर दे। जहां तक ओवरसियरों की कमी का प्रश्न है, वह दूर करने की दृष्टि से दो उपाय किए जा सकते हैं—

इस समय राहत के चार प्रकार के काम चल रहे हैं—

- मिट्टी तोड़ने का,
- खेतों में वडिंग उभारने का,
- सड़कों को चौड़ी करने का, और
- कहीं-कहीं तालाब गहरे करने का।

इन चारों प्रकार के कामों का नाम लेने का और तदनुसार मजदूरी देने का काम ओवरसियरों को सौंपा गया है। यह नाप लेने का कार्य इतना सीधा-सादा है कि चार-चार दिन का प्रशिक्षण देकर अकाल क्षेत्र में राहत कामों पर काम करनेवाले लिखे-पढ़े विद्यार्थी और किसान बहुत अच्छी तरह से कर सकते हैं और इन सब ओवरसियरों को इन नाप लेने और मजदूरी देने के कार्य से मुक्त कर जल उपलब्धि कराने के निर्माण कार्य में आवश्यकतानुसार लगाया जा सकता

है। दूसरा उपाय है, नए और बेकार इंजीनियर्स और ओवरसियर्स भरती कराकर उनका भी उपयोग इस कार्य के लिए किया जाए। मिलिटरी में इन कार्यों के तंत्र इंजीनियर्स और साधन सामग्री मौजूद है। उनकी सहायता भी इन कार्यों के लिए ली जा सकती है। अतः ओवरसियरों की कमी के कारण यह काम न कर पाने का कोई कारण नहीं है।

अपने सुझाए गए कार्यों में केवल पहाड़ों की घाटियों में खड़े किए जानेवाले बांधों के लिए ही सीमेंट की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। केवल आवश्यकता है, सरकार की ओर से इन कामों को महत्ता और प्राथमिकता देने की।

खेतों में हल की चिंता

मैंने राहत केंद्रों पर मजदूरी में जुड़े हुए किसानों से सहज में ही पूछा कि आपके खेत इस समय वैसे ही खाली पड़े हुए हैं? कारण जिन खेतों में रबी की फसल इन दिनों रहती, वह भी वर्षा अभाव से खत्म है। आगामी वर्षकाल के पूर्व आपके खेतों में हल चलाने का और वर्षा होते ही बोने के लिए खेतों को तैयार रखने का काम कब और कैसे किया जानेवाला है? इस प्रश्न से वे कुछ परेशान से हुए। बहुत दुःखी होकर कहने लगे—“बाबू साहब, खेतों में हल चलाकर खेतों को तैयार करने का काम तो अभी से चालू किया जा सकता है। खेत खाली पड़े हुए हैं। हल चलाकर जमीन नीचे ऊपर करने के बाद वह जितनी धूप खाएगी उतना ही अच्छा है। उससे जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। किंतु वह काम कैसे करें? उससे हमें मजदूरी कौन देगा? बिना मजदूरी के हम आज क्या खाएं और बच्चों को कैसे खिलाएं?”

यह ऐसी समस्या है, जिसके निराकरण का उपाय सोचना नितांत आवश्यक है। जून के पहले हल आदि चलाकर खेत को बोने लायक बनाए बिना वर्षा होने पर ठीक से बोआई नहीं की जा सकेगी। अतः अकालग्रस्त क्षेत्र में सभी खेतों में हल चलाने का कार्य राहत कार्य के रूप में प्रारंभ किया जाना चाहिए। इससे यह कार्य करनेवालों को मजदूरी मिलती रहेगी। वर्षा के पूर्व खेत तैयार कर लिए जा सकेंगे।

मजदूरी के विविध नियम

महिला-पुरुषों के अतिरिक्त अठारह वर्ष के अंदर के तरुण और युवतियां भी काम पर मजदूरी के लिए आती हैं। कानून से उन्हें काम नहीं दिया जा सकता। अतः न उसकी हाजिरी लगती है, न उन्हें मजदूरी ही मिलती है। फिर भी वे काम में जुटे हुए हैं। पति-पत्नी मिलकर काम करते हैं। काम का नाम खास है। पति-पत्नी और उनके जवान लड़के और लड़कियां भी काम में सहयोग देते हैं तो काम अधिक होता है। किंतु नियम बड़ा विचित्र सा है? महिला को दिन भर में अधिकतम मजदूरी दो रुपया और पुरुष को अधिकतम मजदूरी ढाई रुपया ही मिल सकती है। चाहे काम उनका चार या पांच रुपयों का हो, किंतु कम काम हुआ तो मजदूरी कम मिलती है। इस कारण पति, पत्नी और बच्चे मिलकर अधिक काम होने पर भी उन्हें मजदूरी उस

विराट् पुरुष

परिणाम में नहीं मिलती। अतः साथ में लड़के और लड़कियों का काम करना व्यर्थ हो जाता है। यह सरासर अन्याय है।

मजदूरी में महिला और पुरुषों में अंतर करना न्यायोचित नहीं है। निरीक्षण करने पर यह सहज में ही ध्यान में आता है कि महिलाएं भी उतना ही समय लगाती हैं। महिला होने के कारण ही उन्हें कम मजदूरी मिले, यह किसी भी रूप में तर्कसंगत नहीं है। अतः समय, परिश्रम और खाने में जब वे सब समान हैं तो उन्हें पारिश्रमिक भी समान ही मिलना चाहिए। जिस प्रकार अधिकतम मजदूरी निश्चित की गई है, उसी प्रकार निम्नतम मजदूरी भी निश्चित होनी चाहिए। इसमें 18 वर्ष से नीचे के लड़के-लड़कियों को भी सम्मिलित अवश्य किया जाए।

जो वृद्ध है, जो महिलाएं सात आठ माह की गर्भवती हैं तथा जो पंद्रह दिन या महीने की प्रसूता हैं या जो अपंग हैं, उन्हें बिना काम के मजदूरी देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

इलाज की व्यवस्था

एक-एक राहत केंद्र पर हजार-दो हजार-पांच हजार तक महिला-पुरुष कार्य करते हैं। अधिकांश केंद्र ऐसे हैं, जिन पर इलाज की कोई व्यवस्था नहीं है। काम के अभ्यासी न होने के कारण लोगों को अकसर चोटें आती हैं। उसका कोई इलाज करनेवाला वहां नहीं रहता। औरंगाबाद जिले के अडुल नाम के ग्राम के निकट गिट्टी तोड़ने का बहुत बड़ा केंद्र है।

वहां की श्रीमती अडुबाई को पत्थर की मार से गंभीर चोट आई। वह तेईस दिन हाथ की हड्डी टूटने से ही नहीं तो जख्म के कारण चोट पक जाने से और बुखार में असह्य वेदना सहती दुर्लक्षित पड़ी रही। संयोगवश, हमें पता चला तब औरंगाबाद जनसंघ की प्रमुख कार्यकर्ता श्रीमती कुमुद रांगणेकर ने उसे मेडिकल कॉलेज में ले जाकर भरती कराया और उसका इलाज प्रारंभ करा दिया। यह आवश्यक है कि ऐसे केंद्रों पर कम-से-कम प्राथमिक उपचार का पूरा प्रबंध रहे और गंभीर तकलीफ होने पर उन्हें अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था की जाए।

मजदूरी-राशन व घपले

राहत कामों पर मजदूरी पर काम करनेवालों को मजदूरी कम मिलने की बहुत शिकायतें हैं। मजदूरी देने में घपला करने के प्रत्यक्ष उदाहरण मुझे देखने को मिले हैं। इनका उल्लेख करना भर पर्याप्त मानता हूं। इन अनियमितताओं पर अविलंब रोक लगनी चाहिए।

राहत कार्यों पर मजदूरी करनेवालों को राशन मिलने में भी गड़बड़ियां हैं। वहीं माह में केवल 4 किलो और कहीं 8 किलो राशन मिलता है। वह भी अनेक बार सबको मिलता नहीं है। राशन कार्डों की भी गड़बड़ियां हैं। इन गड़बड़ियों को दूर करने के उपाय है कि सप्ताह में एक बार जिस समय मजदूरी बांटी जाती है, उसी समय उन्हें राशन भी देने की व्यवस्था की जाए। इससे उनकी परेशानी खत्म होगी और समय से सबको राशन मिलता रहेगा।

अकालग्रस्त क्षेत्र में राहत कार्यों के केंद्रों पर मजदूरी करने के लिए जिस बड़ी संख्या में लोग

पहुंचते हैं, उन सब लोगों को समुचित व्यवस्था करने में सरकारी तंत्र अपर्याप्त सिद्ध हो रहा है। प्रशासन पर इस काम का बेहद बोझ पड़ा है।

ऐसी नाजुक व्यवस्था में सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ताओं को बहुत समझदारी के साथ काम करने की आवश्यकता है। राहत केंद्रों पर दिखाई पड़नेवाली धांधली या गड़बड़ी के विरुद्ध असंतोष खड़ा कर उसे संघर्ष का रूप देना सब दृष्टि से घातक होगा।

जनसंघ कार्यकर्ताओं को निर्देश

भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ता को बड़े संतुलित ढंग से अकाल पीड़ित जनता की सेवा करनी होगी और अनेक जगहों पर जनसंघ के कार्यकर्ता वह कर रहे हैं। हमें इस समय आवश्यकता है निम्न प्रकार से कार्य करने की—

- हर एक राहत कार्य केंद्र पर हमारे लोग सप्ताह में कम-से-कम तीन बार पहुंचें। जिस दिन मजदूरी वितरित होती है, उस दिन तो वहां अवश्य रहना चाहिए। हमारे कार्यकर्ताओं का केवल उपस्थित रहना ही सबके समाधान के लिए पर्याप्त सहायक हो सकता है। व्यवस्था में जो भी गड़बड़ी या आवश्यकता हो उस संबंध में मजदूरी करनेवालों को भड़काए बिना उन्हें काम पर लगे रहने की सलाह देते हुए वहां उपस्थित सरकारी प्रबंधकर्ताओं से अलग मिलकर लोगों की शिकायत दूर कर उन्हें संतुष्ट करने की सलाह देनी चाहिए। यदि स्थानीय प्रबंध नहीं मानते तो ऊपर के अधिकारियों से मिलकर मामले को ढंग से सुलझाने का दायित्व हमारे लोगों को निभाना होगा।
- गांव-गांव में जो अति वृद्ध है और मजदूरी नहीं कर सकते, उन्हें तथा जो अपाहिज, मरीज, प्रसूताएं हैं, उनके भोजन और उपचार का प्रबंध कराने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।
- जिला जनसंघ के कार्यकर्ता आठ-दस टोलियां बनाकर जिले के अकालग्रस्त क्षेत्र को आपस में बांटकर कहां-कहां कौन-कौन से काम अकाल निर्मूलन के लिए हाथ में लिए जाने चाहिए, इसकी विस्तृत योजना बनाकर उसे जिलाधीश के सम्मुख रखें।
- प्रबंध का निरीक्षण और निर्माण कार्यों के लिए सुझाव की व्यवस्था करने के अतिरिक्त हमें निम्न कार्य करने होंगे—
- गांवों में मजदूरी न कर पानेवालों के लिए अनाज का प्रबंध करना और उन्हें पेयजल, मिट्टी का तेल और दीया-सलाई पहुंचाना।
- बीमारों के लिए उपचार और ओषधि का प्रबंध
- शीतकाल है। उन्हें रात में ओढ़ने के लिए कंबल या धुले हुए पुराने कपड़ों को सिलकर गुदड़ियां तैयार कर जरूरतमंदों को शीत से बचाने का उद्योग करना।

□

समग्र क्रांति मात्र सत्ता-परिवर्तन नहीं

जनशक्ति राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति होती है। विदेशी सत्ता से मुक्तिप्रदाता के नाते यह ही शक्ति प्रतिष्ठित है। उसके सम्मुख बड़े-से-बड़े तानाशाह धूल में मिल जाते हैं। इसी जाग्रत् जनशक्ति में बंगलादेश में सैनिक तानाशाही का विनाश किया था। जब अन्य शक्तियाँ थक जाती हैं, बेकाम हो जाती हैं या हार मान बैठती हैं, तब इसी एक शक्ति का सहारा शेष रह जाता है। मरी से मरी दिखाई पड़नेवाली जनशक्ति में कब जान पड़ जाए, वह कब बड़ी हो जाए, निराश मन नागरिकों के हृदय में आशा और विश्वास का वह नव संचार कर जाए, कहा नहीं जा सकता। यह निर्विवाद है कि इसी एक अद्वितीय जनशक्ति की नींव पर ही राष्ट्रजीवन की चिरंतनता विराजमान रहती है।

लोकतंत्र में भी जनता पर हावी होनेवाले अनैतिकता और अनाचार में आकंट डूबे हुए, भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद में लगे हुए, संविधान की ताक पर रख मूलभूत अधिकारों को कुचलनेवाले तथा जनहितों की निरंतर उपेक्षा कर तानाशाही की ओर बढ़नेवाले शासकों से निपटने की क्षमता भी इसी शक्ति में समाई हुई रहती है। यह अपराजेय शक्ति है।

जन-सहयोग की व्यवस्था का अभाव

गत हजार-बारह सौ वर्षों से अपना राष्ट्र आक्रामकों के साथ संघर्ष तथा बाद में स्वातंत्र्य संग्राम में लगा रहा। इस काल में राष्ट्रजीवन में युगानुकूल परिवर्तन का कार्य संपन्न होते रहना संभव नहीं था। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के साथ ही इस दिशा में पग बढ़ाने की आवश्यकता थी, किंतु इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। शासनारूढ़ नेतृत्व ने देश के प्रशासन और विकास में जन-सहयोग की व्यवस्था की होती, केवल मतदान के यंत्रवत् अधिकार तक ही नागरिकों को सीमित न रखा होता, तो संभवतः राष्ट्रजीवन में युगानुकूल परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो पाता। राष्ट्र के नवनिर्माण में देश के सर्वसाधारण लोग सहभागी बनते। लोगों में राष्ट्रीय चिंतन प्रारंभ होता। देश की प्रतिभा नवनिर्माण में जुट जाती। नागरिकों की जीवन-दृष्टि सहज में ही व्यापक बनती।

सामूहिक पुरुषार्थ रचनात्मक अभियान में लगता। शासक और शासित का भेद मिट जाता। स्वाधीनता की सबको अनुभूति होती और अपना लोकतंत्र, कर्तव्य, सहयोग और समृद्धि का माध्यम बनता। किंतु अपनी स्वाधीनता काल की राजनीति ने गलत मोड़ ले लिया। नवनिर्माण की ठीक दिशा से वह भटक गई है। उसने सत्ता की राजनीति का रूप ले लिया है। येन-केन प्रकारेण सत्ता पर बने रहना या सत्ता प्राप्त करना इतना ही अपनी राजनीति का लक्ष्य बन गया है। अतः अनायास ही अवसरवाद राजनैतिक जीवन में हावी हो गया है। दलबदल और सिद्धांतहीनता इसी का नतीजा है।

यथास्थिति का पक्ष

अपने निकम्मेपन के बावजूद हर तरीके से सत्ता पर कायम रहना ही सत्तारूढ़ कांग्रेस ने अपना ध्येय बना लिया है। इस निहित स्वार्थ के लिए निम्न-से-निम्न स्तर तक उतर आने में उसे संकोच नहीं रहा है। जनहितों की उपेक्षा करना उसने अपना स्वभाव बना लिया है। सिफारिश के सहारे अपने लिए अनुकूल बने रहनेवाले नालायक से नालायक लोगों को प्रशासन में भी ऊंची-ऊंची जगहों पर पहुंचाया गया है। न्यायालयों को भी इससे अछूता नहीं छोड़ा। परिणामस्वरूप राजनीति एवं संपूर्ण प्रशासन भ्रष्ट और जर्जर हो गया है। इस स्थिति को बनाए रखने में ही कांग्रेस अपना भला समझने लगी है। तथाकथित प्रगतिवादी रूस प्रेरित कम्युनिस्ट कांग्रेस के इस यथास्थितिवाद के समर्थक बन शासन में घुसपैठ करने में लगे हुए हैं।

इस दारुण दशा से जनता त्रस्त हो गई है। असीम बेकारी और असह्य महंगाई ने जनजीवन को और भी दर्दनाक बना दिया है। इससे मुक्ति पाने के सब प्रयास विफल होते आए हैं। फलस्वरूप लंबे काल से अंदर-ही-अंदर घुमसनेवाली यह घोर निराशा की घुटन अब क्रांति का रूप ले रही है। देश की तरुणाई इस पुनीत कार्य के लिए अग्रसर हो रही है। जनशक्ति के जागरण का यह मंगल प्रभाव है।

समग्र क्रांति का अभियान

यह शुभ अभियान समग्र क्रांति के नाम से संबंधित है। समग्र क्रांति कोरा नारा नहीं है। भारत का यह प्यारा सपना है। देश की जवानी ने इसे साकार करने का संकल्प कर लिया है। इस हेतु अपने जीवन की बाजी लगाने में वह गौरव अनुभव कर रही है। राह में आनेवाली बड़ी-से-बड़ी मुसीबतों को हंसते-हंसते झेलने की उसने मन-ही-मन तैयारी कर ली है। अब उनकी यह गति रोकने की शक्ति किसी दानवी प्रयास में भी नहीं है। जनशक्ति के हरावल के दस्ते के रूप में वह अग्रसर है।

समग्र क्रांति के मंगल अभियान का गुजरात ने बिगुल बजाया था। बिहार ने इस दिशा में कदम बढ़ाया है। अब देश का एक-एक प्रदेश इस कदम-में-कदम मिलाकर नई उमंग और असीम

विराट् पुरुष

साहस के साथ इस विजय अभियान पर चल पड़ा है।

इस अभियान का पहला मुकाबला है यथास्थितिवादी सत्ता से। कारण, अलोकतांत्रिक सत्तासीन नेतृत्व इसे अपना दुश्मन मान रहा है। वह अन्य जननेतृत्व को बरदाश्त नहीं करना चाहता। इस कारण वह इस शुभ कार्य में सबसे बड़ा रोड़ा बनकर सम्मुख आ रहा है। वह इस चिरप्रतीक्षित अभियान को युग की पुकार न मानकर अपने विरुद्ध छिड़ा हुआ केवल सत्ता संघर्ष मानता है। इसे कुचलने के लिए वह सत्ता का दुरुपयोग करने पर तुला है। लोगों को लालच में फंसाना उसकी नीति है। झूठा प्रचार उसका बल है। आतंक उसका सहारा है और दमन उसका साधन है।

इस संघर्ष में समग्र क्रांति के उपकरण है—अडिग निश्चय, असीम साहस, दुर्दम्य उत्साह, अनंत सहनशक्ति और शांतिपूर्ण अभियान।

सत्ता-संघर्ष मात्र नहीं

सत्तारूढ़ नेतृत्व इस क्रांति अभियान को सत्ता-संघर्ष तक सीमित करना चाहता है। यह उसकी कूटनीतिक चाल है। किंतु अपना यह संघर्ष सत्ता-परिवर्तन से प्रारंभ होता है। यथास्थितिवादी सत्तासीन नेतृत्व में परिवर्तन समग्र क्रांति की परिधि से परे नहीं है। यह क्रांति का प्रथम कदम है। उसके बिना आगे का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता। इस प्रथम मुठभेड़ का रूप है सत्ता और जनता के बीच का संघर्ष। यह केवल राजनैतिक हेतु से ही प्रेरित नहीं है। राष्ट्रजीवन में समग्र क्रांति उसका सुस्पष्ट लक्ष्य है। इस प्रथम संघर्ष की व्यापकता एवं उग्रता में जहां हम अपना संतुलन, संयम और शांतिपूर्ण गति कायम रखें, वहां अपने अंतिम लक्ष्य को नजर से ओझल न होने दें।

स्वाधीनता के गत 27 वर्ष के काल में अपने देश में केवल राजनैतिक सत्ता संघर्ष का ही वातावरण व्याप्त रहा है। इस कारण इस क्रांति को सत्ता-संघर्ष तक सीमित मानने की भूल हो सकती है। यह भूल हुई तो क्रांति अधूरी रह जाएगी। वह सत्ता-परिवर्तन तक ही सीमित होगी। शेष जीवन में युगानुकूल परिवर्तन ठप्प हो जाएगा और फिर से राजनैतिक सत्ता जनजीवन पर हावी हो जाएगी। अतः इस क्रांति में संलग्न सभी को सतत जागरूक रहने के समर्थक एवं सहयोगी विरोधी दलों के नेताओं एवं बुद्धिजीवियों को यह पहलू भलीभांति ध्यान में रखना होगा।

भूल दुहराएँ नहीं

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के काल के कांग्रेसी नेतृत्व ने समग्र परिवर्तन के इस दृष्टिकोण को न समझने की भूल की थी। फलस्वरूप राष्ट्रजीवन के युगानुकूल नवनिर्माण के कार्य में वह विफल सिद्ध हुआ और देश को उसने अवनि के गर्त में पटक दिया। इस प्रकार स्वाधीनता के 27 वर्ष बेकार हो गए। अतः वह भूल फिर से दोहराई न जाए, इसकी विशेष सतर्कता बरतने की आवश्यकता

है। अपनी दृष्टि में यह बात स्पष्ट रखी होगी कि समग्र क्रांति का यह संघर्ष सत्ताप्रेरित दो राजनैतिक शक्तियों के बीच नहीं अपितु यथास्थितिवादी सत्ता और क्रांतिकारी जनता के बीच में है। यही आज की ऐतिहासिक आवश्यकता है।



प्रशासन तंत्र जवाबदेही का अभाव

शसन मौजूद है और हर स्तर पर भ्रष्टाचार, अनाचार और लूट चल रही है। सत्ता और अहिंसा का आदर्श प्रस्थापित करनेवाले महात्मा गांधी के देश में आम व्यक्ति कहता है ईमानदारी से रोजगार करना असंभव है। क्या यह ही स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष में बलिदान हुए देशभक्तों की स्वतंत्र भारत से अपेक्षा थी? क्या उनके प्रति वफादारी का यही तरीका है?

सत्ता-मोह के वशीभूत होकर नौकरशाही का दुरुपयोग न किया गया होता तो आर्थिक विकास के लिए बनाई गई पंचवर्षीय योजनाओं के प्रचुर परिणामों से आज जनता लाभान्वित हुई होती। इन योजनाओं पर अब तक नब्बे करोड़ रुपया लग चुका है। इतनी विशाल धनराशि गई कहाँ? समझते सब हैं, लेकिन कुछ किया नहीं जा सकता। विभिन्न निर्माण कार्यों के लिए अरबों रुपए के ठेके लिए गए, इनमें से कितना धन जनकल्याण के निर्माणित कार्यों में लगा और कितनी योजनाएं क्रियान्वित करनेवालों के निजी कामों में आया? इन निर्माण कार्यों के लिए उपलब्ध सीमेंट, लोहा तथा अन्य साधनों में कितने ही लोगों की निजी कोटियां खड़ी हो गई हैं। जनकल्याण के ऐसे लाखों काम हैं, जिनके लिए सरकारी खजाने से रुपया व्यय होने का दफ्तरों में हिसाब जरूर लिखा हुआ है, किंतु ये काम धरती पर कभी हुए ही नहीं। कितनी विडंबना है यह!

निजी स्वार्थ से भ्रष्टाचार में वृद्धि

आवश्यक माल की कमी के कारण कंट्रोल की व्यवस्था बनाई गई, किंतु कंट्रोल में बिकनेवाला माल काले बाजार में ऊंचे दाम पर मनचाही मात्रा में उपलब्ध होता है। काले बाजार में इस माल की कमी अनुभव नहीं होती। आए दिन चोरियां और डकैतियां होती हैं किंतु शासन, पुलिस तथा गुप्तचरों की विशाल सेना होते हुए भी न वे पकड़े जाते हैं और न चोरी का माल मिलता है। डकैती की समस्या के हल की तो संभावना ही समाप्त सी लगती है, चाहे जिसकी हत्या की जा सकती है और हत्यारा आराम से रफू-चक्कर हो जाता है। अपराधी को सजा न मिलना अपराध-वृत्ति को बढ़ावा देना है। यह कुकर्म प्रशासन के द्वारा हो रहा है। अनेक सरकारी दवाखानों में गरीब मरीजों के लिए

आई दवाएं बाजार में बिकती हैं। यहां तक कि अकाल पीड़ितों के लिए बांटा जानेवाला अनाज बाजार में बेचकर खाया जाता है। इससे अधिक पतन की कौन सी अवस्था हो सकती है, किंतु यह वस्तुस्थिति है। सरकारी दफ्तर के अनेक बाबुओं के बच्चे लिखने-पढ़ने के लिए सरकारी दफ्तर की स्टेशनरी काम में लाते हैं, यह कौन नहीं जानता? अपने प्रशासन की यह लज्जाजनक दुर्दशा क्या सत्ता में बने रहने के लिए नौकरशाही के दुरुपयोग का ही परिणाम नहीं है, क्या निजी स्वार्थ के लिए प्रशासन तंत्र को भ्रष्ट बनाने का ही यह नतीजा नहीं है?

यह कैसी वफादारी?

सरकार अपनी आय बढ़ाने के लिए टैक्स लगाती है, किंतु क्या टैक्स का पूरा पैसा सरकारी खजाने में जमा होता है। कौन नहीं जानता सेल्स टैक्स की हालत। सेल्स टैक्स इंस्पेक्टर की आर्थिक स्थिति उसके वेतन के अनुरूप हो, ऐसा शायद ही दिखेगा। सेल्स टैक्स इंस्पेक्टर का पद पाना धनार्जन की दृष्टि से भाग्योदय की बात मानी जाती है। अनेक इनकम टैक्स देनेवाले खुलेआम कहते हैं कि जितना इनकम टैक्स बचाया जाता है, उतना ही हमारा शुद्ध मुनाफा होता है। शायद ही कोई ऐसा इनकम टैक्स देनेवाला हो, जो ईमानदारी से शत-प्रतिशत इनकम टैक्स देता हो। शासन चल रहा है, हर स्तर का भ्रष्टाचार, अनाचार और लूट चल रही है।

सत्य और अहिंसा का आदर्श प्रस्थापित करनेवाले महात्मा गांधी के देश में आम व्यक्ति कहता है कि ईमानदारी से रोजगार करना असंभव है। क्या यह भी स्वातंत्र्य प्राप्ति के संघर्ष में बलिदान हुए देशभक्तों की स्वतंत्र भारत से अपेक्षा थी? क्या उनके प्रति वफादारी का यही तरीका है?

काले धन के आधार पर ही तथाकथित बड़े लोग समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे हैं। ऐसी परंपरा बन गई है कि काले धन के बिना राजनेता देश और प्रदेश का शासक नहीं बन पाता। कानून और व्यवस्था को बनाए रखनेवाला शासक ही काले धन की नींव पर खड़ा है। ऐसी हालत में कानून और व्यवस्था कैसे कायम रहेगी, आज देश में कितना काला धन है। खुले धन के साथ काले धन की होड़ लगी हुई है। इस प्रतिस्पर्धा में खुला धन मात खा रहा है।

आर्थिक स्थिति सुधारने की रोज गंभीर चर्चा चलती है। आर्थिक समस्याओं का निराकरण करने के विषय में बड़े-बड़े लेख प्रकाशित होते हैं। नई-नई अब धारणाएं प्रस्तुत की जाती हैं, किंतु क्या काले धन की निरंतर बढ़नेवाली राशि के होते हुए देश की आर्थिक स्थिति सुधारी जा सकती है? जब तक शासकों को शासन में टिकाए रखने का आधार ही काला धन है, तब तक काले धन की समाप्ति कैसे संभव होगी? प्रशासन से भ्रष्टाचार समाप्त करने की बातें केवल पाखंड मात्र हैं। शासन तंत्र पर हावी इस पाखंड के चलते राष्ट्र जीवन में सुधार की अपेक्षा करना मृगमरीचिका के पीछे दौड़ना मात्र है। गरीबी के लिए आसू बहाने में कोई प्रामाणिकता नहीं है। काला धन गरीबी मिटाता नहीं, गरीबी बढ़ाता है। समाज के अधिकाधिक लोगों को गरीबी की रेखा के नीचे ढकेलने का काम करता है। काला धन गिनती के कुछ लोगों को ही खुशहाल बनाता है तथा सर्वसाधारण नागरिकों के लिए जीना असंभव कर देता है। आज कालाधन ही शासकों

विराट् पुरुष

की गद्दी का आधार और विरोधी दलों की गतिविधियों का सहारा है। इसी का परिणाम है कि नौकरशाही में भ्रष्टाचार, सामाजिक जीवन में अनाचार एवं देश में अराजकता निरंतर बढ़ रही है। आध्यात्मिकता को जीवनधारा माननेवाले भारत में अनैतिकता की बाढ़ आई हुई है। शासन निकम्मा बनता जा रहा है। ऊपर से नीचे तक एक-दूसरे पर संदेह का वातावरण है। किसे किसका समर्थन प्राप्त है और कौन किसका कोपभाजन है, यही दफ्तरों में चर्चा का खास विषय रहता है।

न्याय कहां है

अन्याय का शिकार न्याय की आशा लेकर किसी दफ्तर में पहुंचता है तो वहां के वातावरण को देखकर ही वह परेशान हो जाता है। कोई अधिकारी न उसे सांत्वना देता है, न न्याय पाने का आश्वासन। अधिकतर लोगों को तो चपरासी के स्तर पर ही दुतकार दिया जाता है। कोई माई का लाल यदि किसी प्रकार की हस्ती रखता है तो वही वरिष्ठ अधिकारी तक पहुंच पाता है, किंतु न्याय पाना उससे भी संभव नहीं होता। कारण, अधिकारी न्यायसंगत अनुरोध पर भी निर्णय नहीं लेना चाहता। जिम्मेदारी निभाने का उसमें आवश्यक साहस ही नहीं दिखता। प्राप्त जिम्मेदारी निभाने की वृत्ति का शासन से लोप हो रहा है। हर अधिकारी ऊपर की ओर इशारा कर अपनी जिम्मेदारी टालने में ही अपनी चतुराई समझता है। न्याय की याचना करनेवाले पर अन्याय करनेवाले का किसी-न-किसी वरिष्ठ शासक के पास सिलसिला होगा, इस आशंका से सभी प्रभावित है। यह न्यायपूर्ण जिम्मेदारी निभाने के गुण का प्रशासन तंत्र में अभाव हो गया है।

स्वतंत्र भारत में जिन्हें प्राथमिकता मिलनी चाहिए थी, उन्हीं की सर्वाधिक उपेक्षा होती आ रही है। गांधीजी ने दरिद्रनारायण की सेवा पर बल दिया था। इस बात की महत्ता सबके ध्यान में आए, इसलिए उन्होंने अपना निवास भंगी कॉलोनी में बना लिया था। स्वतंत्र भारत के शासकों को चाहिए था कि वे इस बात को समझकर अपने शासन की दिशा निश्चित करते। प्रशासन-तंत्र को उसी दृष्टि से ढालते और प्रशासकों ने प्रशासन-तंत्र की जो हालत बनाई है, उसका विवेचन किया जा चुका है। ऐसे प्रशासन में देश के सदियों से उपेक्षित एवं आर्थिक दृष्टि से विपन्न लोगों को प्राथमिकता कैसे प्राप्त होगी?

□□□